CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

76

"रामचन्द्रिका"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

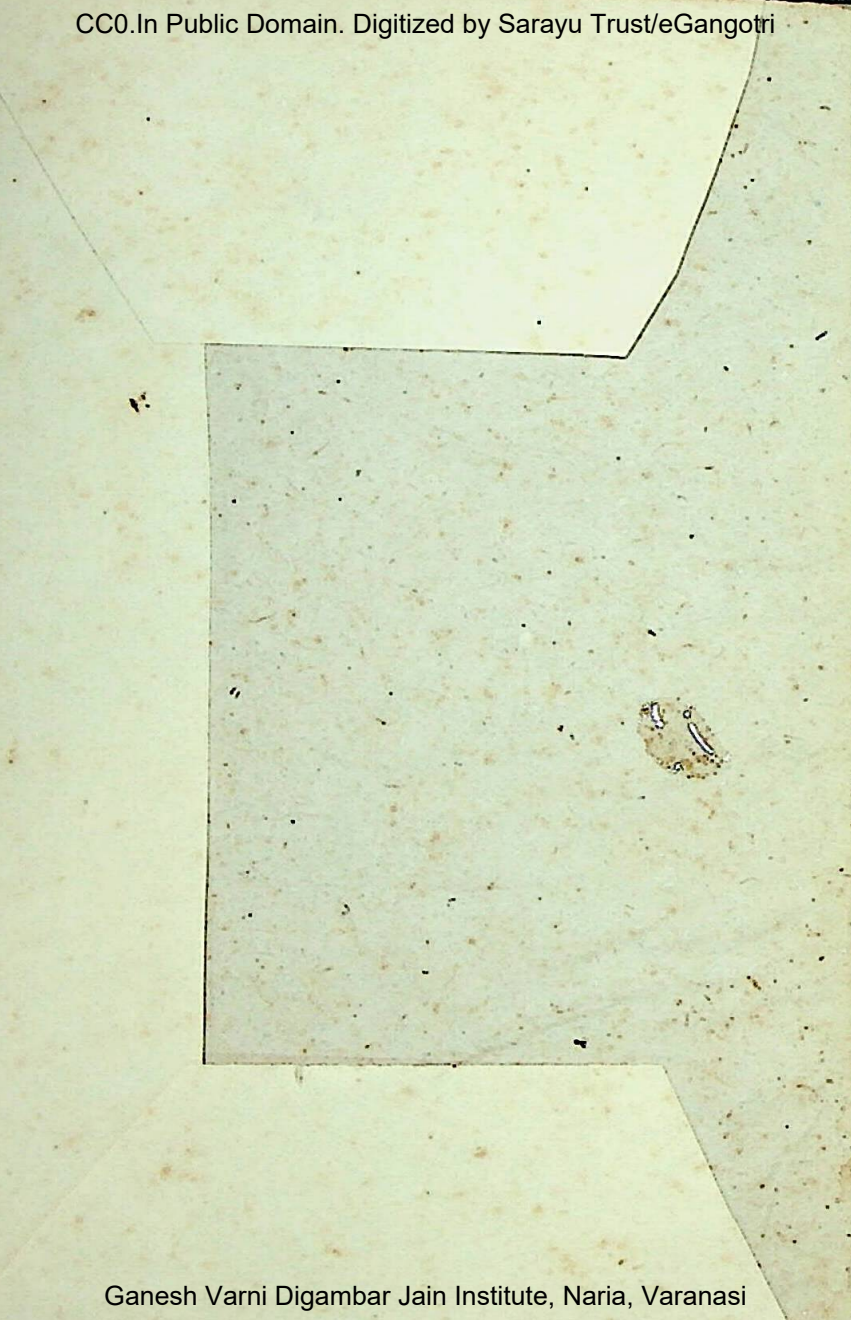

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Dr. Rajani Jain

13.1.87

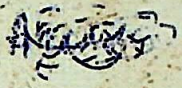

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचन्द्रिका

डॉ० रामचन्द्र तिवारी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय (गोरखपुर)

संजय बुक सेन्टर
के० ३८/६, गोलघर—वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

RAMCHANDRIKA

By

Dr. Ram Chandra Tiwari

Head of the Hindi Dept.

Gorakhpur University (Gorakhpur)

Price Rs. 16·00

संजय कुमार अग्रवाल के लिए। संजय बुक सेन्टर ३८/६ गोलघर वाराणसी द्वारा प्रकाशित / द्वितीय संस्करण १९८५/मूल्य १६.०० रुपये मात्र/मुद्रक—चन्द्रप्रभा प्रिंटिंग प्रेस, खजुरी, वाराणसी–२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रमणिका

आचार्य कवि केशवदास	१—६४
बाल काण्ड	१—१०६
अयोध्या काण्ड	१०७—१३९
अरण्य काण्ड	१४०—१७६
किष्किन्धा काण्ड	१७७—१९५
महाकवि केशव और उनकी रामचन्द्रिका	१९६
सहायक सामग्री	१९६

—: ० :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य कवि केशवदास

आचार्य केशवदास सच्चे अर्थों में राजकवि थे। वे पण्डित थे, आचार्य थे, कवि थे, राजनीतिज्ञ थे और कदाचित् भक्त भी थे। उन्हें अपने पाण्डित्य पर गर्व था। उनका घराना कई पीढ़ियों से राज-सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा था। ओडछा-नरेश महाराज रामशाह के अनुज इन्द्रजीत सिंह उन्हें गुरु-तुल्य मानते थे। स्वयं महाराज रामशाह उन्हें अपना मन्त्री और मित्र मानते थे। इन्द्रजीत सिंह के भाई वीर सिंह देव ने भी उनको सम्मानित किया था। लोक परम्परा, महत्व की दृष्टि से, उन्हें सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्रदान करती है। वे 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे जाते हैं। प्रसिद्ध है कि 'कवि को देन न चहै बिदाई। पूछै केशव की कविताई'। इसका एक मात्र कारण उनकी पाण्डित्य-प्रियता ही है। उनके एक-एक छन्द में पाँच-पाँच अर्थ सन्निहित हैं। उनकी काव्य-दृष्टि के निर्माण में संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों—उद्भट, दण्डी, केशव मिश्र, अमरचन्द आदि के—परम्परागत सस्कार, राजकीय वातावरण तथा उनके युग की काव्य-परिपाटी, तीनों के सम्मिलित प्रभाव ने कार्य किया है। इसीलिए उनमें काव्यरीति के प्रति आग्रह, पाण्डित्य के प्रति मोह, शृङ्गारिता के प्रति रुझान और भक्ति के प्रति आकर्षण है। उनके व्यक्तित्व को समझने के लिये उपर्युक्त सभी परिस्थितियों और परम्पराओं को दृष्टि में रखना आवश्यक है। उनकी कृतियों के मूल्यांकन के पहले आवश्यक है कि हम उनका काव्य-विषयक दृष्टिकोण भलीभाँति समझ लें—

केशव का काव्य-विषयक दृष्टिकोण

केशव अलंकार को काव्य का सर्वस्व मानते हैं। भूषणों के अभाव में न उन्हें कविता में सौन्दर्य दिखाई पड़ता है न बनिता में।[1] अलंकारों

---

१. यद्यपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई, कविता बनिता मित्त॥
—'कविप्रिया', पाँचवाँ प्रभाव, पृष्ठ ४३।

[मिलाइये—न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामनम्, काव्यालंकार १, १३]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को अत्यधिक महत्व देने के साथ ही वे काव्यगुण, अर्थ-गौरव और पदलालित्य को भी, आवश्यक मानते हैं।[१] उनकी दृष्टि में काव्य में रंच मात्र दोष भी उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है।[२] काव्य-परम्परा का अनुसरण न करने वाला काव्य अन्धा है। शब्द-प्रयोग में औचित्य का ध्यान न रखनेवाला काव्य बधिर है। छन्द के नियमों की अवहेलना करनेवाला काव्य पंगु होता है। अलंकारों से रहित काव्य नग्न है और अर्थहीन काव्य मृतक तुल्य है।[३] अलंकार शब्द का प्रयोग केशव ने व्यापक अर्थ में किया है। अभिव्यक्ति को विविध प्रकार से चमत्कारपूर्ण बनानेवाली उक्तियों को ही वे अलंकार नहीं मानते। उन्होंने अलंकारों के दो रूप माने हैं—साधारण और विशिष्ट। उपमा, रूपकादि अलंकार उनकी दृष्टि में विशिष्ट अलंकार हैं। साधारण अलंकार के अन्तर्गत वे वर्ण (रंग), वर्ण्य भूमि-श्री और राज्य-श्री इन चार का उल्लेख करते हैं।[४] (वर्ण के अन्तर्गत उन्होंने श्वेत, पीत, कारे, अरुण, धूम्र, सुनील और मिश्रित सात रंगों का उल्लेख किया है।[५])

---

१. सगुन पदारथ अरथयुत, सुबरनमय शुभ साज।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करहु कविराज॥
—'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, पृष्ठ १५।

२. राजत रंच न दोषयुत, कविता, बनिता मित्र।
बुंदक हाला परत ज्यों, गंगा घट अपवित्र॥
—वही, तीसरा प्रभाव पृष्ठ १६।

३. अन्ध बधिर अरु पंगु तजि, नगन मृतक मति शुद्ध।
अन्ध विरोधी पन्थ को, बधिर जो शब्द विरुद्ध॥
छन्द विरोधी पंगु मुनि, नगन जो भूषण हीन।
मृतक कहावै अरथ बिन, केशव सुनहु प्रवीन॥
—वही, पृष्ठ १७।

४. सामान्यालंकार को, चारि प्रकार प्रकाश।
वर्ण, वर्ण्य, भू-राज श्री, भूषण केशवदास॥
—वही, पाँचवाँ प्रभाव, पृष्ठ ४३।

५. श्वेत, पीत, कारे, अरुण, धूम्र सुनीले वर्ण।
मिश्रित, केशवदास कहि, सात भाँति शुभ कर्ण॥
—वही, पाँचवाँ प्रभाव, पृष्ठ ४३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य-परम्परा में इन वर्णों के अन्तर्गत जिन वस्तुओं की गणना की गई है, केशव ने उनकी लम्बी सूची भी प्रस्तुत की है। (वर्ण्य के अन्तर्गत उन्होंने सम्पूर्ण, आवर्त्त, कुटिल, त्रिकोण सुवृत्त, तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठोर, निश्चल, चंचल, सुखद, दुखद, मन्दगति, शीतल, तप्त, सुरूप, क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ट, सत्य, झूठ, मण्डल, अगति, सद्गति और दानी इन अट्ठाइस भेदों का उल्लेख किया है और कहा है कि और भी भेद हो सकते हैं।[1] इन अट्ठाइस भेदों को लेकर पुनः उन्होंने प्रत्येक के अन्तर्गत किन-किन वस्तुओं का वर्णन करना चाहिए, उसका भी उल्लेख किया है।) उदाहरणार्थ—सम्पूर्ण को लेकर वे कहते हैं कि अम्बुज, आनन, आरसी, प्रेम और प्रकाश को सदैव सम्पूर्ण मानकर वर्णन करना चाहिये।[2] भू-श्री के अन्तर्गत उन्होंने देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल, रवि, शशि, सागर, ऋतुएँ और महीने आदि की गणना की है।[3] पुनः प्रत्येक को लेकर उसके अन्तर्गत आनेवाली वस्तुओं का उल्लेख किया है। राज्य-श्री के अन्तर्गत राजा, रानी, राजकुमार, पुरोहित, सेनापति, दूत, मन्त्री, मन्त्र, प्रयाण (रण-प्रयाण), घोड़ा, हाथी, युद्ध, आखेट, जलक्रीड़ा, स्वयम्बर, वियोग और सुरति आदि की गणना की है[4] और फिर प्रत्येक के वर्णन में किन-किन वस्तुओं का उल्लेख आवश्यक है, इसे विस्तारपूर्वक बताया है।

इस प्रकार साधारण अलंकारों की सीमा में केशव ने काव्य के वर्ण्य-विषयों का ही उल्लेख किया है। इसमें उनके दो उद्देश्य हैं—एक तो पाठकों को सामान्य ढंग से उन वस्तुओं की सूचना देना जिनका वर्णन काव्य-परम्परा-विहित है; दूसरे, इन सभी काव्य-विषयों का जो स्वरूप कवि-परम्परा में मान्य है (रंग और आकृति की दृष्टि से) उसको ही स्वीकार करने का आग्रह। उनकी दृष्टि में कवि-पन्थ का ज्ञान आवश्यक है और, इस ज्ञान के अन्तर्गत वर्ण्य-विषयों की सूची

---

१. 'कविप्रिया', छठवाँ प्रभाव, पृष्ठ ५८।

२. इतने संपूरण सदा, बरणे केशवदास।
अम्बुज, आनन, आरसी, संतत प्रेम-प्रकाश॥

३. 'कविप्रिया', सातवाँ प्रभाव, पृष्ठ ९३।

४. कविप्रिया', आठवाँ प्रभाव, पृष्ठ ११६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी सम्मिलित है। स्पस्ट है कि जब उन्होंने 'भूषण' के अभाव में कविता को शोभाहीन कहा था तब उनके मस्तिष्क में ये वर्ण्य-विषय भी थे। जिस कविता में उपर्युक्त वस्तुओं का वर्णन काव्य-विहित परम्परा के अनुसार नहीं है, केशव की दृष्टि में उसे भी असुन्दर ही मानना चाहिए। वर्ण्य-विषयों को भी अलंकारों के अन्तर्गत परिगणित करने का परिणाम यह हुआ कि केशव ने वस्तु वर्णन के चमत्कार को भी काव्य-शोभा का साधन मानकर उस पर अत्यधिक बल दिया। वस्तु-वर्णन-प्रियता की परम्परा संस्कृत-साहित्य के परवर्ती युग में आरम्भ हो चुकी थी। भारवि, माघ और श्री हर्ष के महाकाव्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। केशव ने इसी परम्परा को हिन्दी में प्रचलित करना चाहा था। अपनी व्यापक आलंकारिक दृष्टि के कारण ही केशव ने रसमय वर्णनों को 'रसवत्' अलंकार मान लिया और नवों रसों को रसवत् अलंकार में समाहित कर लिया।'[1] उनकी दृष्टि में वाणी की सरसता भी शोभा (काव्य-सौन्दर्य) का हेतु है।[2] आचार्य केशव 'रस'

---

१. रसवत होय सुजानिये, रसवत केशवदास।
नव रस को संक्षेप ही, समझो करत प्रकास॥
—'कविप्रिया', ११वाँ प्रभाव, पृष्ठ २०३।

टिप्पणी—रसवत् अलंकार को आचार्य केशव ने ठीक से नहीं समझा है। रसवत् अलंकार वहाँ होता है, जहाँ एक रस अंग-रूप में उपस्थित होकर दूसरे अंगी रस को उपरंजित कर दे। जिस प्रकार प्रकृत वस्तु की उपरंजकता के कारण उपमा आदि को अलंकार कहते हैं वैसे ही प्रकृति रस की उपरंजता के कारण अंगभूत रस को अलंकार कहना सर्वथा उचित है।

[अङ्गभूतस्य रसादेश्चालङ्कारत्वं युक्तम्। तथा च यावतोपमादीनां सर्वालङ्काराणां प्रकृतवस्तूपरञ्जकत्वमलङ्कारत्वे निबंधनम्, अङ्गभूतेनापि रसेन तत् क्रियत एव, प्रकृतस्य रसादेस्तदुपस्कृत्वेन भावात्।]
—'अलंकारसर्वस्व विमर्शिनी', पृष्ठ २३३।
—'साहित्यदर्पण', व्याख्याकार, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृष्ठ ८७६ पर उद्धृत।

२. ज्यों बिन दीठि न शोभि जै, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन वाणी न रसाल॥—'रसिकप्रिया', पृष्ठ ३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(रसालता) का महत्त्व तो स्वीकार करते हैं; किन्तु उसे भी वे शोभा-विधायक मानकर अलंकार के अन्तर्गत ही स्थान देते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से केशव का काव्य-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। वे मुख्यतः अलंकारवादी कवि हैं; किन्तु उनके अलंकारवाद की सीमा में कविपरम्परा, वर्ण्यविषय, वर्णन-शैली, अभिव्यक्ति-चमत्कार, गुण, पद-लालित्य, अर्थगौरव, रस, छन्द और निर्दोषिता ये सभी तत्त्व आ जाते हैं। इन सभी को वे काव्यशोभा का हेतु मानते थे। इसीलिए उन्होंने केवल अलंकार-ग्रन्थ की रचना नहीं की। कवि-प्रिया में उन्होंने काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले बालक-बालिकाओं के लिए ज्ञातव्य कवि-पन्थ की सभी बातों का वर्णन किया।[1] कहना चाहें तो कह सकते हैं कि आचार्य दण्डी के समान केशव भी काव्य के शोभाकारक धर्ममात्र को अलंकार मानते थे, जिनमें शोभा के वर्द्धक और शोभा के जनक दोनों प्रकार के तत्त्व आ जाते हैं।

आचार्यत्व—केशवदासजी हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं। वे हिन्दी-रीति-काव्य के जनक हैं। 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' उनके शास्त्रीय ग्रन्थ हैं। 'कविप्रिया' की रचना काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करने-वाले नवीन जिज्ञासुओं की ज्ञान-वृद्धि के लिए की गई। इसमें काव्य-दूषणों—[अन्ध (कवि-पन्थ-विरुद्ध रचना करना), बधिर (शब्दों का अनुचित प्रयोग), पंगु (छन्द-विरुद्ध-रचना), नग्न (भूषणहीन रचना), मृतक (अर्थहीन रचना) तथा अगण (अशुभ गण—जगण, रगण, सगण, तगण); हीनरस, यतिभंग, व्यर्थ (जहाँ एक ही कवित्त में अर्थ-विरोध हो), अपार्थ (जिसका अर्थ समझ में न आवे), हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देशविरोध, काल-विरोध, लोक-विरोध, न्याय और अगम-विरोध आदि]; कवि-भेद (उत्तम, अनुत्तम, मध्यम); कविरीति (कभी सच्ची बात को झूठ, कभी झूठी बात को सत्य, कभी नियमानुकूल वर्णन करना) और काव्यालंकारों (सामान्य, विशिष्ट) का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। सबसे अधिक महत्त्व काव्यालंकार को दिया गया है। केशव ने सामान्य अलंकारों के अन्तर्गत प्राकृतिक (भू-श्री) और मानवकृत (राज्य-श्री) दोनों ही प्रकार की वस्तुओं को स्थान

---

१. समुझै बाला बालकन, वर्णत पन्थ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, क्षमियहु कवि अपराध॥—तीसरा प्रभाव, पृष्ठ १५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया है। इन वस्तुओं की विस्तृत सूची से यह प्रकट होता है कि काव्यान्तर्गत इन्हें वर्ण्य-विषय के रूप में स्वीकार करने की रूढ़ि बन गई थी। प्रत्येक वस्तु के रंग और रूप (वर्ण और वर्ण्य) को लेकर भी कुछ निश्चित मान्यताएँ चल पड़ी थीं। इन स्वीकृत वर्ण्य-विषयों को निश्चित रूप-रंगों में वर्णन करने से काव्यसौन्दर्य में वृद्धि मानी जाती रही होगी। इसलिए केशव ने उन्हें भी अलंकार मानना ही ठीक समझा और उन्होंने वर्ण (रंग), वर्ण्य (रूप), भू श्री (प्राकृतिक वैभव), राज्य-श्री (मानवीय वैभव) को सामान्यालंकार माना। इस अलंकार के अन्तर्गत प्रस्तुत सामग्री केशव की निजी नहीं है। उन्होंने इसके लिए मुख्यतः दो ग्रन्थों का आधार लिया है—अमर कवि-कृत 'काव्य-कल्पलता-वृत्ति' और केशव मिश्रकृत 'अलंकार शेखर'।[1] केशव की मौलिकता इस सामग्री को अपने ढंग से क्रमबद्ध करने तथा सामान्य और विशिष्ट अलंकारों के रूप में विभाजित करके प्रस्तुत करने में है।

विशिष्ट अलंकारों के अन्तर्गत केशव ने स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष, प्रेय, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्जस्व, रसवत्, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, आवृत्ति, उक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, अमित, पर्यायोक्ति, युक्ति समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परवृत्त, उपमा, यमक तथा चित्र का उल्लेख किया है। केशव द्वारा वर्णित इन अलंकारों में अधिकांश का आधार आचार्य दण्डी का 'काव्यादर्श' है। कहीं-कहीं अमर कवि के 'काव्य-कल्पलता-वृत्ति' (गणना अलंकार के वर्णन में) और रुय्यक के 'अलंकार सूत्र' (विभावना और क्रमालंकार के निरूपण में) का आधार भी लिया गया है।[2] 'सुसिद्ध', 'प्रसिद्ध', 'विपरीत' अलंकार केशव की निजी उद्भावना माने गये हैं। यह भी कहा गया है कि इनमें अलंकारत्व नहीं है। ऐसा मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। जब वर्णन की विविध चमत्कारपूर्ण शैलियों को ही अलंकार माना जाता है तो इनमें भी अलंकारत्व मानना होगा। जब कारण के अपूर्ण रहने पर भी कार्य की 'सिद्धि' को अलंकार माना

---

१. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २३३।

२. केशव का 'क्रमालंकार' रुय्यक की 'एकावली' ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है[1] तब कोई कारण नहीं है कि 'कार्य करके तो कोई और मरे और सिद्धि कोई और भोगे' जैसे वर्णन को अलंकार ही न माना जाए।[2] इस दृष्टि से देखा जाय तो केशव का 'अमित' अलंकार भी अलंकार-कोटि में नहीं आएगा।[3] केशव के कई अलंकारों को लेकर शंका इसलिए उठती है कि उन्होंने अभिव्यक्ति-कौशल को ही नहीं, कथ्यवैशिष्ट्य को भी अलंकार माना है। इसीलिए उनकी दृष्टि में 'आशिष' (आशीर्वादात्मक उक्ति), 'प्रेम', 'आक्षेप', 'गणना' आदि भी अलंकार हैं।

आचार्य दण्डी के आदर्श पर केशव ने भी 'उपमा' अलंकार का सर्वाधिक विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होंने उपमा के संशय, हेतु, अभूत, अनभूत, विक्रय, दूषण, भूषण, मोह, नियम, गुणाधिक, अतिशय, उत्प्रेक्षित, श्लेष, धर्म, विपरीत, निर्णय, लाक्षणिक, असंभावित, विरोध, माल्योपमा, परस्परोपमा और संकीर्णोपमा आदि बाईस भेदों का उल्लेख किया है।[4] इन भेदों के सम्बन्ध में विचार करते समय ध्यान रखना होगा कि उन्होंने उपमा का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। 'उपमा' के अन्तर्गत सादृश्यमूलक सभी अलंकार आ जाते हैं। परवर्ती आचार्यों ने इन्हें स्वतन्त्र अलंकारों का स्वरूप प्रदान किया है। केशव का 'संशयोपमा', 'सन्देह' अलंकार से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार 'निर्णयोपमा' को 'व्यतिरेक', 'परस्परोपमा' को 'उपमेयोपमा' और 'अतिशयोपमा', को 'अनन्वय' के रूप में देखा जा सकता है। केशव के 'विपरीतोपमा' और 'संकीर्णोपमा' के लिए डॉ० हीरालाल दीक्षित ने

---

१. साधन का कारण विकल जहँ, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि॥
—'विशेष' अलंकार का लक्षण, 'कविप्रिया', पृष्ठ १४९।

२. साधि-साधि औरै मरै, औरै भोगै सिद्धि।
तासों कहत सुसिद्धि सब, जे हैं बुद्धि समृद्धि॥
—'सुसिद्धि' अलंकार का लक्षण, पृष्ठ २४३।

३. जहाँ साधनै भोगई, साधक की शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि॥—'कविप्रिया', पृष्ठ २३७।

४. 'कविप्रिया', चौदहवाँ प्रभाव, पृष्ठ २६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा है कि 'इनमें उपमा अलंकार का अस्तित्व ही नहीं है'।[1] किन्तु वास्तव में दोनों में 'औपम्य, है। केशव के अनुसार 'जहाँ पुण्यवानों को हीनों से उपमा दी जाय' वहाँ 'विपरीतोपमा' अलंकार होता है।[2] उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है—'राजनि श्री रघुनाथ के राज, कुमण्डल छोड़ि कमण्डल लीनो'।[3] यहाँ राजाओं की उपमा संन्यासियों से दी गई है। यहाँ राजा और संन्यासी (उपमेय और उपमान) दोनों विपरीत स्थिति वाले है, फिर भी दोनों की समता दिखाई गई है। 'उपमा' अलंकार में उपमेय और उपमान में विरोध कम नहीं होता। साम्य तो यत्किञ्चित् ही होता है। कवि समता दिखाकर चमत्कार प्रदर्शित करता है। केशव ने 'संकीर्णोपमा का' लक्षण न देकर उसके वाचक शब्द गिना दिये हैं। 'बन्धु', 'चोर', 'वादी', 'सुहृद्', 'कल्प', 'पृच्छ', 'अंगी', 'रिपु', 'सोदर' आदि शब्द संकीर्णोपमा के वाचक हैं। तात्पर्य यह है कि यदि कहीं इस प्रकार का प्रयोग हो कि 'दीपक नक्षत्र का भाई है' तो इसमें दीपक को 'उपमेय' नक्षत्र को 'उपमान' और भाई को 'वाचक' मानकर संकीर्णोपमा समझना चाहिये। उपर्युक्त वाचकों का प्रयोग सम्बन्धगत समता होने पर ही किया जायगा। इसीलिए इसे 'उपमा' मानने में किसी प्रकार की हिचक नहीं होनी चाहिये।

केशव के अलंकार-निरूपण में मुख्यतः तीन प्रकार की त्रुटियों का निर्देश किया गया है—(क) लक्षणों की अस्पष्टता, (ख) दो भिन्न अलंकारों के लक्षण में समानता, (ग) लक्षणों और उदाहरणों में एकरूपता का अभाव। निश्चय ही ये दोष केशव में किसी-न-किसी मात्रा में हैं। किन्तु इनके आधार पर उनके आचार्यत्व पर आक्षेप नहीं किया जा सकता। वे हिन्दी-साहित्य में काव्य-शास्त्र का पथ-प्रवर्तन कर रहे थे। मार्ग प्रशस्त करनेवाले व्यक्ति में त्रुटियों का होना असम्भाव्य नहीं है। कुछ गड़बड़ी पद्य में ही लक्षण प्रस्तुत करने के कारण भी हुई है। गड़बड़ी का तीसरा कारण अलंकार और अलंकार्य को एक में मिला

---

१. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २५५।

२. केशव पूरे पुण्य के, तेई कहिये हीन।
तासों विपरीतोपमा, केशव कहत प्रवीन॥ —'कविप्रिया', पृष्ठ २७६।

३. वही, पृष्ठ २७७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देना भी है। वे आचार्य दण्डी के अनुसार शोभा कारक धर्म मात्र को अलंकार मानते थे। इसके अतिरिक्त, विषय की विविधता और विस्तार तथा अलंकार-भेदों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभेदों को प्रस्तुत करने का लोभ भी उपर्युक्त दोषों के आ जाने में सहायक हुआ है।

'रसिकप्रिया' रस ग्रंथ है। इसमें 'शृङ्गार', 'हास्य', 'करुण', 'रौद्र', 'वीर', 'भयानक', 'बीभत्स', 'अद्भुत', और 'शान्त' रसों का वर्णन किया गया है। आचार्य केशवदास ने 'शृङ्गार' को सभी रसों का नायक माना है और शृङ्गार मूर्ति भगवान् हरि के व्यक्तित्व में सभी रसों की स्थिति प्रमाणित की है।[1] उन्होंने 'शृङ्गार' के वर्णन में सर्वाधिक रुचि प्रदर्शित की है। शृङ्गार के दो भेद हैं—'संयोग' और 'वियोग'। संयोग शृङ्गार दो प्रकार का होता है—प्रच्छन्न संयोग और प्रकाश संयोग। इसी प्रकार वियोग भी दो प्रकार का होता है—प्रछन्न वियोग और प्रकाश वियोग।[2] शृंगार रस के आश्रय-आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। अतः केशव ने विस्तार से उनका वर्णन किया है।

नायक अभिमानी, त्यागी, तरुण, कोक-कला-प्रवीण, भव्य, क्षमा-शील, सुन्दर, धनी, पवित्र रुचिवाला और प्रवीण होता है। उसके चार प्रकार होते हैं—अनुकूल, दक्ष, शठ, धृष्ट। इनमें प्रत्येक के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो भेद हो सकते हैं।[3]

जाति के अनुसार नायिकाएँ पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी चार प्रकार की होती हैं। नायक के सम्बन्ध के आधार पर

---

१. श्री वृषभानु कुमारि हेतु शृंगार रूप भय।
वास हासरस हरे मात बंधन करुणामय॥
केशी प्रति अति रौद्र, बीर मारो बत्सासुर।
भय दावानल पान कियो, बीभत्स बकी उर॥
अति अद्भुत बंचि विरंचि मति, सात संतै सोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन, नवरस मय ब्रजराज नित॥
—'रसिकप्रिया', पृष्ठ २।

२. 'रसिकप्रिया प्रथम प्रकाश।

३. वही, द्वितीय प्रकाश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नायिकाएँ तीन प्रकार की स्वकीया, परकीया, समान्या—होती हैं। स्वकीया भी—मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तीन प्रकार की होती हैं। मुग्धा के—नवलबधू, नवयौवना, नवल अनंगा और लज्जाप्राय—चार भेद होते हैं। इसी प्रकार मध्या के भी—आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतननोभवा, सुरतिविचित्रा—चार भेद होते हैं। मध्या नायिका के तीन और भेदों—धीरा, अधीरा और धीराधीरा—का वर्णन भी केशव ने किया है। प्रौढ़ा नायिका भी चार प्रकार की होती हैं—समस्तरस को विदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रामति और लब्धापति। प्रौढ़ा के—धीरा, आकृतिगुप्ता और अधीरा तीन और भेद होते हैं। परकीया नायिका के दो भेद—ऊढ़ा और अनूढ़ा होते हैं।[1] केशव ने 'रसिकप्रिया' के सातवें प्रकाश में स्वाधीन पति का, उत्का, वासकशय्या, अभिसंधिता, खण्डिता, प्रोषितप्रेयसी, विप्रलब्धा और अभिसारिका नायिका के इन आठ अन्य भेदों का भी उल्लेख किया है। अभिसारिका नायिका के तीन प्रकार—प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका और कामाभिसारिका—माने हैं और फिर सभी नायिकाओं को उत्तम, मध्यम, अधम इन तीन कोटियों में रखा है। अन्त में उन्होंने 'अगम्या' नायिकाओं का भी उल्लेख कर दिया है।[2]

रागोभद्व नायक और नायिका के परस्पर दर्शन से होता है। इसलिए केशव ने साक्षात् दर्शन, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन और श्रवण-दर्शन का वर्णन चौथे प्रकाश में किया है। पाँचवें प्रकाश में दम्पत्ति चेष्टा, स्वयंदूतत्व और मिलन के विविध स्थानों और विधियों का वर्णन किया है। शृङ्गार-रस निरूपण का छठाँ प्रकाश अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें 'भाव', 'विभाव', 'अनुभाव', 'स्थायीभाव', 'सात्विकभाव', 'व्यभिचारी भाव' और 'हाव' का वर्णन लक्षण-उदाहरण सहित किया गया है। विभाव के अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपन के स्थानों की भी विस्तृत सूची गिनाई गई है। स्थायी भावों में केशव ने निर्वेद का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने आठ सात्विक अनुभावों का वर्णन किया है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण, अश्रु और (प्रलय ?)। व्यभिचारी भावों के अन्तर्गत उन्होंने परम्परागत सञ्चारियों का ही उल्लेख किया है। अन्तर केवल यह है कि 'अमर्ष' के लिए 'कोह' और

---

१. 'रसिकप्रिया', तृतीय प्रकाश।
२. वही, सातवाँ प्रकाश।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'असूया', के लिए 'निन्दा', 'औत्सुक्य' के लिए 'उत्कंठा', 'सुप्ति' के लिए 'स्वप्न', 'त्रास' के लिए 'भय' शब्दों का प्रयोग किया है। 'अवहित्था' का उल्लेख नहीं किया है। 'विवाद' का उल्लेख किया है; किन्तु उदाहरण न देने के कारण समझ में नहीं आता कि इससे उनका क्या तात्पर्य था। 'अवहित्था' के लिए तो 'विवाद' का प्रयोग सर्वथा असंगत है। 'अवहित्था' तो संगोपन की क्रिया है। 'हाव' के तेरह भेदों—'हेला', 'लीला', 'ललित', 'मद', 'विभ्रम', 'विद्वु', 'विलास' 'किलकिञ्चित्', 'विच्छित्त', 'विब्बोक', 'मोट्टायित' और 'बोध'—का उल्लेख भी केशव की निजी विशेषता है। संस्कृत के आचार्यों ने 'हाव' और 'हेला' को अंगज अलंकारों में स्थान दिया है।[1] और केशव द्वारा वर्णित हाव के अन्य भेदों को नायिका के स्वभावज या सात्त्विक अलंकारों में परिगणित किया है। केशव ने 'अंगज' और 'स्वभावज' दोनों प्रकार के अलंकारों को 'हाव' का भेद मानकर उपस्थित किया है। 'बोध' हाव की कल्पना केशव की निजी है। विशिष्टता यह है कि इसके उदाहरण में जो छन्द उन्होंने प्रस्तुत किया है उसे ही 'सूक्ष्मालंकार' का भी उदाहरण माना है। इस प्रकार 'सूक्ष्मालंकार' और 'बोध हाव' दोनों में अन्तर नहीं रह जाता।

वियोग शृङ्गार (विप्रलम्भ) का वर्णन भी केशव ने विस्तारपूर्वक किया है। उसके चार भेद—पूर्वानुराग, करुण, मान और प्रवास—और दस दशायें—अभिलाष, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण—मानी है। 'मान' के उन्होंने तीन भेद—गुरु, लघु और मध्यम—किये हैं और साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा तथा प्रसंग-विध्वंश को उसके मोचन का उपाय माना है। 'करुण' और 'प्रवास' विरह का वर्णन भी उन्होंने अलग-अलग किया है।

नायक-नायिका का संयोग कराने में सखियों का महत्त्व कम नहीं है। केशव के अनुसार 'धाइ', 'दासी', 'नाइन', 'नटी', 'मालिन',

---

१. यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशति संख्यकाः।
अलंकारास्तत्र भावहाव हेलास्त्रयोऽङ्गजाः॥
—'साहित्यदर्पण', तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १७७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'तमोलिन' 'चुड़िहारिन', 'सुनारिन', 'रमजनी', 'सन्यासिनी' और 'पटइन' जाति की स्त्रियाँ सखियों का कार्य कर सकती हैं। इनका कार्य शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलाना, शृङ्गार करना, झुकना (मान करना) और उलाहना देना है।

अन्य रसों के वर्णन में केशव ने रुचि नहीं दिखाई है। चौदहवें प्रकाश में शेष सभी रसों का वर्णन कर दिया है। 'हास्य-रस' के उन्होंने 'मन्दहास', 'कलहास', 'अतिहास' और 'परिहास' चार भेद किये हैं। प्रिय के वियोग में वे करुण-रस मानते हैं, और उसका रंग तरुण कपोत-सा बताते हैं। उनके अनुसार क्रोधवश रौद्र रस उत्पन्न होता है। इसका अरुण वर्ण होता है। उत्साह से वीर रस उत्पन्न होता है। इसका वर्ण गौर है। भय से भयानक रस उत्पन्न होता है। इसका वर्ण श्याम होता है। 'निन्दा' (घृणा) से वीभत्स रस होता है। इसका वर्ण नीला होता है। आश्चर्य से अद्भुत रस होता है। इसका वर्ण पीत होता है। उदासीनता (निर्वेद) से समरस (शान्त रस) उत्पन्न होता है।

पन्द्रहवें प्रकाश में, 'कैशिकी', 'भारती', 'आरभटी' और 'सात्विकी' (सात्वती) वृत्तियों का वर्णन है। केशव के अनुसार (कौशिकी) के अन्तर्गत करुण, हास्य और शृङ्गार रस आ सकते हैं। 'भारती' में 'वीर', 'अद्भुत' और 'हास्य' रसों की स्थिति होती है। 'आरभटी' में 'रौद्र', 'भय' और 'वीभत्स' रसों का समावेश होता है। 'सात्विकी' (सात्वती) में 'अद्भुत', 'वीर', 'शृङ्गार' और 'समरस' (शान्त रस) आ सकते हैं।

सोलहवें और अन्तिम प्रकाश में 'अनरस' का वर्णन है। इसके—'प्रत्यनीक' (विरोधी), 'नीरस', 'विरस', 'दु:सन्धान' और 'पात्रादुष्ट'—पाँच भेद बताये गये हैं। जहाँ विरोधी रसों—शृङ्गार और वीभत्स—का वर्णन हो वहाँ 'प्रत्यनीक' समझिये। जहाँ नायक-नायिका के हृदय में कपट हो वहाँ 'नीरस' समझिये। शोक में भोग का वर्णन ही 'विरस' है। जहाँ नायक-नायिक में एक अनुकूल दूसरा प्रतिकूल हो वहाँ 'दु:सन्धान' समझिये। जहाँ जो उचित न हो, बिना समझे-बूझे उसी को पुष्ट करते जाना 'पात्रा-दुष्ट' है। इन अनरसों का वर्णन कवि लोग नहीं करते।

केशव के उपर्युक्त विवेचन में पर्याप्त मौलिकता है। उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा निजी अनुभव के आधार पर लक्षण, भेद-प्रभेद और उदाहरण देने की चेष्टा की है। नायिका-भेद वर्णन में काव्यशास्त्र के साथ ही कामशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट है। अगम्या-वर्णन,[1] सम्मिलन-स्थान-वर्णन,[2] दूती एवं सखी जनकर्म-वर्णन[3] आदि में भी कामशास्त्र से प्रेरणा ली गई हैं। रस-विवेचन में केशव ने संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों—'नाटचशास्त्र' (भरतमुनि), 'साहित्यदर्पण' (विश्वनाथ), 'रस-रवि-सुधाकर' (भूपाल) का आधार ग्रहण किया है।[4] किन्तु उन्होने उपर्युक्त आचार्यों की परिभाषाओं का रूपान्तरमात्र प्रस्तुत न करके एक आचार्य की भाँति उन्हें अपने ढग से प्रस्तुत किया है।

'रसिकप्रिया' में आचार्य केशव ने 'रस' को पर्याप्त महत्व दिया है। वे कहते हैं कि जैसे दृष्टि के अभाव में विशाल और चंचल नेत्र भी शोभा नहीं प्राप्त करते उसी प्रकार वाणी की रसालता (सरसता) के अभाव में कविजन सौन्दर्यसृष्टि नहीं कर सकते।[5] ध्यान रखना होगा कि 'रस' का महत्व स्वीकार करते हुए भी वे उसे शोभा का हेतु ही मानते हैं और इस प्रकार अलंकारों की सीमा मे समेट लेते हैं।

पिंगल-शास्त्र पर केशव ने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना नहीं की। 'कविप्रिया' के तीसरे प्रभाव में दोषों का वर्णन करते हुए उन्हें गणों के शुभाशुभ प्रभाव, गुरु-लघु-भेद तथा यति-भंग आदि छन्द-शास्त्र-सम्बन्धी सिद्धान्तों का परिचय दिया है। उनके छन्दःशास्त्र के अध्ययन का अनुमान 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त छन्दों को देखकर लगाया जा सकता है। समस्त हिन्दी-साहित्य म किसी एक ग्रन्थ में इतने अधिक छन्दों का प्रयोग नहीं मिलता। 'रामचन्द्रिका' में २४ मात्रिक तथा ५८ वार्णिक छन्दों का प्रयोग किया गया है।[6] इससे केशव के पाण्डित्य-

---

१. वात्स्यायन 'कामसूत्र', अध्याय ५
२. वही, पंचमाधिकरण, अध्याय ४
३. वही, पंचमाधिकरण, अध्याय ४
४. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ३०१।
५. ज्यों बिन दीठि न शोभिजै, लोचन लोल विशाल।
ज्यों ही केशव सकल कवि, बिन वाणी न रसाल॥—'रसिकप्रिया', पृष्ठ ३।
६. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २०३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रदर्शन की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। प्रबन्ध-कौशल की दृष्टि से छन्द वैविध्य की उपादेयता नगण्य है, इसका ज्ञान उन्हें था। अन्यथा 'वीरसिंहदेव चरित' में अधिकांशतः दोहे और चौपाई छन्दों का ही प्रयोग वे न करते।

उपर्युक्त समस्त विवेचन के आधार पर केशवदास को उच्चकोटि का आचार्य माना जा सकता है। वे रीति प्रवर्तक आचार्य हैं। कवि-शिक्षा सम्बन्धी समस्त मान्यताओं—अलंकार, रस, नायिका भेद, गुण-दोष-विवेचन, काव्य-नियम (रूढ़ि) छन्दों के विविध रूप आदि—को उन्होंने विश्वासपूर्वक हिन्दी-पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। उनके लक्षणों और उदाहरणों में यत्किञ्चित् भूलें हो सकती हैं किन्तु इससे उनके अध्ययन और पाण्डित्य में शंका नहीं की जा सकती। अलंकारों का विभाजन, नायिका भेद सम्बन्धी कुछ मान्यताएँ, 'हाव' के अन्तर्गत ही सात्विक और स्वभाव अलंकारों की परिगणना आदि उनकी कुछ मौलिक स्थापनाएँ हैं; जो उन्हें आचार्यों की कोटि में स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त हैं। छन्दःशास्त्र के सम्बन्ध में तो निर्विवाद रूप से केशव का ज्ञान हिन्दी के अन्य किसी आचार्य से अधिक है। संस्कृत के मेधावी आचार्यों की तुलना में निश्चय ही केशव का महत्व नहीं है, किन्तु हिन्दी के पथ-प्रवर्तक आचार्य के रूप में उनका स्मरण बराबर होता रहेगा। केशव के पूर्व संस्कृत काव्य-शास्त्र इतना पूर्ण और प्रौढ़ हो चुका था कि उसमें किसी प्रकार की मौलिक उद्भावना करना असम्भव-सा था। उस शास्त्रीय सामग्री को हिन्दी के पाठकों के लिए व्यापक रूप से उपस्थित करने का कार्य उन्होंने सर्वप्रथम किया है। इस दृष्टि से उनका महत्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रामाणिक कृतियाँ—केशवदास की आठ कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं—'रसिकप्रिया' (१६२८ वि०), 'रामचन्द्रिका' (१६५८ वि०), 'नखशिख'[1] (१६५८ वि०), 'कविप्रिया' (१६५८ वि०)' 'रतनबावनी, (१६५८-१६६४), 'वीरसिंहदेव चरित' (१६६९ वि०), 'विज्ञान-गीता, (१६५७ वि०), 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' (१६६९ वि०)।

---

१. वेद देखि ज्यों सुमृति भव, सुमृतिनि देखि पुरान।
देखि पुराणनि त्यों करी, गीता ज्ञान प्रमान।
—'विज्ञानगीता', प्रथम प्रभाव १२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय की दृष्टि से 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' और 'रतनबावनी' ऐतिहासिक महत्व की कृतियाँ हैं। 'वीरसिंहदेव चरित' में ओड़छा नरेश महाराज वीरसिंहदेव का जीवन-चरित वर्णित है। 'रतनबावनी' ओछड़ा नरेश मधुकर शाह के पुत्र कुँवर रतनसेन की प्रशंसा में लिखी गयी है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जहाँगीर का यशवर्णन एक विशेष माध्यम और विशिष्ट शैली में किया गया है। 'उद्यम' और 'भाग्य' दोनों में विवाद होता है। प्रश्न यह है कि दोनों में कौन बड़ा है। निर्णय के लिए वे भगवान् शंकर के पास जाते हैं। भगवान् शंकर उन्हें जहाँगीर के पास भेजते हैं। राजधानी देखते हुए दोनों महाराज जहाँगीर की सभा में पहुँचते हैं। इसी प्रसंग में सम्राट् जहाँगीर, उनके सभासदों तथा अधीनस्थ राजाओं का वर्णन किया गया है। 'रामचन्द्रिका' में भगवान् राम के वैभव का वर्णन है। इसमें केशव की भक्ति भावना की अभिव्यक्ति भी हुई है। मुनि वाल्मीकि द्वारा स्वप्नावस्था में दी गई प्रेरणा में केशवदास इसकी रचना में प्रवृत्त हुए थे। 'विज्ञानगीता' आध्यात्मिक पुस्तक है। उसे केशव ने वेदों, स्मृतियों और पुराणों की परम्परा में रखा है। 'रसिकप्रिया' में रस-विवेचन तथा नायिकाभेदवर्णन किया गया है। शृंगार रस को विशेष महत्व दिया गया है। 'कविप्रिया' में 'काव्य-रीति' अलंकार और कविपय को महत्व दिया गया है। 'नखशिख' में राधाजी का नख-शिख वर्णन किया गया है। यह स्वतंत्र रचना प्रतीत होती है, यद्यपि 'कविप्रिया' के कुछ संस्करणों में चौदहवें प्रभाव के अन्त में प्रसंगवश इसे समाविष्ट कर लिया गया है।

काव्यसौष्ठव

भावानुभूति—केशवदास की प्रसिद्धि मुख्यतः 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' पर आधृत है। भावानुभूति और काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इन कृतियों का महत्व कम नहीं है। जीवन में सर्वाधिक व्यापक, गम्भीर और मानव-क्रिया-कलापों को प्रभावित करनेवाला भाव 'रति' है। 'रसिकप्रिया' में 'रति' को केशवदास जी ने भी सर्वाधिक महत्व दिया है। उन्होंने इसी के अन्तर्गत अन्य सभी भावों को समाविष्ट करना चाहा है। भगवान् कृष्ण को नवरसमय मानकर उन्होंने राधाकृष्ण को ही सभी भावों का आश्रय स्वीकार किया है। ग्रन्थारम्भ में ही वे कृष्ण के नवरसमय चरित्र की ओर संकेत करते हैं—"श्री राधाजी के लिए जो शृंगार रूप हुए, गोपियों का वस्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हरण करते समय जिन्होंने हास्य-रूप दिखाया; माता यशोदा के द्वारा बाँधे जाने पर जो करुणा-मूर्ति बन गये, केशी का संहार करते समय जिन्हें रौद्र रूप धारण करना पड़ा; वत्सासुर का बध करते समय जो साक्षात् वीररस की मूर्ति बन गये; दावानल पान करते समय जिन्होंने भयानक रूप धारण किया; बकी को मारकर जिन्होंने बीभत्स दृश्य उपस्थित किया; ब्रह्मा को भी धोखे में डालकर जिन्होंने अद्भुत रस की सृष्टि की और निरन्तर शांतरस-रूप हैं; ऐसे नवरसमय व्रजराज की सेवा रसिक जनों को करनी चाहिए।"[1] निस्संदेह यदि केशव ने भगवान् कृष्ण के चरित्र को इस विशद भूमिका में प्रतिष्ठत किया होता तो उनके जीवन में सभी रसों और भावों की उचित व्यञ्जना हो सकी होती। उन्होंने ऐसा नहीं किया, वरन् शृंगार का रस-राजत्व प्रमाणित करने के लिए, उसी के प्रसंग में अन्य सभी रसों की व्यञ्जना का अद्भुत प्रयोग किया। उन्हें यह ध्यान नहीं रहा कि 'करुण', 'बीभत्स' 'रौद्र', 'वीर' और 'भयानक' शृंगार रस के विरोधी माने गये हैं; विशेषतः एक ही आश्रय या एक ही आलम्बन से सम्बद्ध होने पर तो इनका विरोध काव्य-सौंदर्य को नष्ट कर देता है। श्री राधा को वीररस का आश्रय मानकर केशव ने विचित्र रचना की है—

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजी,
हाव रथ भाव पतिराजि चली चाल सों:
लाज साज कुल कानि सोच पोच भय मानि,
भौंहैं धनु तान बान लोचन बिसाल सों।
केशोदास मंदहास असि कुच भट गिरे,
भेंटे भये प्रतिभट भाले नखजाल सों।
प्रेम को कवच कसी, साहस सहायक लै,
जीति रतिरन आजु मदन गुपाल सों।[2]

---

१. श्री वृषभानु-कुमारी हेतु, शृंगार रूप भय।
बास 'हास-रस' हरे, मातबंधन 'करुणामय'॥
केसी प्रति अतिय 'रौद्र', 'वीर' मारो वत्सासुर।
'भय' दाबानल पान कियो, 'बीभत्स' बकी उर॥
अति 'अद्भुत' बंचि विरंचि मति, सांत संतते सोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन, नवरस मय व्रजराज नित॥
—'रसिकप्रिया', पृष्ठ २।

२. 'रसिकप्रिया', चौदहवाँ प्रकाश, (हि० ए० संस्करण), पृष्ठ ८५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गति के गजराज, देह दीप्ति के घोड़े, हावों का रथ, भावों के सिपाही, भौहों का धनुष, कटाक्षों के बाण, मंदहास्य की तलवार, कुचों के योद्धा, प्रेम का कवच और साहस की सहायता लेकर प्रिया जी (राधा जी) ने जो रतिरण किया होगा वह न 'रति' हो सकता है और न रण। मानव जाति अपने विकास की आदिम अवस्था में ऐसी स्थिति में अवश्य थी, जब रतिक्रिया एक प्रकार की रण क्रिया थी। लेकिन सभ्यता की विकसित अवस्था में स्त्री-पुरुष के चिर साहचर्य ने काम चेष्टाओं को कलात्मक गरिमा प्रदान कर दी है। ऐसी स्थिति में केशव की उपर्युक्त कल्पना समीचीन नहीं कही जा सकती। 'शृंगार' के साथ 'बीभत्स' की योजना करके तो उन्होंने काव्य को कलंकित-सा कर दिया है। 'रसिक प्रिया' में 'रतिभाव' के चित्रण में केशव ने सामान्य सुरुचि का परिचय भी नहीं दिया है। उन्होंने कृष्ण को उस लम्पट की भूमिका में उपस्थित किया है जो प्रत्येक परिस्थिति में केवल काम-पिपासा की तुष्टि को ही लक्ष्य मानकर चलता है। उन्होंने इसके अनुकूल मिलन-प्रसंगों की उद्भावना की है। एक बार वृषभानु के समीपवर्ती घर में आग लग जाती है, सारे ब्रजवासी उसे बुझाने में लग जाते हैं। कृष्ण को और कुछ नहीं सूझता, वे इस अवसर का उपयोग राधा के विशाल नेत्रों, चिबुक और कपोलों को चूमने तथा उनका आलिंगन करने में करते हैं—

लोचन विशाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चंपे की सी माला लाल लीन्हीं उर लाइकै।

इस प्रकार, महाकवि ने बलदेव जी की वर्षगाँठ पर जब नन्द जी के महल में भारी भीड़ हो जाती है तो अवसर निकालकर राधा-कृष्ण का मिलन करा दिया है। लगता है कि वर्षगाँठ का आयोजन इसीलिए किया गया था। यहाँ तक तो गनीमत थी, एक बार तो धाय के आग्रह पर अर्द्धरात्रि में सघन घनों के घिर जाने पर नन्दलाल जी (धाय के घर पर ही) राधिका की आधी सेज पर चुपचाप सो जाते हैं—

घोर उठे गगन सघन घन चहूँ दिशि,
उठि चले कान्ह धाय बोली उठि तिहूँ काल।
आधी रात अधिक अँधेरी माँझ जैहो कहाँ,
राधिका जी आधी सेज सोय रहो नन्दलाल॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार की प्रसंगोद्भावना की प्रेरणा कवि को कामशास्त्रीय ग्रंथों से मिली है। वात्स्यायन के कामसूत्र के तैंतालीसवें प्रकरण में परिचय-सम्पादन-विधि का उल्लेख करते समय मिलने के लिए उपयुक्त स्थलों और अवसरों में - मित्र, सम्बन्धी, राज्याधिकारी (महामात्य) तथा वैद्य का घर और विवाह, यज्ञोत्सव या विपत्ति का समय तथा उद्यान-गमनादि के अवसर मिलने के लिए अधिक उपयुक्त माने गये हैं। महाकवि केशव ने इसी आधार पर उपर्युक्त प्रसंगों की कल्पना की है। दरबारी वातावरण की रंगीनी में वे यह भूल गये कि कामशास्त्र के आधार पर रस-शास्त्र की रचना संगत नहीं है। रस-शास्त्र लोक-मर्यादा का सर्वथा उल्लंघन नहीं कर सकता। इसका यह तात्पर्य नहीं कि केशव का 'रति' या शृंगार-वर्णन सर्वत्र हीन कोटि का ही है या उनमें भावाभिव्यक्ति की क्षमता ही नहीं थी। 'रसिक प्रिया' में ही कई स्थलों पर उनके वर्णन बड़े ही मार्मिक हैं। नायिका के 'गुरुमान' का वर्णन करते हुए उन्होंने बड़ा ही सजीव, स्वाभाविक और अवसरोचित चित्रण किया है—

बूझति ही वह गोपी गुपालहिं, आजु कछू हँसिकै गुन गाथहिं।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि, कैसे धौं आइ गयो व्रजनाथहिं॥
खाति खवावति ही जु बिरी, सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं
आतुर ह्वै उनि आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरान के साथहिं॥

प्रेम-गर्विता नायिका के विश्वास को कितनी जल्दी ठेस लगती है, जरा सी बात उसके हृदय को किस सीमा तक प्रभावित कर सकती है, इसका बड़ा ही स्वभाविक चित्र 'सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं' के द्वारा अंकित कर दिया गया है। 'शृंगार' के अन्तर्गत नायिका के रूप-वर्णन की परम्परा नयी नहीं है। केशव ने भी राधा का सौंदर्याङ्कन किया है। राधा को पद्मिनी नायिका के रूप में कल्पित करते हुए वे कहते हैं—

हँसत कहत बात, फूब से झरत जात,
गूढ़ भूरि हाव-भाव कोक की सी कारिका।
पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरि निहारि,
डारौं वारि किन्नरी नरी गँवारि नारिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तापै हौं कहा ह्वै जाउँ बलि जाउँ केसोदास,
रची विधि एक नवजलोचन की तारिका।
भौंरे से भँवत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चम्पे की सी कली वृषभानु की कुमारिका।[1]

कवि ने वृषभानु-कुमारी को चम्पे की कली के रूप में कल्पित करके न केवल उसके चम्पकवर्णी होने का संकेत किया है, वरन् उसके विकासोन्मुख यौवन की व्यंजना भी की है। केशवदास जी यदि काव्य-रीति-निरूपण में न उलझे होते तो कदाचित् उनकी भावाभिव्यंजना अधिक स्वाभाविक, सरस, रमणीय और मार्मिक होती। 'रसिकप्रिया' का प्रत्येक छन्द 'रस', 'भाव', 'नायक', 'नायिका', 'विभाव', 'सखी', 'दूती', संयोग की स्थितियाँ, वियोग-जनित दशाएँ या मान आदि के भेद-प्रभेद के उदाहरण रूप में प्रस्तुत हुआ है। अतः प्रत्येक छन्द की अपनी सीमाएँ हैं। यदि स्वतंत्र उद्भावना की गयी होती तो बात ही दूसरी होती। वियोगिनी राधा का एक चित्र देखिए—

केशव चौंकति सी चितवै छतिया धरकै तरकै तकि छाँहीं।
बूझिये और कहै मुख और सु, और की और भई पल माहीं।
डीठि लगी किधौं बायगा मन भूलि पर्‍यौ कै कर्‍यौ कछू काँहीं।
घूँघट की घटकी पटकी हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाँहीं।[2]

यह छन्द नायिका के प्रकाश-उन्माद के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्माद के लक्षणों में कवि कह आया है कि 'तर्कना', 'कभी उठकर चल देना', 'एकटक देखते रह जाना', 'कभी रोना', 'कभी हँसना' आदि क्रियाएँ उन्माद के अन्तर्गत आती हैं। ऊपर की तीन पंक्तियों में पूर्वोल्लिखित लक्षणों को लाना आवश्यक था। यदि ऊपर की पंक्तियों में राधा की विरह-व्याकुलता की गम्भीर व्यञ्जना उसकी मलीनता, उदासीनता और कारुणिकता दिखाकर की गयी होती और अन्त की चौथी पंक्ति में—

'घूँघट की घटकी पटकी हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं,

---

१. 'रसिकप्रिया', तृतीय प्रकाश, छन्द ४।
२. 'रसिकप्रिया', आठवाँ प्रकाश, छन्द ४१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा गया होता तो प्रस्तुत छन्द अपनी सरसता में अकेला होता। तुलना के लिए देखना हो तो सूर की राधा का चित्र देख लीजिए—

अति मलीन वृषभानु-कुमारी,
हरि स्रम-जल भींज्यौ उर अंचल।
तिहिं लालच न धुवावति सारी,
अध मुख रहति अनत नहिं चितवति।
ज्यों गथ हारे थकित जुवारी,
छुटे चिकुर बदन कुम्हिलानें।
ज्यों नलिनी हिमकर की मारी,
सूरदास कैसे करि जीवै।
ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी॥[1]

यह अनुभूति के आग्रह पर अंकित चित्र है, किसी पूर्व निश्चित लक्षण का आनिवार्य उदाहरण बनकर नहीं आया है। 'कविप्रिया' में गणागण का उदाहरण देते हुए केशवदास जी ने दोहे जैसे छोटे छन्द में एक बड़ी ही मार्मिक उक्ति प्रस्तुत की है—

राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
ऊधव! ह्यां तुम कौन सों, कहौ योग की गाथ॥[2]

लगता है, दोहा पहले से ही रचित था और बाद को उदाहरण रूप में रख दिया गया।

'रामचन्द्रिका' में 'रति' की अभिव्यक्ति में केशव को अधिक सफलता नहीं मिली है। पंचवटी प्रसंग में एक-दो छन्दों में सीता द्वारा राम के रिझाये जाने का वर्णन है। सीता जी वीणा बजाकर रामचन्द्र जी का मन बहलाती हैं। उनके संगीत के प्रभाव से वन्य-पशु भी वहाँ एकत्र हो जाते हैं और भगवान् राम उन सभी को आभूषण पहनाते हैं—

जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना, बहु गुन लीना सुख सीता।
पिया जियहि रिझावै, दुखनि भजावै, विविध बजावै गुण गीता॥

---

१. 'सूरसागर', दशम स्कंध, छन्द ४६९१।
२. 'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ३०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तजि मति संसारी बिपिन बिहारी, दुख सुखकारी घिरि आवैं।
तब तब जगभूषण रिपुकुल-दूषण, सबको भूषण पहिरावैं ॥[1]

रावण-वध के पश्चात् अयोध्या लौटने पर 'रति' भाव (शृंगार) का विस्तृत वर्णन राम के सामन्ती जीवन के चित्रण-प्रसंग में किया गया है। तीसवें, एकतीसवें और बत्तीसवें प्रकाश में 'रंगमहल के संगीत', 'राम के शयन', 'सीता की दासियों का नखशिख' और 'राम की जलकेलि' का विस्तृत वर्णन है। इन प्रसंगों में कवि राम और सीता का आश्रय-आलम्बन रूप में नहीं ला सका है। राम सीता की दासियों के साथ ही क्रीड़ा करने में मग्न हैं। यह राम-दासीगण-लीला भी अलंकृत वर्णनों से भरी है। केशव जी इस प्रसंग में रामचन्द्र जी के नवीन बाग, कृत्रिम पर्वत और कृत्रिम सरिता का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं। जल-क्रीड़ा का एक चित्र देखिए—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हँसी हँसबंश,
एक हँसिनी सी बिसहार हिये रोहियो।
भूषण गिरत एकै लेति बूड़ि बीचि बीच,
मीन गति लीन हीन उपमान टोहियो।
एकै मत कैकै कंठ लागि लागि बूड़ि जात,
जलके देवता सी देवि देवता बिमोहियो।
केशोदास आस-पास भँवर भँवत जल,
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहियो।[2]

राम की यह जल-क्रीड़ा उनके मर्यादित रूप के प्रतिकूल है। निश्चय ही यहाँ राम के रूप में मध्ययुग का सामान्य नृप कवि-मानस में प्रतिष्ठित हो गया है। महाकवि ने केलि-रत राम को 'नृपति' शब्द से ही अभिहित किया है—

क्रीड़ा सरवर में नृपति, कीन्हीं बहु विधि केलि।
निकसे तरुणि समेत जनु, सूरज, किरण सकेलि ॥[3]

---

१. 'रामचन्द्रिका', ग्यारहवाँ प्रकाश, छन्द २७।
२. 'रामचन्द्रिका', बत्तीसवाँ प्रकाश, छन्द ३७।
३. 'रामचन्द्रिका', बत्तीसवाँ प्रकाश, छन्द ३८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव-जीवन में व्यापकता, प्रभाव और आकर्षण-क्षमता की दृष्टि से 'रति' के बाद 'करुण' का स्थान है। राम-कथा का बीज-भाव करुणा है। इसलिए 'रामचन्द्रिका' में 'करुणा' की सफल अभिव्यंजना के लिए पर्याप्त गुंजाइश थी। रामचन्द्रिका के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ऐसे अवसरों को साफ टाल गया है। यह कहना कि यह 'रामचन्द्र-चन्द्रिका' है और चन्द्रिका से तात्पर्य वैभव की पूर्णता से है, इसलिए कवि राम के राजसी (वैभवपूर्ण) ठाट-बाट के वर्णन में ही प्रवृत्त हुआ है; कुछ बहुत युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। नामकरण और उसके अनुसार रचना का स्वरूपनिर्माण, ये दोनों बातें भी तो कवि की मनोवृत्ति का द्योतन करती हैं। सत्य यह है कि कवि की मनोवृत्ति ही ऐसी नहीं थी कि वह कारुणिक प्रसंगों में तन्मय होकर पूरी सच्चाई से उसका चित्रण करता। राम-कथा में राम-वन-गमन का प्रसंग कवि की सहृदयता की कसौटी है। इस कसौटी पर चढ़ने से ही केशव ने इन्कार कर दिया है। 'रामचन्द्रिका' में कुल अट्ठाईस छन्दों में ही भरत और शत्रुघ्न का ननिहाल जाना, दशरथ का राम को राज्य देने के लिए गुरु वशिष्ठ से मंत्रणा करना, कैकेयी को यह समाचार प्राप्त होना, उसका राम को अकारण वन भेजने का निश्चय करना और दशरथ से वरदान माँगना, राम का वन जाने का निश्चय, उनका माता से आज्ञा लेना और माता को नारी-धर्म का उपदेश देना, राम का सीता के पास जाना, राम-सीता-संवाद, राम-लक्ष्मण-संवाद और अन्ततः तीनों का अयोध्या त्यागकर वन-पथ पर अग्रसर होना यह सब कुछ वर्णन कर दिया गया है। इस पूरे प्रसंग को पढ़कर पाठक को बड़ी निराशा होती है। अन्य स्थलों पर 'करुणा' के कुछ चित्र अच्छे बन पड़े हैं। शक्ति-बाण द्वारा लक्ष्मण के घायल होने पर राम का विलाप, मेघनाद की मृत्यु पर रावण का क्रन्दन, चित्रकूट में माताओं से मिलने पर राम का पिता की कुशलता पूछना और इस पर माताओं का रुदन[1], विश्वामित्र द्वारा राम-लक्ष्मण की याचना और राम-वियोग में व्याकुल महाराज दशरथ का गम्भीर मौन[2] आदि कुछ ऐसे हृदय-द्रावक चित्र हैं जिन्हें करुणा की

---

१. तब पूछियो रघुराइ। सुभ है पिता तन माइ।
तब पुत्र को सुख जोइ। क्रम तैं उठीं सब रोइ॥

२. रामचलत नृप के युग लोचन। वारिभरित भये बारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं। केशव उठि गये भीतर भौनहिं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सफल अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु इस सफलता का महत्त्व सापेक्षिक है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि केशव की मनोवृत्ति करुण प्रसंगों के लिए सर्वथा अनुकूल थी। इन्द्रजीत सिंह के अखाड़े में 'नवरंग राय' की संगीत-लहरी में मग्न रहनेवाले, विचित्र 'नयना' के कटाक्ष-बाणों से विद्ध होकर उसके रूप की प्रशंसा करनेवाले, 'ज्ञानरंग' के राम-सागर में उठनेवाली स्वर-लहरियों में डुबकी लगानेवाले, 'रंगराय' के अंग-अंग से छलकनेवाली रूप-लहरी का पान करनेवाले, 'रंगमूर्ति' के पद-संचालन के साथ सिर-चालन करनेवाले और 'प्रवीण राय' के चरणों में अपनी समस्त काव्य प्रतिभा अर्पित करनेवाले केशवदास भवभूति की विभूति कैसे धारण करते?

'भय', 'आतंक', 'क्रोध' और 'उत्साह' का वर्णन करने में केशव को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। इन सभी मनोविकारों से उनका सीधा परिचय था। विवाहोपरान्त दल-बल के साथ जनकपुरी से अयोध्या लौटते समय राम से परशुराम का मिलन, शील और शान्ति से क्रोध और आतंक का मिलन है। परशुराम के रौद्र रूप को देखकर मदमत्त हाथियों का मद उतर जाता है, उनका गर्जन बन्द हो जाता है, गम्भीर ध्वनि से बजती हुई दुन्दुभियाँ सहसा रुक जाती हैं, शूरवीर लोग अस्त्र-शस्त्र फेंककर भागने लगते हैं और कुछ तो कवचादि काट-कूटकर स्त्री-वेश धारण कर लेते हैं।[1] रावण की सभा का वर्णन करते समय आतंक का अच्छा चित्र अंकित किया गया है।

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे।
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूर बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥[2]

उपर्युक्त छन्द 'हनुमन्नाटक' के निम्नलिखित छन्द के आधार पर लिखा गया है—

---

१. 'रामचन्द्रिका', सातवाँ प्रकाश, छन्द २।
२. 'रामचन्द्रिका', सोलहवाँ प्रकाश, छन्द २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मन्नययनस्य नेष समयः तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जड़मते नैषा सभा वज्रिणः।
वीणा संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लंकेश्वरः॥

यदि केशव ने स्वतन्त्र कल्पना का आधार लिया होता तो हम उसके कविरूप को सादर नमस्कार करते, यों तिरस्कार तो अब भी नहीं कर सकते; क्योंकि एक भाव-चित्र के आधार पर दूसरा चित्र अंकित करना भी सरल नहीं है। लवकुश-शत्रुघ्न-युद्ध वर्णन में 'उत्साह' की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। 'रामचन्द्रिका' में युद्धवीर का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहीं है। 'रतनबावनी' और 'वीरसिंह-देव चरित' में भी युद्धवीर का सजीव वर्णन किया गया है। 'रतन-बावनी' में कुँवर रतनसेन अकबर की विशाल वाहिनी से युद्ध करने के लिए अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए कहते हैं—

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पैज पन धारि मारि सामतन लिज्जिय॥
धरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब॥
रघुसाह नंद इमि उच्चरण खंड खंड पिंडहि करहुँ।
कट्टरहुँ सुगत हथियान के मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ॥[1]

यद्यपि यह वर्णन चारण कवियों की छप्पय-पद्धति पर किया गया है और इसमें परम्परागत उक्तियों का आधिक्य है; किन्तु इसमें निहित उत्साह-भावना और उसकी ओजपूर्ण व्यंजना केशव की युद्ध-वर्णन-क्षमता की परिचायिका है। राजदरबार में रहते हुए केशव ने 'भय', 'आतंक' और 'उत्साह' की प्रत्यक्ष अनुभूति की थी। सम्भवतः उन्हें युद्ध-भूमि में भी उपस्थित होना पड़ा था। अतः उनकी कृतियों में इस प्रकार के वर्णनों का सजीव होना स्वाभाविक है।

'रामचन्द्रिका' में 'राम-विरक्ति-वर्णन-प्रसंग' के अन्तर्गत 'निर्वेद'

---

१. आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ १५८ पर उद्धृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की व्यंजना करने में भी केशव को सफलता मिली है—मूढ़ मन की भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं—

पैरत पाय पयोनिधि में नर मूढ़ मनोज जहाज चढ़ोई।
खेल तऊ न तज़ै जड़ जीव जऊ बड़वानल क्रोध डढ़ोई।
झूठ तरंगनि में उरझ्यौ सु इते पर लाभ-प्रवाह बढ़ोई।
बूड़त है तेहि ते उबरै यह केशव काहे न पाठ पढ़ोई।[1]

इस प्रकार यदि सब मिलाकर देखा जाय तो भावाभिव्यक्ति में केशव सर्वथा असफल नहीं हैं। वे असफल इसलिए प्रतीत होते हैं कि मानव-जीवन के साथ व्यापक और गम्भीर सहानुभूति का उनमें अभाव है। आचार्य शुक्ल ने उन्हें हृदय-हीन इसीलिए कहा था कि मनुष्य के प्रति जो सहज राग है उसका पूर्ण विकास केशव की कविता में नहीं मिलता। शुक्लजी की सहृदयता मनुष्यता का पर्याय है। 'सम्पूर्ण जीवन-क्षेत्र और समस्त चराचर-क्षेत्र से मार्मिक तथ्यों का चयन' केशव के बूते की बात नहीं थी। 'सर्वभूत को आत्मभूत करके अनुभव कराना' भी उनके वश का न था। 'केवल असाधारणत्व-दर्शन की रुचि का त्याग केशव नहीं कर सकते थे, जिसे शुक्लजी सच्ची सहृदयता में सबसे बड़ी बाधा मानते हैं। सच्ची भावुकता या सहृदयता, शुक्लजी के शब्दों में—मुख के लावण्य, वनस्थली की सुषमा, नदी या शैल तटी की रमणीयता, कुसुम विकास की प्रफुल्लता, ग्राम दृश्यों की सरल माधुरी को देखकर मुग्ध होना; किसी प्राणी के कष्ट व्यञ्जक रूप और चेष्टा पर करुणार्द्र होना; किसी पर निष्ठुर अत्याचार होते देख क्रोध से तिलमिला उठना—अर्थात् व्यक्त प्रकृति के समस्त रूपों और मानव जीवन की सभी परिस्थितियों के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में है।[2] जो प्रकृति की विराट् रामणीयता से आँख मूँदकर केवल कामिनी की मुख-छवि निहारा करते हैं, जो दुःखियों के दुःख को देख-कर करुणार्द्र नहीं हो सकते, जो अत्याचारी के अत्याचार पर क्रोध न कर मानिनी के मान-जनित-कोप को ही काव्य का विषय बना सकते हैं, उन्हें पूर्ण सहृदय कैसे कहा जाय? जो लोग 'रसिकप्रिया' की स्फुट रसात्मक उक्तियों के आधार पर केशव को सहृदय प्रमाणित करते

१. 'केशव-कौमुदी', चौरासवाँ प्रकाश, छन्द २२।
२. 'रसमीमांसा', पृष्ठ २६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं वे हृदय को केवल 'रतिभाव' का ही अधिष्ठान मान लेते हैं और 'रति' भी वह जो केवल नायक-नायिका की विलास-चेष्टाओं के माध्यम से व्यक्त हो सकती है। शेष सृष्टि के साथ भी तो कवि रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। व्यावहारिक धरातल पर भी रसिक और सहृदय एक ही कोटि के प्राणी नहीं हैं। निर्मम डाकू भी कामिनी के कटाक्ष-बाणों से आहत होकर उसकी ओर बार-बार लोलुप दृष्टि से निहारता हुआ अपनी रसिकता की ही व्यंजना करेगा; किन्तु उसे सहृदय कहना तो सहृदयता के साथ अन्याय करना होगा। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि शुक्लजी की सहृदयता की कसौटी पर तुलसी को छोड़कर हिन्दी-साहित्य का अन्य कोई कवि खरा नहीं उतरता। यदि केशव ने भी प्रबन्ध काव्य न लिखा होता तो उनकी यह छीछालेदर न होती। प्रबन्ध-काव्य की रचना में मानव की प्रत्येक परिस्थिति के साथ तादात्म्य स्थापित करके अवसर के अनुकूल भाव-योजना करनी पड़ती है, क्योंकि शील-प्रतिष्ठा प्रबन्ध काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उसमें अनेक पात्रों का चरित्र स्फुटित होता है। पात्र-विशेष के शील-वैशिष्ट्य का ध्यान रखकर ही भाव-योजना की जाती है। ऐसा न करने पर पात्रों का उचित चारित्रिक विकास नहीं हो पाता। तुलसी के आदर्श काव्य की कसौटी पर ही शुक्ल जी ने केशव को हृदयहीन कहा है। स्मरण रखना होगा कि केशव की रसिकता से शुक्ल जी अवगत थे। अपने इतिहास में उन्होंने लिखा है—'कहते हैं, वे रसिक जीव थे।'[1] 'रसिकता' और 'सहृदयता' ये दोनों शब्द उनकी दृष्टि में पर्याय नहीं थे। यदि केशवदास ने केवल मुक्तक-काव्य-रचना की होती तो कदाचित् शुक्ल जी को यह कहने का अवसर न मिलता कि 'केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए।'[2] शुक्ल जी के आदर्श कवि यदि 'बिहारी', 'मतिराम' या 'देव' होते तो भी काम चल जाता। वे तो जब भी कवि की बात करते हैं तो उनके मन में 'तुलसी' प्रतिष्ठित रहते हैं। तुलसी और केशव को साथ रखकर देखने पर तो वही कहा जायगा जो शुक्ल जी ने कहा है। भाव-चित्रण में केशव ने परिस्थितिगत औचित्य का भी ध्यान नहीं रखा है। एक उदाहरण लीजिए—युद्ध-विजय के लिए रावण यज्ञ कर रहा

---

१. 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास,' रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१३।
२. वही, पृष्ट २०९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। अंगद आदि सेना नायक मख-भंग करने जाते हैं। अंगद मन्दोदरी को पकड़कर घसीटते हुए चित्रशाला से बाहर ले आते हैं। उसके गले का हार टूट जाता है; वेणी के फूल बिखर जाते हैं, कंचुकी फट जाती है। वह आर्त्त-स्वर से रक्षार्थ रावण को पुकारती है। निश्चय ही यह चित्र करुणा पूर्ण कहा जायगा। केशव ऐसी परिस्थिति में मन्दोदरी के कंचुकी-रहित उरोजों के वर्णन में तल्लीन हो जाते हैं। वे एक के बाद एक उत्प्रेक्षाएँ करते चले जाते हैं—

बिना कंचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौं सांचहू श्री फलै सोभ साजैं॥
किधौं स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे।
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥[1]

शत्रु की स्त्री की भी एक मर्यादा है और ऐसा शत्रु जिसे लोक-पीड़क के रूप में नहीं दिखाया जा सका है। 'रामचन्द्रिका' में रावण राम के व्यक्तिगत शत्रु के रूप में ही चित्रित किया गया है। अंगद का मन्दोदरी को पकड़ना और घसीटना ही बहुत था। दुर्दशा-ग्रस्त-शत्रु-नारी की फटी कंचुकी में उभरे हुए उरोजों का वर्णन किस भाव की उद्भावना करने के लिए किया गया है? विज्ञ पाठक स्वयं निर्णय कर सकते हैं कि यह वर्णन रसिकता के तकाजे से किया गया है या सहृदयता के आग्रह से?

चरित्र-चित्रण—केशव का चरित्र-चित्रण देखकर सर्वाधिक निराशा होती है। केशव के 'राम' उग्र, रसिक और स्त्रैण हैं। उग्र ही रहते तो कोई बात नहीं थी। उन्हें रसिक और स्त्रैण सामन्त की भूमिका में देखकर केवश की बुद्धि पर तरस आता है। 'रामचन्द्रिका' के तीसवें, इकतीसवें और बत्तीसवें प्रकाश में राम की जीवन-चर्चा एक रसिक सामन्त की केलि-विलास बनकर रह गयी है। वे अनेक षोड़शवर्षीया चित्रिणी बालाओं के संगीत पर मुग्ध होकर उनकी रूपछटा निहारने में मग्न रहते हैं। सीता की अनेक सुन्दरी सखियाँ उन्हें दिन-रात घेरे रहती हैं। उनके साथ वे वन-विहार और जल-क्रीड़ा करते हैं और सब मिलाकर मध्ययुगीन सामंत से अभिन्न हो जाते हैं। 'सीता' के आदर्श चरित्र की रक्षा भी केशवदास नहीं कर सकते हैं। राम की

---

१. 'रामचंद्रिका', उन्नीसवाँ प्रकाश, छन्द ३१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेवा करना तो दूर, मार्ग में श्रमित हो जाने पर वे स्वयं राम से पंखा झलवाती हैं और राम का श्रम तो उनके 'चंचल चारु दृगंचल' से ही दूर हो जाता है। केशव के 'भरत' हठी हैं। वे राम से अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं और राम के यह कहने पर कि पिता ने हमको वनवास दिया है और तुमको राज्य दिया है। इसलिये हम दोनों को मिलकर वही करना चाहिए जिससे पिता के वचन भंग न हों। पहले तो नीति के सहारे अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मद्यप, स्त्रैण और सन्निपात ग्रस्त व्यक्ति के वचन-भंग करने में पाप नहीं है (स्पष्ट ही ये तीनों विशेषण महाराज दशरथ को ध्यान में रखकर प्रयुक्त हुए हैं)। किन्तु, अंततः मंदाकिनी के तट पर जाकर प्राणों को त्यागने का संकल्प करते हैं। भरत का यह हठ देखकर मंदाकिनी स्वयं स्त्री-वेष में उपस्थित होकर कहती हैं—'उठो हठी होहु न काज कीजै।' मंदाकिनी उन्हें राम के ब्रह्मत्व का ज्ञान कराकर प्रबोधती हैं—

अनेक ब्रह्मादि न त अंत पायो। अनेकधा वेदन गीत गायो।
तिन्हैं न रामानुज बंधु जानो। सुनौ सुधी केवल ब्रह्म मानो॥

× × ×

चले दशग्रीवहि मारिबे को। तपी व्रती केवल पारिबे को।

मंदाकिनी के अन्तर्ध्यान होते ही भरत राम से पादुका की याचना करते हैं और सब लोग अयोध्या के लिए प्रस्थान करते हैं। वस्तुतः भरत के चरित्र की रेखाएँ धूमिल और अस्पष्ट हैं। कवि को कथा-प्रसंग समाप्त करने की इतनी जल्दी है कि वह भरत के अनुकूल श्रेष्ठ चारित्रिक गुणों को परिस्थिति की गंभीरता के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने की चेष्टा ही नहीं करता। 'कौशल्या' का चरित्र तो सामान्य स्त्रियों की कोटि से भी नीचे गिर गया है। वे महाराज दशरथ के लिए निस्संकोच कह सकती हैं—

लगीं अब बाप तुम्हारेहि बाइ।
करैं उलटी बिधि क्यों कहि जाइ।[1]

रामकथा के प्रमुख पात्र हैं। अन्य साधारण पात्रों की चर्चा करना ही व्यर्थ है। पात्रों के चारित्रिक पतन का कारण भी केशव की

---

१. 'रामचन्द्रिका', नवाँ प्रकाश, छन्द ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हृदयहीनता ही है। वे किसी भी पात्र के साथ सहृदयता नहीं दिखा सके। यदि उनमें प्रत्येक मानव-स्थिति में अपने को डालकर उसके साथ मानसिक तादात्म्य-स्थापन की क्षमता होती तो 'रामचन्द्रिका' के पात्रों की यह दुर्दशा न होती। शील-निरूपण केशव का लक्ष्य भी नहीं था। वे तो राम-कथा का आधार लेकर अपने छन्द ज्ञान का प्रदर्शन करना चाहते थे। उन्होंने बहुत साफ शब्द में कह भी दिया है—

"रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहुछन्द।"[२] मध्यकाल में राम-कथा का आश्रय लेकर छन्द-वैविध्य-प्रदर्शन की परंपरा ही चल पड़ी थी। 'रघुवर-जस प्रकाश' और 'रघुनाथ-रूपक' इसी परंपरा की कृतियाँ हैं।

वस्तुवर्णन—रामचन्द्रिका में छन्द ज्ञान प्रदर्शन की प्रवृत्ति के बाद दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति वस्तु-वर्णन की है। किसी वस्तु को लेकर उसके प्रस्तुत रूप के समानान्तर अनेक उत्प्रेक्षाएँ करते हुए सम्भावित चित्र अंकित करने की प्रवृत्ति केशव में कम नहीं है। यह प्रवृत्ति उन्हें संस्कृत-साहित्य के परवर्ती काव्यकारों से विरासत में मिली थी। प्रबन्ध काव्य में वस्तु-वर्णन की अपनी महत्ता होती है। उसमें हमें मानवीय सभ्यता के विकास का ज्ञान प्राप्त होता है। कभी-कभी प्रकृति की नैसर्गिक रमणीयता के सुरम्य चित्रों और मानवीय कला-कृतियों के सुष्ठु शब्द-चित्रों को एक साथ उपस्थित करके प्रबन्धकार कवि न केवल अपनी विशाल हृदयता का परिचय देता है, वरन् मानवीय सौन्दर्य-चेतना के ऐतिहासिक विकास की रूप-रेखा भी प्रस्तुत कर देता है। केशव ने भी प्राकृतिक वस्तुओं और मानव-निर्मित कलाकृतियों, दोनों का वर्णन किया है। प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत, 'बारहमासा' और 'षट्ऋतु' वर्णन के साथ ही प्राकृतिक दृश्यों—सूर्योदय, चन्द्रोदय, गिरि, सरिता, समुद्र; पंचवटी, राजवाटिका—और कृत्रिम पर्वत एवं सरिता का वर्णन भी केशव ने किया है। 'बारहमासा' का वर्णन तो 'आक्षेप' अलंकार के बहाने किया गया है। कवि ने 'शिक्षाक्षेप' अलंकार का बारह प्रकार में वर्णन करते हुए बारहों महीनों का वर्णन किया है। प्रत्येक महीने के कामोद्दीपक तत्त्वों को सामने रखते हुए नायिका प्रियतम को विदेश जाने से रोकती है। प्रकृति को यहाँ उद्दीपन विभाव के रूप में ही ग्रहण किया गया है। एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा :—

---

१. 'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, छन्द २१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फूलो लतिका ललित तरुनितर फूले तरुवर।
फूली सरिता सुभग सरस फूले सब सरवर॥
फूलीं कामिनी कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
शुक-सारी-कुल केलि फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केशव ऐसो फूल महि शूलन फूल लगाइये।
पिय आप चलन की को कहै चित्त न चैत चलाइये॥[1]

ऋतुओं का वर्णन भी अलंकार-विशेष को उदाहृत करते हुए किया गया है। ऋतु-वर्णन यों भी केशव के अनुसार वर्ण्य अलंकारों के अन्तर्गत ही आता है। आलंकारिक दृष्टि होने के कारण ही 'कविप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' दोनों में ऋतु-वर्णन वाले छन्द प्रायः एक ही हैं। जो भी हो, ऋतु-वर्णन करते हुए केशव का ध्यान ऋतुगत प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर न होकर दूसरी ही ओर था। वसन्त-ऋतु की सुषमा में उन्हें शिव का समाज दिखाई पड़ता है।[2] ग्रीष्म के प्रकाश में वे शवर-समूह देखते हैं।[3] वर्षा के आगमन में उन्हें कालिका का आगमन भासित होता है।[4] सुहावनी शरद उन्हें शारदा की प्रतीति कराती है।[5] हेमन्त को वे वियोगिनी स्त्री के रूप में देखते हैं।[6] शिशिर में वे गणिका की कल्पना कर लेते हैं।[7] जिस प्रकार योगी समस्त ब्रह्माण्ड को अपने पिण्ड में ही देख लेता है उसी प्रकार महाकवि केशव ऋतु अनुकूल परिवर्तित समस्त प्राकृतिक सुषमा को मानवीय सौन्दर्य की सीमाओं में ही देख लेते हैं। नर-क्षेत्र के बाहर उन्होंने सम्भवतः काव्य-रीति-पालन के लिए ही पैर रखा है। प्रकृति के मुक्त-विराट् वैभव के प्रति उनके मन में कोई विशेष राग नहीं था। उनके 'सूर्योदय' और 'चन्द्रोदय' वर्णन की भी यही कहानी है। सूर्य-बिम्ब में तो एक

---

१. 'कविप्रिया' दसवाँ प्रभाव, छन्द २४।
२. ,, सातवाँ प्रभाव ,, २८।
३. ,, ,, ,, ,, ३०।
४. 'कविप्रिया,' सातवाँ प्रभाव, छन्द ३२।
५. ,, ,, ,, ३४।
६. ,, ,, ,, ३६।
७. ,, ,, ,, ३८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ ही कामदेव का मुख, रावण का मुख, बुद्धि का विकास, विष्णु के चरण, मनु की नीति का प्रकाश और भगवान् राम, सभी को देख लेते हैं।[1] चन्द्रबिम्ब में वे नारद भगवान् के दर्शन करते हैं।[2] 'रामचंद्रिका' में प्रभातकालीन सूर्य का वर्णन करते समय भी केशवदास जी ने आलंकारिक उक्तियों से ही काम लिया है। सूर्य के अरुण बिम्ब में उन्हें कभी लक्ष्मण के अनुराग की लालिमा दिखाई पड़ती है, कभी चिता की ज्वाला। कभी वे उसे सिन्दूर-पूरित मंगलघट के रूप में देखते हैं, सभी माणिक्य की किरणों से निर्मित इन्द्र-छत्र के रूप में। यहाँ तक तो ठीक था, किन्तु अन्त में महाकवि ने भगवान् सूर्यदेव के अरुण-बिम्ब को कालरूपी कापालिक के हाथ में रक्त-रंजित मुंड के रूप में कल्पित कर के पूर्वोल्लिखित सारे रमणीय कल्पना-चित्रों पर बीभत्सता की कूँची फेर दी है।[3] अलंकारों के प्रति अतिशय मोह होने के कारण ही केशवदास जी ने 'दण्डक-वन' की शोभा को प्रलय काल की वेला के रूप में देखा।[4] पंचवटी को धूर्जटी के गुणों से युक्त समझा[5] और 'पम्पासर' में श्वेत कमल की छतरी पर भौंरों को देखकर ब्रह्मा के सिर पर विष्णु के विराजमान होने की कल्पना की।[6] जहाँ-कहीं कवि इस प्रकार के चमत्कारिक वर्णनों से थोड़ा मुक्त है, वहाँ उसने वस्तु परिगणना कराकर ही छुट्टी पा ली है। 'रामचन्द्रिका' में विश्वामित्र के तपोवन का वर्णन इसी प्रणाली पर किया गया है। देखिए—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर,
मंजुल वंजुल लकुच बकुल केर नारियर।
एला ललित लवंग संग पुङ्गी फल सोहै।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहै।[7]

---

१. ,, ,, ,, २४।
२. ,, ,, ,, २६।
३. 'रामचंद्रिका,' पाँचवाँ प्रकाश, छन्द १०।
४. ,, ग्यारहवाँ प्रकाश ,, २०।
५. ,, ,, ,, ,, १८।
६. ,, बारहवाँ ,, ,, ४९।
७. ,, तीसरा ,, ,, १।

.Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कादम्बरी' के कथामुख भाग में ठीक प्रकार का वर्णन महाकवि बाण ने भी किया है—

"तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलैः एलालताकुलितनारिकेलिकलापैः लाललोध्रवबलीलवंगपल्लवैः उल्लसितचूतरेणुपटलैः अलिकुलझंकारमुखरसहकारैः उन्मदकोकिलकुलकलापकोलाहलिभि उत्फुल्लकेतकीरज .....,"[1]

सत्य यह है कि केशवदास जी ने काव्य के वर्ण्य-विषयों के चयन और उनके वर्णन में भी काव्य-रीति का अक्षरशः पालन किया है! प्राकृतिक वस्तुओं की एक निश्चित सूची सामने रखकर ही वे उनका वर्णन करने बैठे थे।

भूमि-भूषण के अन्तर्गत—

देश, नगर, बन, बाग, आश्रम, सरिता, ताल।
रवि, शशि, सागर, भूमि के, भूषण, ऋतु, सब काल॥[2]

कुल गिनी-चुनी ग्यारह वस्तुएँ वर्णन की जानी चाहिए। इनमें भी प्रत्येक के वर्णन का एक निश्चित विधान है, जो केशव को पूर्णतः मान्य है। उसका उल्लंघन वे नहीं कर सकते थे। उदाहरण के लिए बाग—वर्णन करने में लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल, कलरव, मोर और भँवरों का चारों ओर भ्रमित होना वर्णन करना चाहिए—

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल, कलरव मोर।
बरनि बाम अनुराग स्यों, भँवर भँवत चहुँ ओर॥[3]

बस, जहाँ-कहीं बाग वर्णन करना हुआ चट उपर्युक्त वस्तुओं का नाम लिया और आगे बढ़े। या यदि रुके तो चमत्कार-प्रदर्शन के लिए प्रकृति के उपकरणों में मानवीय सौंदर्य या दैवी गुणों का आरोप करने लगे। इसीलिए केशव के प्रकृति वर्णन में कहीं भी प्राकृतिक रमणीयता का नैसर्गिक रूप-चित्र देखने को नहीं मिलता। कहा जाता है कि 'वीरसिंह देव चरित' में प्रकृति-वर्णन उत्तम है। किन्तु सच्ची बात यह है कि केशव का प्रकृति-वर्णन-विषयक दृष्टिकोण सर्वत्र एक-सा है।

---

१. 'कादम्बरी', निर्णय सागर प्रेस, पृष्ठ ८३-८४।
२. 'कविप्रिया', सातवाँ प्रभाव, छन्द १।
३. 'कविप्रिया', सातवाँ प्रभाव, छन्द ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम की वाटिका और वीरसिंह देव की वाटिका में कोई अन्तर नहीं है। रामचन्द्रिका के बत्तीसवें प्रकाश में राम-वाटिका का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अति मंजुल वंजुल कुञ्ज विराजैं। बहु गुंज निकेतन पुंजनि साजैं।
नर अंध भए दरसे तरु मौरे। तिनके जनु लोचन हैं इक ठौरे॥[1]

अब वीरसिंह देव की वाटिका पर गौर कीजिये—

सोहत वंजुल कुंजल कुंज। जनु लिपटै गुंजनि के पुंज।
काम अंध मृगधन के नैन। एक ठौर जनु राखें मैन॥[2]

दोनों ही वर्णन आलंकारिक हैं और दोनों में एक ही प्रकार के शब्दों में एक ही बात कही गयी है। कुल मिलाकर केशव के काव्य में प्रकृति-वर्णन की तीन शैलियाँ लक्षित होती हैं। आलंकारिक शैली, वस्तु-परिगणन शैली और मानवीय भावसापेक्ष शैली (उद्दीपक रूप में प्रकृति को देखना और उसे मानव-भावनाओं को जागृत करने वाली मानकर उसका वर्णन करना)। जो लोग केशव के काव्य में प्रकृति का मुक्त रूप देखना चाहते हैं या उसका बिम्ब-ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें निराश होना पड़ता है।

प्रकृति से इतर वस्तुओं के वर्णन में केशव को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। विशेषतः राजवैभव, सेना-प्रयाण, युद्धस्थल आदि के वर्णन सजीव और सुन्दर बन पड़े हैं। जनकपुरी में सीता की सखियों का वर्णन रमणीय और काव्यसौष्ठव युक्त है। आलंकारिक होने पर भी यह वर्णन स्वाभाविक रूपचित्रण की सीमाओं में ही आता है। देखिये—

मुख एक है नत लोक-लोचन लोल-लोचन कै हरैं।
जनु जानकी संग सोभिजै शुभ लाज देहहि को धरै।
तहँ एक फूलन के विभूषन एक मोतिन के लिए।
जनु छीरसागर देवता तन छीर-छीटन को छिए।[3]

---

१. 'रामचन्द्रिका', बत्तीसवाँ प्रकाश, छन्द १३।
२. 'वीरसिंह देव चरित', पृष्ठ २८२, मातृभाषा मंदिर प्रकाशन, दारागंज, प्रयाग।
३. 'रामचन्द्रिका', छठाँ प्रकाश, छन्द ६१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्भावना मूलक होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार सदैव उक्ति को स्वाभाविकता की सीमा से अधिक दूर नहीं ले जाता। इसलिये कथन की रमणीयता बनी रहती है। नताना और लोल-लोचना सखी के लिए 'लज्जा' उपमान लाकर कवि ने बड़ी ही सुन्दर कल्पना का परिचय दिया है। इसी प्रकार राम के 'शयनागार' का वर्णन राजकीय मर्यादा के अनुसार वैभव-विलासपूर्ण किया गया है। राम के तिलकोत्सव का भी सांगोपांग वर्णन आकर्षक है। 'वीरसिंह देव चरित' में गोपाचल से नरवर के लिए प्रयाण करती हुई अकबर की सेना का बड़ा ही यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। देखिये—

देस-देस के राजा घनै। मुगल पठाननि कौ को गनै।
जहाँ-तहाँ गज गाजत घनै। पुरवाई के जनु थन घनै।
चौपद दुपद कहाँ लौं कहौं। कहें लगें तो अंतु न लहौं।
या रङ्ग एक चलेई जात। एक देखिए पीवत खात।
टहलत ऊँट एक देखिए। लादत साज एक पेखिए।
एकन तम्बू दियो गिराइ। रसन उठावत एक बनाइ।[1]

यह मध्य-युग की अर्द्ध नियन्त्रित सेना है, जो अपने रंग में मस्त ज्यों-त्यों चली जा रही है। केशवदास जी ने राजवैभव और युद्ध दोनों ही देखे थे। इसलिए उन सभी दृश्यों का वर्णन वे अच्छा कर लेते हैं जिनका सम्बन्ध राजकीय वातावरण से है। इस प्रकार के वर्णन अत्यधिक आलंकारिक, परिस्थिति-प्रतिकूल या अतिदीर्घ होने पर ही अशोभन लगते हैं। उदाहरण के लिए राम को मनाने के लिए जाते हुए भरत के साथ विशाल वाहिनी का विशद वर्णन केशवदास जी के प्रबल समर्थक लाला भगवानदीन को भी खटका है।[2] यह वर्णन परिस्थिति-प्रतिकूल है। इसी प्रकार अयोध्या-वर्णन भी अलंकारों की अतिशयता में प्रभावहीन हो गया है। यदि केशव ने काव्य-रीति का मोह और अलंकारों के प्रति एकान्तनिष्ठा का कुछ देर के लिए त्याग कर दिया होता तो उनका वस्तु वर्णन पर्याप्त रुचिकर और हृदयस्पर्शी होता।

---

१. 'वीरसिंह देव चरित', मातृभाषा-मन्दिर, दारागंज, प्रयाग, पृष्ठ ५९।

२. 'रामचन्द्रिका', पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १५३, १५४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौन्दर्याङ्कन

सौन्दर्याङ्कन—केशव का सौन्दर्याङ्कन भी काव्य की बँधी हुई परिपाटी के अनुकूल होने के कारण सहज रमणीयता से दूर जा पड़ा है। सौन्दर्य के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा स्थूल है। वे वनिता को अलंकृता होने पर ही सुन्दर मानते हैं। पता नहीं कैसे एक बार उनके मुँह से निकल गया था—

काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं।[1]

महाकवि के लिए सौन्दर्याङ्कन का तात्पर्य था 'शिख-नख वर्णन'। 'रामचन्द्रिका' के इकतीसवें प्रकाश में कवि ने सीता की दासियों का नख-शिख वर्णन किया है। इस परम्परा में केश, कबरी, शिरोभूषण, नेत्र, नासिका, ताटंक, दन्त और मुखबास, मुसुकानी और वाणी, अलक, मुख, ग्रीवा-भूषण, बाहु, हाथ, करभूषण, कुच, रोमावली, कटि, नितम्ब, जंघा, चरण, महावर और कंचुकी का वर्णन किया गया है।[2] इस प्रसंग में शरीर के विविध अंगों तथा उनसे सम्बन्धित भूषणों के वर्णन की परंपरा चल पड़ी थी। छठवें प्रकाश में श्रीराम का भी नख-शिख वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत राम के शिर की पाग, उनकी भौहों, श्रवणों, मुख, दन्तपंक्ति, ग्रीवा, बाहु, वक्षस्थल और पगतल का वर्णन किया गया है। अन्त में कवि ने राम के सौन्दर्य-वर्णन में अपनी असमर्थता प्रकट की है। भला जिसके सौन्दर्य से सारे संसार की शोभा है उसके सौन्दर्य का क्या वर्णन किया जाय? सौन्दर्य के अलौकिक प्रभाव का वर्णन केशव ने नहीं किया है। राम और लक्ष्मण का सौन्दर्य देखकर जनकजी इतना ही सोच पाते हैं कि जान पड़ता है कि ये दोनों विष्णु और ब्रह्मा हैं।[3] राम के सौन्दर्य का प्रभाव परशुराम के मन पर भी पड़ता है किन्तु वे यही सोचकर रह जाते हैं कि 'जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है।[4] रामचरितमानस में राम का सौन्दर्य उनकी शक्ति और शील से कम प्रभावशाली नहीं

---

१. 'कविप्रिया', नवाँ प्रभाव, छन्द १२।
२. 'रामचन्द्रिका', इकतीसवाँ प्रकाश।
३. 'रामचन्द्रिका', पाँचवाँ प्रकाश, छन्द २८।
४. 'रामचन्द्रिका', सातवाँ प्रकाश, छन्द १४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखाया गया है। राम का प्रबलतम शत्रु भी उन्हें देखकर यही कहता है—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुन्दरताई॥[1]

सौन्दर्य का यह शत्रुजयी प्रभाव केशव के काव्य में दुर्लभ है। स्त्रियों की छवि अंकित करने में केशव ने अधिक रुचि दिखायी है। यह चित्रण भी परम्परागत मान्यताओं को उदाहृत करने के लिए आलंकारिक प्रणाली पर किया गया है। इन स्वयं स्वीकृत सीमाओं में भी कहीं-कहीं केशव ने अच्छे चित्र प्रस्तुत किये हैं—

गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
उर उरजातन की बात अवरोहिये।
हँसति कहत बात, फूल से झरत जात,
आठ अवदात राती देख मन मोहिये।
स्यामल कपूर-धूर ओढ़नी ओढ़े उड़ि,
घूरि ऐसी लागी 'केशो' उपमा न टोहिये।
काम ही की दुलही-सी काके कुल उलही सु,
लहलही ललित लता-सी लोल सोहिये।[2]

तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य की अलौकिक, भुवनमोहिनी एवं रहस्यात्मक सत्ता की भावना केशवदास नहीं कर सके हैं। नख-शिख वर्णन के माध्यम से जो सौन्दर्यांकन उन्होंने किया है, वह परम्परा-विहित एवं आलंकारिक है। उस पर सामन्तीय जीवन की रंगीनी की छाप है। इस दृष्टि से भी वे अपनी सीमाओं से ऊपर नहीं उठ सके हैं।

संवाद—केशव के संवादों की बड़ी प्रशंसा की जाती है। रामचन्द्रिका में 'सुमति-विमति-संवाद', 'रावण-वाणासुर-संवाद', 'राम-परशुराम-संवाद', 'शूर्पणखा-राम-संवाद', 'सीता-रावण-संवाद', 'सीता-हनुमान-संवाद' और 'रावण-अंगद-संवाद' प्रमुख माने जा सकते हैं। 'विज्ञानगीता' में भी 'अहंकार-दंभ-संवाद', 'विवेक-जीव-संवाद',

१. 'मानस', अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ६१९। गीता प्रेस संकरण।
२. 'कविप्रिया', नवाँ प्रभाव, पृष्ठ १४२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कलह-रति-काम-संवाद' आदि कई संवाद हैं। 'वीरसिंह-देवचरित' और 'जहाँगीर-जसचन्द्रिका' में भी संवादों की कमी नहीं है। महाकवि की प्रसिद्धि मुख्यतः 'रामचन्द्रिका' के संवादों के ही कारण है। रामचन्द्रिका में 'सुमति-विमति-संवाद', 'प्रसन्नराघव' नाटक के उसी प्रसंग का छायानुवाद है। 'हनुमान-सीता-संवाद', 'हनुमान्नाटक' के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। 'रावण-अंगद-संवाद' भी बहुत कुछ 'हनुमान्नाटक' के आधार पर ही प्रस्तुत किया गया है। कई छन्द तो 'हनुमान्नाटक' के उसी भाव के छंदों के अनुवाद हैं। 'रावण-बाणासुर-संवाद' भी 'प्रसन्न राघव' नाटक के आधार पर लिखा गया है। 'परशुराम और राम-संवाद' पर जगह-जगह 'प्रसन्नराघव' नाटक की छाया है। ऐसी स्थिति में केशव की सफलता संवाद-लेखन में नहीं, अनुवाद प्रस्तवन में मानी जा सकती है। इन संवादों की प्रशंसा का कारण यह है कि केशव के असंगत, आलंकारिक एवं पाण्डित्यपूर्ण वर्णनों से ऊबा हुआ पाठक इन संवादों को पढ़ते समय थोड़ा रुचि-परिवर्तन का अवसर पा जाता है। वह भूल जाता है कि ये अनुवाद हैं। उसे ये संवाद मौलिक-से प्रतीत होते हैं। यह सत्य है कि इन संवादों से केशव की वाक्चातुरी, व्यवहार कुशलता, व्यंग्यशक्ति और भाषाधिकारी की सूचना मिलती है। कथा-क्रम में नाटकीयता का समावेश भी इन संवादों के माध्यम से हो जाता है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से केशव के संवाद अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध हैं, अन्यथा इनमें मौलिक अंश बहुत ही कम हैं।

काव्य-शैली —शैली की दृष्टि से देखा जाय तो केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की शैलियों में काव्य-रचना की है। 'रामचन्द्रिका', 'विज्ञानगीता', 'वीरसिंह-देवचरित', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीरचन्द्रिका' प्रबन्ध शैली में लिखे गये ग्रन्थ हैं। 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'नख-शिख' मुक्तक रचनाएँ हैं। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो न तो केशव के प्रबन्ध-ग्रन्थ पूर्णतः प्रबन्ध कोटि में आते हैं और न मुक्तक ग्रंथ पूर्णतः मुक्तक कोटि में। जिन्हें मुक्तक कहा गया है उनमें भी आद्योपान्त एक निश्चित योजना कार्य करती रही है। प्रत्येक छन्द किसी न किसी लक्षण का अनिवार्य उदाहरण बनकर आया है। अतः 'कविप्रिया', 'रसिक-प्रिया' और 'नख-शिख' को पूर्णतः मुक्तक कोटि में नहीं रख सकते। इनमें भी एक प्रकार का बन्ध है। 'गाथा सप्तसई' या 'बिहारी सतसई' जिस कोटि के मुक्तक हैं उस कोटि में इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रीय बन्धों को नहीं रखा जा सकता। विद्वानों ने इन्हें 'लक्षण-निष्ठ-मुक्तक' कहा है।[१] यह संज्ञा अधिक उचित है। ये मुक्तक इसीलिए हैं कि कथा-प्रबन्ध नहीं दूसरी ओर जिन ग्रन्थों को प्रबन्ध कहा गया है वे भी प्रायः संवादात्मक शैली में लिखे गये हैं। 'वीरसिंहदेवचरित' दान, लोभ और विन्ध्य-वासिनी देवी के संवाद रूप में लिखा गया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो केशव की प्रबन्ध-रचनाओं में यही रचना ऐसी है जिसमें कथा-सम्बन्ध-निर्वाह उचित रीति से हुआ है। इसे चरित्रग्रन्थ कह सकते हैं। 'विज्ञानगीता' एक प्रकार से नाट्य-रूपक ग्रन्थ है। यह भी 'जीव-विवेक', 'श्रद्धा-शान्ति', 'बलि-शुक्र' आदि संवादों से भरा है। तेरहवें प्रभाव के बाद तो शेष पूरे ग्रन्थ में स्फुट कथाओं के द्वारा वैराग्य, चित्त-शुद्धि, ज्ञान, अज्ञान, भक्ति आदि का उपदेश दिया गया है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' भी उद्यम और भाग्य के संवाद रूप में रची गयी है। इसका अन्तिम भाग तो जहाँगीर की राजधानी आगरा, जहाँगीर की सभा, सभासद और अधीनस्थ राजाओं के वर्णन से भरा पड़ा है। कथा-प्रवाह मन्द पड़ गया है। 'रतनबावनी' ओड़छा-नरेश मधुमुकर शाह के पुत्र रतनसेन की प्रशंसा में लिखी गयी है। इसमें रतनसेन का चरित्र-वर्णन मुख्य न होकर उनके रूप, गुण, बलवीर्य की प्रशंसा और उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख ही प्रधान है। अतः इन सभी ग्रन्थों को सापेक्षिक दृष्टि से ही प्रबन्धकाव्य की संज्ञा दी गयी है। जहाँ तक 'रामचन्द्रिका' का प्रश्न है, वह तो स्वयं कवि के छन्दों में छन्द प्रबन्ध है। उसमें कवि का लक्ष्य छन्द-वैविध्य-प्रदर्शन है। कवि की वर्णनविस्तारप्रियता, असम्बद्ध स्थलों की योजना और अनियमित कथा-प्रवाह के कारण यह ग्रन्थ और सब कुछ हो सकता है, प्रबन्ध-काव्य नहीं। न तो इसमें पात्रों के शील-निरूपण पर विशेष ध्यान दिया गया है और न कथा-प्रवाह क्रम में आने वाले हृदय-स्पर्शी प्रसंगों के संवेदनात्मक वर्णन में रुचि दिखायी गयी है। इसलिए आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा था कि—"उनकी रामचन्द्रिका अलग-अलग दिये हुए वर्णनों का संग्रह जान पड़ती है।"[२] यदि महाकवि ने केवल मुक्तक-काव्य की रचना की

---

१. 'हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास', पृष्ठ २१।

२. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती तो उन्हें कवि रूप में अधिक सफलता प्राप्त होती। पण्डित मण्डली को वे केवल आतंकित ही नहीं, आकर्षित भी कर सके होते।

अलंकार योजना—केशव ने अपने काव्यों को अलंकृत करने की भरपूर चेष्टा की है। वे अलंकार-रहित काव्य को नग्न मानते थे।[1] आचार्य दण्डी की भाँति वे भी अलंकारों को 'काव्य की शोभा-वृद्धि करने वाले धर्म' मानते थे। इसलिए उनकी कविता अलंकारों के बोझ से दब गयी है। 'कविप्रिया' तो अलंकारों का लक्षण-ग्रन्थ है ही, अतः यदि उसे छोड़ दें तो भी केशव की कदाचित् ही कोई रचना हो जिसमें अलंकारों का प्रयोग-बाहुल्य न हो। 'रसिकप्रिया' में भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, विभावना, अपह्नुति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रचुर-प्रयोग हुआ है। यदि केशव ने अलंकारों को रस का उपकारक मानकर उनका प्रयोग किया होता तो बात ही दूसरी होती। 'रामचन्द्रिका' में कदाचित् ही ऐसा कोई छन्द हो जिसमें एक से अधिक अलंकार न हों। उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, परिसंख्या, अतिशयोक्ति, विभावना, सन्देह, विरोधाभास, उपमा, अनुप्रास, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति आदि केशव के प्रिय अलंकार हैं। केशव के न चाहते हुए भी 'रसिकप्रिया' में प्रयुक्त अलंकार रस के उपकारक बन गये हैं। इस ग्रंथ की रचना में केशव का ध्यान शृङ्गार रस के अंगों की ओर था, अतः अलंकारों का प्रयोग परिस्थिति के अनुकूल हुआ है। 'उत्प्रेक्षा' का एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

हरि राधिका मान सरोवर के तट ठाढ़े री सों हाथ छियें।
प्रिय के सिर पाग प्रिया मुकतालर, छाजत माल दुहूँनि हियें।
कटि केशव काछनी सेत कछे सबही तन चन्दन चित्र कियें।
निकसे छिति छीरसमुद्रहि तें सँग श्रीपति मानहुँ श्रीय छिये।[2]

'रामचन्द्रिका' में अलंकारों की योजना में कई प्रकार के अनौचित्य आ गये हैं। एक तो अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि ने पात्र, परिस्थिति और कथाक्रम का ध्यान नहीं रखा है। सीता और राम

---

१. छन्द विरोधी पंगु गुनि, नगन जो भूषण हीन।
मृतक कहावै अरथ बिन, केशव सुनहु प्रवीन॥
—'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव छन्द ८॥

२. 'रसिक प्रिया' पाँचवाँ प्रभाव, छन्द ३५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वन-पथ पर जा रहे हैं। मार्ग में ग्रामीण स्त्रियाँ सीता जी को देखकर उनके मुख का वर्णन करने लगती हैं और श्लेष, उपमा, अनन्वय, विरोधाभास आदि अलंकारों की झड़ी लगा देती हैं। ग्रामीण स्त्रियों के सरल हृदय के मार्मिक उद्‌गारों की ओर ध्यान न देकर केशव ने उन्हें अलंकार शास्त्र की पण्डिताओं के रूप में उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार रावण-विजय के उपरान्त जब राम सीता को शीघ्र देखना चाहते हैं—'हमको तुम बेगि दिखावहु सीता'—तो कवि ने कुल दो छन्दों में हनुमान् का सीता के पास जाना, राम-विजय का समाचार देना, सीता का अलंकृत होकर चलने के लिए उद्यत होना और ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा उनकी विरुदावली का गान करना, दिखाकर बिना किसी प्रस्ताव के सीता को अग्नि के गोद में आसीन करा दिया है और आठ छन्दों में उपमा, उत्प्रेक्षा और संदेह अलंकारों की झड़ी लगा दी है। लगता है राम को सीता से मिलने की उतनी उत्कण्ठा न थी जितनी केशवदास जी को सीता जी को अग्निदेव की गोद में बिठाकर अलंकारों की (विशेषतः सन्देह अलंकार की) झड़ी लगाने की।

दूसरी गड़बड़ी उपमान-ग्रहण करने में की गयी है। इसी गड़बड़ी के कारण राम को 'उलूक' और 'ठग' बनना पड़ा है—

बासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चँपत हैं।[1]

× × ×

किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हें किधौं तुम,
हर हरि श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ।[2]

भगवान् सूर्यदेव को रक्त रंजित नर मुण्ड बनना पड़ा है—

कै शोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।

ब्रह्मा के सिर पर विष्णु को बैठना पड़ा है—

केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहे।[3]

---

१. 'रामचन्द्रिका', पृष्ठ २३४।
२. वही, पृष्ठ १४२।
३. वही, बारहवाँ प्रकाश, पृष्ठ १९४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रमा को अंगद का बाप बना दिया गया है—

अंगदको पितु सो सुनिए जू। सोहत तारहिं संग लिए जू।[1]

और 'रसिक प्रिया' में बेचारे कृष्ण को 'घूघू' बनना पड़ा है—

घूघू ज्यों घूसन प्रात मेरे गृह आये हौ।[2]

तीसरा अनौचित्य अकारण शब्द-जाल-गुम्फन है जो कोरे चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण आ गया है। इस प्रवृत्ति ने दुरूह कल्पना और पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति को उभाड़ा है। अयोध्या वर्णन में मुद्रालंकार की योजना कोरे चमत्कार प्रदर्शन के लिए ही की गयी है। देखिए—

कवि कुल विद्याधर, सकल कलाधर, राजराज वर वेश बने।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने।
सेनापति-बुधजन, मंगल गुरुगण, धर्मराज मन बुद्धि धनी।
बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुरतरंगिनी शोभ सनी।[3]

इस छन्द में देवपुरी की समस्त वस्तुओं की सूचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

उपर्युक्त अनौचित्यों के होते हुए भी कहीं-कहीं केशव की अलंकार-योजना बड़ी ही रमणीय है और काव्य-शोभा-वृद्धि में सहायक हुई है। कुछ सुन्दर उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

रूपक : चढ़्यो गगन तरु धाय, दिनकर-बानर अरुन मुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका-कुसुम बिन।[4]

उत्प्रेक्षा : धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी।[5]

---

१. 'रामचन्द्रिका', तीसवाँ प्रकाश, पृष्ठ १५६, छन्द ४२।
२. 'रसिकप्रिया', सातवाँ प्रकाश; छन्द १७।
३. 'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, पृष्ठ १८।
४. वही, पाँचवाँ प्रकाश, छन्द १३।
५. वही, तेरहवाँ प्रकाश, छन्द ५३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहोक्ति : प्रति अंगन के संग ही दिन नासै।
निसि सो मिलि बाढ़ति दीह उसासै।[1]

उपमा : भरि-भरि रीति जाति, रीति-रीति भरै पुनि।
रहट धरी सी आँख साहि अकबर की।[2]

परिसंख्या : मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय।[3]

विभावना : काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली।
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं।[4]

प्रतीप : पून्योई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो-दूनो,
क्षण-क्षण क्षीण होत छीलर को जल शों।
चन्द्र सो जो वरणत रामचन्द्र की दुहाई,
सोई मतिमंद कवि केशव कुशल सों।[5]

रूपकातिशयोक्ति—[विरुद्ध रूपक]

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनौ सुनि बुद्धि सकै छवै।
'केशवदास' मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से ब्वै।।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर, रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुआ सुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै।[6]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि केशव में कल्पना शक्ति की कमी नहीं थी। विविध प्रसंगों में वस्तु-वर्णन करते समय उन्होंने जो अनेक उत्प्रेक्षाएँ की हैं, किसी एक प्रस्तुत के लिए उन्होंने जो अनेक अप्रस्तुत चित्र उपस्थित किये हैं, वे उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति के परिचायक हैं। उनमें सूझ है, कल्पना वैभव है, काव्य रीति का सम्यक्

---

१. वही, चौदहवाँ प्रकाश, छन्द २८।
२. 'वीरसिंह देवचरित', पृष्ठ ९७।
३. 'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, पृष्ठ २१।
४. 'कविप्रिया', नवाँ प्रभाव, छन्द १२।
५. 'रामचन्द्रिका', नवाँ प्रकाश, छन्द ४१।
६. 'कविप्रिया', तेरहवाँ प्रभाव, छन्द १८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान है, वर्णन की क्षमता है और संस्कृत की महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों का अध्ययन है; किन्तु परिस्थिति के अनुकूल औचित्य का ध्यान रखते हुए वर्ण्य-विषय के स्वरूप के अनुसार अलंकार-योजना करने की ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया है। इसीलिए कहीं वे कोरे चमत्कारवादी, कहीं शुष्क, पण्डित, कहीं रूढ़िवादी और कहीं असंगत अलंकार-विधान करने वाले प्रतीत होते हैं। राजसी तड़क-भड़क, वैभव-विलास के बीच रुद्धमनःस्थिति पूर्ण जीवन बिताने के कारण भी वे असंगत अलंकरण और संकीर्ण मानदण्ड को त्यागने में सर्वथा असमर्थ रहे हैं। जहाँ-कहीं वे अपने को भूल गये हैं, वहाँ उनके अलंकार काव्य की रमणीयता-वृद्धि में निश्चय ही सहायक हुए हैं।

छन्द-योजना—छन्द-योजना की दृष्टि से केशवदास का स्थान हिन्दी-साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है; किन्तु यह महत्ता वैविध्य की दृष्टि से ही है। व्यापक दृष्टि से विचार करने पर अभिव्यक्ति मात्र का छन्द या बाह्य सीमा रेखा एवं आन्तरिक लय से अनिवार्य सम्बन्ध है। इसलिए छन्दों के स्वरूप में परिवर्तन हो सकता है; किन्तु उनके नितांत अभाव में भावानुभूति की अभिव्यक्ति असम्भव हो जायगी। केशवदास जी छन्द-विरोधी रचना को पंगु मानते हैं।[1] उन्होंने अपनी रचना को पंगु होने से बचाने की खूब चेष्टा की है। छन्दों को विविध वीथियों में निरन्तर दौड़ने के कारण कविता-कामिनी के पद इतने पुष्ट हो गये हैं कि उनकी तुलना में शेष अंग दुर्बल प्रतीत होते हैं। इन दुर्बल अंगों में अलंकारों को गूँथकर कविता-कामिनी का कार्टून खड़ा किया गया है जो पाठकों को आतंकित करने का अच्छा साधन हो गया है। महाकवि ने छन्दों के प्रयोगातिशय को भी पाण्डित्य का ही एक अंग मान लिया था। इसलिए उन्होंने 'रामचन्द्रिका' में चौबीस मात्रिक तथा अट्ठावन वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों का यह वैविध्य 'विज्ञान गीता' में भी देखा जा सकता है; किन्तु इसमें प्रयुक्त प्रायः सभी छन्द 'रामचन्द्रिका' में आ गये हैं। 'भरहट्ठा' और 'तोमर' ये दो मात्रिक छन्द तथा 'दोधक', 'तोटक', 'हरिलीला' और 'नलिनी' ये चार वर्णिक छन्द इनमें नवीन प्रयुक्त हुए हैं। शेष कृतियों में सब मिलाकर मात्रिक छन्दों में 'चौपही' और वर्णिक छन्दों में 'प्रमानिका' तथा 'कवित्त' ऐसे छन्द हैं जिनका प्रयोग 'रामचन्द्रिका' में नहीं किया गया है। इस प्रकार कुल

---

१. छन्द विरोधी पंगु गुनि—'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलाकर इक्यानबे प्रकार के छन्दों का प्रयोग महाकवि ने किया है। ध्यान रखना होगा कि छन्दों के प्रयोग में वैविध्य ही काव्य-कला का द्योतक नहीं है। वर्ण्य-विषय के अनुकूल होना भी छन्द के लिए आवश्यक हो जाता है। आख्यानक काव्यों में कथा प्रवाह की निरन्तरता के कारण दोहा और चौपाई छन्द अधिक समीचीन होते हैं। 'वीरसिंहदेवचरित' में केशव ने इन्हीं छन्दों का प्रयोग अधिक किया है। लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करने वाले काव्यों में दोहा, कवित्त और सवैया का प्रयोग अधिक किया जाता रहा है। 'रसिकप्रिया' में केशव ने इन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है। वीररसात्मक एवं ओजपूर्ण काव्यों के लिए 'छप्पय' छन्द अधिक अनुकूल पड़ता है। 'रतनबावनी' में केशव ने इसी का प्रयोग किया है। 'कवि प्रिया' में अधिक छन्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति है, किन्तु इसमें वर्ण्य-विषयों की विविधता के कारण यह प्रयोग अनुचित नहीं प्रतीत होता। 'विज्ञान गीता' में छन्द वैविध्य की प्रवृत्ति पूर्णतः प्रकट है। आध्यात्मिक विषयों का प्रतिपादन दोहे, सोरठे जैसे छोटे-छोटे छन्दों में अधिक उचित ढंग से किया जा सकता है। सन्त कवियों की साखियाँ और तुलसी की 'दोहावली' इसके प्रमाण हैं। 'विज्ञान गीता' में यह प्रयोग-वैविध्य खटकता है। 'रामचन्द्रिका' में केशव की छन्द-प्रयोग-वैविध्य की प्रवृत्ति खुलकर प्रकट हुई है। प्रबन्ध-काव्यों में कथा-प्रवाह के नैरन्तर्य का ध्यान रखना आवश्यक है। क्षण-क्षण छन्द-परिवर्तन ऐसी कृतियों में अनुचित ही नहीं, अक्षम्य है। छन्द ज्ञान का प्रदर्शन पृथक् पिंगल ग्रन्थ लिखकर किया जा सकता है। 'रामचन्द्रिका' के प्रबन्ध-विधान में यह छन्द-परिवर्तन की प्रवृत्ति घातक सिद्ध हुई है।

केशव ने दो छन्दों को मिलाकर छंद-प्रयोग में चमत्कार लाने की चेष्टा भी की है। कहीं-कहीं उन्होंने एक बात के लिए डेढ़ छंदों का प्रयोग करके नवीनता लाने की चेष्टा की है। यह प्रेरणा उन्हें संस्कृत के कवियों से मिली थी। यह सब होते हुए भी पण्डितों की सम्मति में केशव के छन्द कहीं-कहीं लक्षणों के अनुकूल ठीक नहीं उतरते।[1] कहीं लक्षण के अनुकूल होने पर भी उनका प्रवाह ठीक नहीं जान पड़ता है और कहीं 'यति' ठीक स्थान पर नहीं होती। जिस कवि ने सैकड़ों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया हो उसमें इस प्रकार के दोषों का आ जाना अस्वाभाविक नहीं है। इससे अधिक गड़बड़ी, प्रबन्ध-काव्य की

१. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २१२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथा-धारा में व्याघात डालकर छन्द-प्रयोग-वैविध्य के प्रदर्शन के कारण हुई है। 'रामचंद्रिका' के प्रारम्भ में ही एकाक्षर से लेकर अष्टाक्षर तक के छन्दों का प्रयोग एक तमाशा खड़ा कर देना है। इसीलिए लाला भगवानदीन को तीन छन्दों को एक में बाँधकर अन्वय करना पड़ा है। छन्द इतना छोटा हो कि उसमें बात ही कही जा सके तो उसके प्रयोग से क्या लाभ ? देखिये—

सी, धी । री, धी ।।
राम, नाम । सत्य, धाम ।।
और नाम । कौन, काम ।।[1]

पहले छन्द का अन्वय करने पर दो शब्द बनते हैं—'सिद्धी', 'ऋद्धी'। इनसे क्या अर्थ लिखा जाय ? यह तो कोई चमत्कार की बात भी नहीं हुई। तात्पर्य यह कि यदि कवि ने 'रामचंद्र की चंद्रिका वर्णन हौं बहु छन्द' का संकल्प न किया होता तो 'रामचंद्रिका' की महत्ता कुछ अधिक ही होती।

भाषा—कवि की भाषा पर कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। सामान्य स्वरूप की दृष्टि से, प्रौढ़ता और परिमार्जन की दृष्टि से, पद-रचना वैशिष्ट्य (गुण-रीति आदि) की दृष्टि से, शब्द-समृद्धि की दृष्टि से, व्याकरण सम्मतता की दृष्टि से और अभिव्यक्ति की पूर्णता की दृष्टि से। सामान्यतः केशवदास जी की भाषा के तीन रूप हैं—

(क) संस्कृत-सी प्रतीत होने वाली पदावली, (ख) द्वित्य-प्रधान पदावली, (ग) हिन्दी की जातीय प्रवृत्ति के अनुकूल पदावली।

संस्कृत-सी प्रतीत होने वाली पदावली अधिक नहीं है। उसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

सीता शोभन ब्याह उत्सव सभा संभार संभावना।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी बना शोभना।।
राजा राज पुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा।
नाना देश समागतां नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा।।[2]

---

१. 'रामचंद्रिका' पहिला प्रकाश, छन्द, ८, ९, १०।
२. 'रामचंद्रिका', तीसरा प्रकाश, छंद १३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वित्य-प्रधान पदावली चरण कवियों की पद्धति पर लिखी गयी 'रतनबावनी' में मिलती है—

किधौं सत्त की शिखा शोभ साखा सुखदायक।
जनु कुल दीपक जोति जुद्ध तम मेटन लायक॥
किधौं प्रकट पति पुंज पुन्य कर पल्लव पिल्लिय।
किधौं कित्ति परभात तेज मूरति करि लिखिय॥
कहि केशव राजत परम पर रतनसेन सिर सुम्मियहु।
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ फणपति-फल उद्दित कियहु॥[1]

ब्रजभाषा हिन्दी की जातीय प्रवृत्ति के अनुकूल भाषा विशेषतः 'रसिक प्रिया' में देखी जा सकती है—

बोलै न बाल बुलावत हूँ, नख-रेख लिखै भुव प्रेम-परेखौ।
आपनोहाथ विलोकि विलोकि, कह्यो तब केशव बुद्धि विसेखौ।
छोटी-बड़ी विधरेख लिखी जग आयु की रेख सु कौन जुलेखौ।
प्रेम तें बोल सह्यौ न पर्‌यो, अकुलाइ कह्यौ पिय कैसी है देखौ।[2]

केशव द्वारा प्रयुक्त भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित नहीं है। उसे बिहारी या घनानंद की भाषा के समान टकसाली भाषा नहीं कह सकते। सम्भवतः उन्होंने परिमार्जन की ओर ध्यान नहीं दिया। अनेक छन्दों के प्रयोग के कारण भी उनकी भाषा सुगठित नहीं हो सकी। कोई भी व्यक्ति अनेक छन्दों की जानकारी रख सकता है; किन्तु सभी पर अधिकार नहीं रख सकता। जब कवि का छन्द ध्यान गढ़ने की ओर लगा रहेगा तो वह भाषा की कसावट पर कैसे ध्यान देगा?

पदरचना-वैशिष्ट्य पर केशव ने अवश्य ध्यान दिया है। वे स्वयं मानते थे कि कवि प्रत्येक पद न्यस्त करते समय खूब सोच-विचार लेता है—

चरण धरत चिन्ता करत नींद न भावत शोर।
सुवरण को सोधत फिरत कवि, व्यभिचारी चोर॥[3]

---

१. 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २१६ पर उद्धृत।
२. 'रसिकप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ३१।
३. 'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि ने पद-रचना करते समय सोच-विचार तो किया; किन्तु वह इसलिए कि चमत्कार कैसे उत्पन्न किया जाय। सुन्दर वर्णों की योजना माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों की प्रतिष्ठा करके भागवत सौन्दर्य-वृद्धि करना उनका लक्ष्य नहीं था। 'रसिक प्रिया' में माधुर्य गुण भली प्रकार इसलिए आ सका है कि इस ग्रन्थ में कवि की दृष्टि शृंगाररस और उसके अंगों पर रही है और शृङ्गाररस की निष्पत्ति माधुर्य गुण पर ही आधृत है।[1] 'रामचन्द्रिका' के तीसवें प्रकाश में प्रभात वर्णन करते समय भी केशव ने बड़ा ही प्रवाहपूर्ण एवं सुन्दर पद-विन्यास किया है। 'रतनबावनी' में ओजगुण-युक्त पदावली का उचित प्रयोग किया गया है। यदि वे चाहते तो कोमल-कान्त पदावली में बड़ी ही सरस तथा ओजपूर्ण पदों में वीरदर्प-पूर्ण कविता कर सकते थे। किन्तु छन्द परिवर्तन तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उनकी इस क्षमता को उभरने ही नहीं दिया। कहा गया है कि 'रामचन्द्रिका' के कुछ छन्दों और 'कविप्रिया' के दो-चार छन्दों को छोड़कर महाकवि की शेष सभी रचनाओं में प्रसाद गुण है।[2] बात ऐसी नहीं है। सरल शब्दों के प्रयोग से काव्य में प्रसाद गुण नहीं आता। ऋजुता और सरलता की उपलब्धि आसान नहीं है। सरल शब्दों में अर्थ-गाम्भीर्य होना चाहिए। सरल शब्दों में सरस रचना करना कठिन है। केशव ने जहाँ सुगम शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ भी बात समझने में मानसिक तनाव का अनुभव होता है। 'प्रसाद' भी एक गुण है जो मात्र सरल रचना से विशिष्ट वस्तु है। प्रसाद गुण काव्य का वह वैशिष्ट्य है जो शुष्क ईंधन में अग्नि की भाँति और स्वच्छ वस्त्रादि में जल की भाँति सहृदय के रचना में वह अनायास (काव्य-पाठ करते ही) व्याप्त हो जाता है।[3]

केशव की शब्दावली सूर और तुलसी को छोड़कर हिन्दी के अन्य सभी कवियों से अधिक समृद्ध है। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी (ब्रजी और

---

१. 'संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्'
[माधुर्य गुण संभोग शृङ्गार, करुण, रस, विप्रलम्भ शृङ्गार और शान्त रस में अनुगत रहा करता है और इनमें उत्तरोत्तर मधुर लगा करता है।] —सा० दर्प, अष्टम परिच्छेद।

२. 'आचार्य केशवदास', पृष्ठ १९९।

३. 'काव्य प्रकाश', मम्मटाचार्य, अष्टम उल्लास, श्लोक ७०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुन्देलखण्डी) तथा यथावसर अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। बुन्देलखण्डी शब्दों की तो एक अच्छी संख्या इनकी कृतियों में उपलब्ध हो जाती है। गेंगुआ (तकिया), खारक (लोहारा), चोली (पिटारा), घोरिला (खूँटी), बरेंगा (कड़ी), दुगई (दालान), कुची (कुन्जी), गोरमदाइन (इन्द्रधनुष) आदि शब्द बुन्देलखण्डी हैं। संस्कृत के कुछ अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। कहीं-कहीं व्रजभाषा के भी अप्रचलित शब्दों को काव्य में चलाने की चेष्टा की है। लांच (रिश्वत), ऐली (आड़), नारी (समूह) आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। तात्पर्य यह है कि केशव की भाषा शब्दों की दृष्टि से दरिद्र नहीं है। केशव की भाषा में व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ भी हैं। कवि ने स्त्रीलिंग के साथ पुल्लिग क्रिया और पुल्लिग के साथ स्त्रीलिंग क्रिया का प्रयोग भी किया है। कहीं-कहीं विभक्तियों के प्रयोग में भी गड़बड़ी है। कुछ तो उनके संस्कृत भाषा के संस्कार के कारण ऐसा हुआ है और कुछ संयम के अभाव के कारण। 'देवता' शब्द का प्रयोग उन्होंने बराबर (संस्कृत की परम्परा के अनुसार) स्त्रीलिंग में किया है।

अभिव्यक्ति को सभी प्रकार से पूर्ण बनाने का प्रयत्न काव्य-साधना का चरम लक्ष्य है। सारी शब्द-साधना इसलिए की जाती है। इसके लिए अध्ययन, अनुभव, प्रतिभा आदि सभी की आवश्यकता पड़ती है। केशव की भाषा में अभिव्यक्ति की अपूर्णता भी खटकती है। शास्त्रों में दोनों की गणना एक प्रकार से अभिव्यक्ति की अपूर्णता की गणना है। कहना न होगा कि केशव में संदिग्धत्व (जहाँ कवि के वांछित अर्थ का पता न चले), न्यूनपदत्व (जहाँ शब्दों की न्यूनता के कारण अभिप्रेत अर्थ न प्रकट न हो सके), अक्रमत्व (जहाँ शब्द-प्रयोग क्रम से न हो), अधिकपदत्व (जहाँ आवश्यकता से अधिक शब्द आ जायँ), निहतार्थ (जहाँ किसी उभयार्थ अप्रचलित शब्द का प्रयोग अर्थ में किया जाय), समाप्त-पुनरातत्व (जहाँ वाक्य समाप्त करके विशेषण आदि के द्वारा उसे पुनः उठा लिया जाय) आदि सभी दोष आ गये हैं।[1] इनमें से कुछ पद-दोष हैं और कुछ वाक्य-दोष। इसके अतिरिक्त अर्थ-दोष और रस-दोष भी महाकवि के काव्य में आ गये हैं।

---

१. उपर्युक्त दोषों के उद्धरण पं० कृष्णशंकर शुक्ल के 'केशव की काव्य-कला' में पृष्ठ १३०, १३१ पर देखिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द-शक्तियाँ भी अतिशयोक्ति को पूर्ण बनाती हैं। केशव ने लाक्षणिक प्रयोग बहुत कम किये हैं। इसलिए उनके काव्य में लक्षणामूला व्यंजना का भी अभाव है। कहीं-कहीं अभिधामूला व्यंजना का सुन्दर प्रयोग हुआ है—रावण हनुमान जी से प्रश्न करता है कि रे बन्दर! तू बन्धन में कैसे पड़ा? इस पर वे उत्तर देते हैं—

कैसे बँधायो? जु सुन्दरि तेरी छुईद्दग सोवत पातक लेखो।[1]

अर्थात् तुम्हारी सोती हुई सुन्दरियों को नेत्रों से मैंने स्पर्श किया था उसी पाप के कारण बँध गया। संकेत (व्यंग्य) यह है कि तूने तो पर स्त्री का अपहरण किया है तो तुम्हारी क्या गति होगी। अंगद-रावण-संवाद में भी इस प्रकार की व्यंजना मिलती है।

मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से वाक्य की अभिव्यक्ति क्षमता में वृद्धि होती है। मुहावरे भी एक प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग ही हैं जो धीरे-धीरे रूढ़ हो गये हैं। लोकोक्तियाँ पूरे प्रसंग को अनुभूति रंजित करके कथन में जान ला देती हैं। इनका प्रयोग उचित प्रसंग में ही जँचता है। केशवदास जी ने इन दोनों का प्रयोग किया है; किन्तु उनकी लोकोक्तियाँ अधिक सजीव हैं। उदाहरण के लिए—

'होनहार ह्वै रहै मिटै मेंटे न मिटाई',

'होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै',

'ऊँटहि ऊँट कटारहि भावै',

'प्यास बुझाइ ओस के चाटे',

'कहि केशव अपनी जाँघ उघारि के आपही लाजन को मरई'।

आदि लोकोक्तियों का प्रयोग देखा जा सकता है। इसका प्रयोग उचित अवसरों पर किया गया है। प्रथम दो लोकोक्तियाँ राम द्वारा—परशु-राम को यह परितोष देने के लिए प्रयुक्त हुई हैं कि धनुष टूटने में होन-हार (दैवीगति) ही प्रबल थी। अतः आपका क्रोध व्यर्थ है। तीसरी लोकोक्ति शंखिनी नायिका का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रयुक्त हुई है। कवि यह कहना चाहता है कि जैसे ऊँट अपनी आदत और स्वभाव-से बाज नहीं आता वैसे ही शंखिनी नायिका भी अपनी नीच आदतों से बाज नहीं आती। चौथी लोकोक्ति उस प्रसंग में प्रयुक्त हुई है जब

---

१. 'रामचन्द्रिका', चौदहवाँ प्रकाश, छन्द १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामजनी नायिका कृष्ण पर यह प्रकट करना चाहती है कि आप अन्य कामिनियों से प्रेम करके भले ही सन्तुष्ट होने का ढोंग कर लें; किन्तु बिना राधिका को देखे वास्तविक सुख न प्राप्त होगा। भला कहीं ओस चाटने से प्यास बुझती है! पाँचवीं लोकोक्ति का प्रयोग भी ठीक अवसर पर किया गया है। मानिनी नायिका को मनाने वही स्त्री आयी है जिसके प्रति कृष्ण को आकर्षित देखकर नायिका ने मान किया है। ऐसी स्थिति में नायिका अपना रहस्य प्रकट करके संसार की निगाहों में हल्की नहीं बनना चाहती और वह कहती है—भला अपनी ही जाँघ उघारकर स्वयं अपनी ही लाज से कौन मरना चाहेगा? इन लोकोक्तियों में अधिकांश 'रसिकप्रिया' से ली गयी हैं। 'रसिकप्रिया' भाषा, भाव और छंद-प्रयोग सभी दृष्टियों से कवि की सर्वाधिक सरस रचना है। यदि इसी प्रकार भावानुकूल भाषा का प्रयोग सर्वत्र किया गया होता तो बात ही और होती।

सब मिलाकर केशव की काव्य-भाषा की दाद नहीं दी जा सकती। व्रजभाषा-काव्य की आदर्श भाषा भी नहीं मान सकते। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि एक संस्कृतज्ञ पंडित कवि लोकरुचि को दृष्टि में रखकर संस्कृत के क्षेत्र को छोड़कर व्रज-भाषा-हिन्दी में प्रयोग कर रहा था। उसमें संस्कृत का मोह बना हुआ था, वह पाण्डित्य-प्रदर्शन भी करना चाहता था। इन तीन रास्तों पर एक साथ चलने के कारण उनकी भाषा में अनेक प्रकार की दुर्बलताएँ आ गयी हैं।

भक्ति-भावना

केशव का मूल्यांकन करते हुए आचार्य शुक्ल ने एक वाक्य कहा है—'रामायण की कथा का केशव के हृदय पर कोई विशेष प्रभाव रहा हो, यह बात नहीं पायी जाती।'[1] जिसके हृदय पर राम कथा का कोई विशेष प्रभाव न रहा हो उसे भक्तकवियों की कोटि में कैसे रखा जा सकता है? पूरी 'रामचन्द्रिका' पढ़ जाने पर वस्तुतः ऐसा नहीं लगता कि केशव राम के शील से प्रभावित होकर उनके प्रति पूर्णतः अनुरक्त थे। उनके विषय में तुलसी की यह उक्ति— सुनि सीतापति शील सुभाऊ मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहरि खाऊ'

---

१. 'हिन्दी साहित्य इतिहास', पृष्ठ २१०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंशतः ही लागू होती है। सुनने के लिए तो उन्होंने ऋषि वाल्मीकि के मुख से सुना था—

भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै।[1]

और यह सुनकर भगवान् राम को अपना इष्टदेव भी मान लिया था—

मुनिपति यह उपदेश दे जबहिं भये अदृष्ट।
केशवदास तहीं करयो रामचन्द्र जू इष्ट।[2]

किन्तु उनके मन से न इन्द्रजीतसिंह निकल सके और न भगवान् राम उनके हृदय में समा सके। न तो उनका मन मुदित हुआ न तन पुलकित। यों तो महाकवि ने 'रामचन्द्रिका' की रचना करते समय प्रारम्भ में राम की वन्दना भी की है।[3] उनके नाम का प्रभाव भी स्वीकार किया है।[4] उन्हें अविकारी, जगकर्ता और भक्तों के लिए अवतार लेने वाला भी बताया है।[5] ब्रह्मा के मुख से उन्हें त्रिदेव—

---

१. 'रामचन्द्रिका', पूर्वार्द्ध, पृष्ठ ६।
२. वही, पृष्ठ ७।
३. पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बतावै न बतावै और उक्तिको।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझै न नेति नेति कहै वेद छाँड़ि आन युक्तिको।
जनि यह केशोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्तिो को।
रूपदेहि अणिमाहि गुणदेहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि नाम-देहिमुक्तिको।
—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ ३।
४. कहैं नाम आधो सो आधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुण्ठ पावै।
—वही उत्तरार्द्ध
५. निजु ये अधिकारी, सब सुखकारी सब ही विधि सन्तोषी।
वही, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १२०।
यद्यपि जग करता पालक हरता, परिपूरण वेदन गाये।
अति तदपि कृपाकरि, मानुष वपु धरि, यल पूछन हमसों आये।
—वही, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १६६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव—मय भी कहलवाया है।[1] किन्तु स्वयं उनसे उस प्रकार का व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं स्थापित किया है जिस प्रकार का एक भक्त अपने आराध्य से स्थापित करता है। 'रामचंद्रिका' की रचना कवि ने अपने अन्तस् के मूल्यों को मूर्त करने के लिए नहीं की है, वरन् अपने पाण्डित्य, वर्णन-क्षमता और छंद-ज्ञान के प्रदर्शन के लिए की है। तुलसी की दृष्टि में वे 'प्राकृत' कवि ही रहे। इन्द्रजीतसिंह के राज्य में राजसी जीवन व्यतीत करने वाले केशव का हृदय भक्ति-भावना से आप्लावित कैसे हो सकता था?

लोक-चेतना ने भी केशव को भक्त-कवि के रूप में स्वीकार किया। जब भी उनका स्मरण किया, 'रसिक जीव', 'बड़े रसिया', 'प्राकृति कवि', 'कठिन काव्य के प्रेत' आदि नामों से ही उन्हें अलंकृत किया गया। भक्ति-भावपूर्ण हृदय लेकर दरबारी वातावरण में नहीं रहा जा सकता। केशव की आन्तरिक प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हुए डॉ० हीरालाल दीक्षित ने लिखा है—'उनकी जीवन-घटनाओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वे निवृत्ति-मार्ग के अनुगामी आध्यात्मिक साधक नहीं थे तथा उनकी मनोवृत्ति निवृत्ति-धर्म में नहीं थी। वे लोकव्यवहार के धर्म को मानते थे और प्रवृत्ति-कारक साधनों में मन लगाते थे।'[2] डॉ० दीक्षित ने आचार्य केशव के काव्य का अनुशीलन कई वर्षों तक किया है। वे उनको अधिक निकट से जानते हैं। उनका निर्णय अन्तिम चाहे न हो विश्वसीय तो है ही। केशव के पक्ष में रह-रहकर एक ही बात हृदय में अनुगुञ्जित हो उठती है। काव्य-दोषों से अपने को यथासाध्य दूर रखने वाले इस पंडित कवि ने राम नाम

---

१. इक जो रजोगण रूप तिहारो।
तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो॥
गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको।
अब विष्णु कहै सिगरो जग ताको॥
तुमहीं जग रुद्र सरूप संहारो।
कहियें तेहि मध्य तमोगुण सारो॥
—वही, पूर्वार्द्ध पृष्ठ ३४६।

२. 'आचार्य केशवदास', पृष्ठ ३४४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रटने में 'पुनरुक्ति दोष' की चिन्ता नहीं की। वह अनुदिन राम राम रटता रहा।[1] यही नहीं, उसकी मतिरूपी सीता के नेत्र राम के पद-पद्म में उसी प्रकार अनुरक्त रहे जिस प्रकार चंचरीक कमल-पुष्पों में आसक्त होता है।[2] कम-से-कम रामचंद्रिका की रचना आरम्भ करते समय कवि की मनःस्थिति कुछ ऐसी अवश्य रही होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि केशव का व्यक्तित्व तो निस्सन्देह भक्तकवि का व्यक्तित्व नहीं था; किन्तु कभी-कभी रह-रहकर उनके अन्तस् में भक्ति-भाव का स्फुरण अवश्य हो जाया करता था।

केशव काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

केशवदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अभी तक नहीं किया गया है। काव्य के मूल्यांकन में मनोविज्ञान भूमिका महत्वपूर्ण है। कवि और पाठक के बीच में काव्य की जटिल मनोवैज्ञानिक रचना-प्रक्रिया की स्थिति सीधा (सरलीकृत) सम्बन्ध स्थापित करने में बाधक होती है यह सर्वमान्य है। इनलिए किसी कवि के अध्ययन में रचना-प्रक्रिया (creative process) का विश्लेषण उसके सही मूल्यांकन के लिए आवश्यक है। प्रत्येक कलाकार आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणा से ही विशिष्ट कला-माध्यम का चयन करता है। उसके मन में कुछ अनुभूतियाँ होती हैं। वह दूसरों में इन्हीं अनुभूतियों को जगाना चाहता है। इसलिए वैयक्तिक अनुभूति को सर्व-जनग्राह्य बनाने के लिए उपयुक्त माध्यम की खोज रचना-प्रक्रिया का अनिवार्य अंग है। कलाकार का अपनी अनुभूतियों के प्रति लगाव ही कला-माध्यम के प्रति निष्ठा का कारण बनता है। ऐसी स्थिति में यदि कलाकार अपनी अनुभूति के प्रति निष्ठावान नहीं है या उसकी स्वीकृति के प्रति दुविधाग्रस्त है तो उसका कला-माध्यम उस सन्तुलित सामंजस्य का कारण नहीं बन सकता जो सौंदर्य का मूलाधार है।[3] केशव की मनःस्थिति का विश्लेषण

---

१. जानि यह केशौदास अनुदिन राम राम रटत न डरत पुनरुक्ति को।
—रामचंद्रिका, पृष्ठ ३।

२. रामचन्द्रपदपद्म वृन्दारकवृन्दाधिवंदनीयम्
केशवमति भूतनया लोचनं चंचरीकायते।—वही, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ ७।

3. Beauty is "that which is conductive to synaesthetic equalibrium."—Five Approches of Literary Criticism, p. 71.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि एक प्रकार की दुविधाग्रस्त स्थिति में ही वे काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। एक ओर उन्हें अपने परम्परागत वंश-गौरव का ध्यान था जिसमें गणेशतुल्य अगाध पांडित्य-सम्पन्न पंडित होते आये थे और दूसरी ओर वे उन परिस्थितियों को भी अनदेखा नहीं कर पा रहे थे जो उन्हें भाषा-काव्य लिखने के लिए विवश कर रही थीं। इसलिए भाषा काव्य लिखते समय इनकी अन्य मनस्कता स्वाभाविक थी। केशव की मानसिक व्यग्रता का एक दूसरा कारण भी था। एक ओर वे संस्कृत के महान् आचार्यों—भामह, उद्भट, दण्डी आदि—की पंक्ति में शोभित होना चाहते थे और दूसरी ओर वाल्मीकि जैसे ऋषि एवं तुलसी जैसे महात्मा से प्रतिस्पर्धा भी करना चाहते थे। उनके पास अध्ययन और अनुभव की पूँजी कम नहीं थी, किन्तु वह निष्ठाजनित तन्मयता नहीं थी जो कृति को सजीव माध्यम बना देती है। कवि को काव्य-प्रेरणा-बाहर से मिली थी। 'रतनबावनी' (संवत् १६४५ के आस-पास रचित) की रचना मधुकरशाह के सातवें पुत्र रतन सिंह का शौर्य वर्णन करने के निमित्त हुई थी। 'रसिकप्रिया' (संवत् १६४८) इन्द्रजीत सिंह के निवेदन पर उन्हें तुष्ट करने के लिए की गयी थी।[1] 'कविप्रिया' (१६५८ वि०) की रचना इन्द्रजीत सिंह के अखाड़े की शोभा प्रवीणराय पातुर के लिए हुई थी।[2] 'वीरसिंह देव-चरित' (संवत् १६६४) और 'जहाँगीर जसचंद्रिका' (१६६९ वि०) स्वयं अपनी कहानी कह रहे हैं। एक मात्र 'रामचंद्रिका' की प्रेरणा दिव्य प्रतीत होती है। इसके लिए कवि ने स्वयं लिखा है कि ऋषि वाल्मीकि ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर फटकारा था किन्तु व्यर्थ की कथाएँ कहता-सुनता है; भला-बुरा कुछ नहीं देखता। जब तक रामदेव का गुणगान नहीं करेगा तब तक देवलोक की प्राप्ति नहीं होगी।[3] ऋषि

---

१. इन्द्रजीत ताको अनुज सकल धर्म को धाम।
× × ×
सब सुख दै करि यों कह्यो रसिकप्रिया करि देहु॥

२. तिनमे करत कवित्त इक, राय प्रवीण प्रवीण।
× × ×
ताके कारज कविप्रिया कीन्हीं केशव दास॥

३. भला बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइहै। न देवलोक पाइहै॥
—रामचन्द्रिका, प्रथम प्रकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाल्मीकि को स्वप्न में देखने की कल्पना कवि के मनोविज्ञान को स्पष्ट कर देती है। कवि केशव के अवचेतन मन में ऋषि वाल्मीकि की परम्परा में अपने को प्रतिष्ठित करने की वासना विद्यमान थी। वैष्णव राम-काव्य लोक में व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। संवत् १६३१ में तुलसी का 'रामचरितमानस' अवतरित हो चुका था। संभव है तुलसी की लोक-प्रियता ने महाकवि को राम-काव्य लिखने की प्रेरणा दी हो। इस संदर्भ में वह अनुश्रुति महत्वपूर्ण हो जाती है जिसके अनुसार तुलसीदास ने केशव को प्राकृत कवि कहकर काशी में उनसे मिलना अस्वीकार कर दिया था। 'रामचन्द्रिका' लिखने के पूर्व केशवदास ने प्राकृत जन गुन-गान ही किया था। उनके मन में महाराज इन्द्रजीतसिंह प्रतिष्ठित थे। केशव ने उन्हें भूतल का इन्द्र कहा है और उनके राज्य में स्वयं अपने को 'राज करता हुआ' अनुभव किया है। राम का ब्रह्मत्व, उनका शील, उनकी मर्यादा-प्रियता या वे सारे मूल्य जो उन्हें भगवत्ता प्रदान करते हैं केशव के मन में स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सके थे। राम-भक्ति में मग्न होकर जहाँ तुलसी अपनी जाति, कुल, गोत्र के प्रति निरपेक्ष हो गये हैं वहीं केशवदास सनाढ्य ब्राह्मणों की प्रशंसा करते नहीं थकते और यहाँ तक कह जाते हैं कि—

सनाढ्यनि की भक्ति जो जीव जागे।
महादेव को शूल ताके न लागे।

केशवदास अपने परिवेश से संघर्ष करके आदर्श एवं उदात्त भावनाओं के कल्पित संसार में नहीं रह पाते, वे मानवीय जीवन की यथार्थ अनुभूति-सामन्तीय जीवन की अनुभूति—के लौकिक स्तर पर आते हैं। उनका मन इस लोक में ही रमता है। राजकीय प्रभाव का वर्णन उनके लिए इसीलिए सहज हो सका है।

केशव का मानसिक द्वन्द्व उनके काव्य में स्पष्ट लक्षित होता है। कवियों की कोटि का निर्धारण करते हुए वे हरि-रस-लीन कवि को ही उत्तम मानते हैं। मानवीय अनुभूति को काव्य-विषय बनाने वाले कवि उनकी दृष्टि में मध्यम कोटि में आते हैं। जो दोष-पूर्ण रचना करते हैं वे अधम हैं।[1] इस प्रकार केशव का विवेक उन्हें उत्तम कोटि की ओर

---

१. उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि-रस लीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन॥—कविप्रिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेरित करता है, किन्तु उनके अवचेतन में स्थित आनुवंशिक संस्कार उन्हें पांडित्य-प्रदर्शन एवं राजकीय परिवेश-चित्रण के लिए प्रेरित करते हैं। इसीलिए 'रामचन्द्रिका' लिखते समय वे कथा के लिए छन्द का प्रयोग न करके छंद-प्रदर्शन के लिए कथा का आधार ले लेते हैं। 'कविप्रिया' के अनेक उदाहरण रूप में निर्मित छंदों को 'रामचन्द्रिका' में ज्यों-का-त्यों समाविष्ट कर लेते हैं। राम कथा के बीच अवसर मिलते ही विस्तार से नख-शिख वर्णन करने लगते हैं। संगीत-नृत्य आदि के वर्णन का अवसर निकालकर उनके भेदों प्रभेदों का उल्लेख करने लगते हैं। नाटकीय प्रसंगों के उपस्थित होने पर उन्हें चमत्कारिक एवं कथा-निरपेक्ष स्वतन्त्र नाट्य-दृश्य के रूप में प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। भाषा प्रयोग को लेकर भी केशव के मन में बराबर द्वन्द्व बना रहता है। फलतः वे 'भाषा' का प्रयोग नहीं करना चाहते थे। युग-प्रवाह को देखते हुए और आश्रयदाताओं की रुचि का ध्यान रखकर उन्हें 'देववाणी' के स्थान पर 'भाषा' का प्रयोग करना पड़ा था। भाषा-प्रयोग को लेकर उनके मन में निश्चित रूप से एक हीन-भावना कार्य करती रही है। इसकी पूर्ति उन्होंने जगह-जगह श्लेष-पूर्ण एवं संस्कृतनिष्ठ पदावली के प्रयोग द्वारा की है। एक-एक छंद में श्लेष-बल से कई-कई अर्थ भरकर वे पंडितों को बता देना चाहते हैं कि मैं कम नहीं हूँ। हीन-भावना-युक्त, दुविधाग्रस्त (Conflict of motives), स्पर्धा-युक्त एवं तनावपूर्ण मनःस्थिति में काव्य-रचना करते हुए केशव एक ऐसी ट्रैजेडी के शिकार हुए जिसने उनकी रचना को निष्प्राण कर दिया। वे उत्तम कवि की अपनी ही कसौटी पर खरे नहीं उतर सके। केशव ने यदि 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' लिखकर या 'रामचन्द्रिका' को छन्द शास्त्र के लक्षण-ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करके ही संतोष कर लिया होता, तो वे हिन्दी के आचार्यों में कनिष्ठकाधिष्ठित होते किन्तु-'हरि-रस-लीन' होने के प्रयत्न में वे अपने आचार्यत्व की भी पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं कर सके। जिस प्रकार बंगाल में गौडीय वैष्णवों ने व्याकरण को भी हरिनाम से विभूषित करके लिखा वैसे ही केशवदास ने 'रामचंद्रिका' के रूप में छन्द-ग्रंथ

नोट—[केशव का उपर्युक्त निर्धारण सर्वथा निजी है। राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' और क्षेमेन्द्र के 'कवि कण्ठाभरण' में जो कवि कोटियाँ निर्धारित हैं, वे इससे भिन्न हैं।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को हरिनाम से विभूषित करने का प्रयत्न किया। अन्तर केवल यह है कि गौणीय वैष्णवों ने हरिनाम की ओर विशेष ध्यान दिया है, किन्तु केशव का ध्यान छन्द-वैविध्य की ओर चला गया है।

केशवदास का जीवन हमारे सामने विस्तृत रूप में स्पष्ट नहीं है। उनके जीवन का अन्तरंग तो और भी अस्पष्ट और अज्ञात है। अतः उनके काव्य में उनकी दमित मानसिक भावनाओं का अनुसन्धान कठिन है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके अन्तर्मन में 'प्रवीणराय पातुर' की रूप-छटा बराबर विद्यमान रही है। जब कभी उनके पांडित्य का आवरण हट जाता है तो यह छवि सामने आ जाती है। वही उनकी सौन्दर्य भावना का आदर्श है। 'रसिकप्रिया' की 'राधा' या 'गोपी' तथा 'कविप्रिया' की 'रति तें अति लोनी प्रिया' भी वही है। 'रामचन्द्रिका' में जनकपुर की स्त्रियों तथा सीता की सखियों एवं दासियों में उसे लक्षित किया जा सकता है। कहा जाता है कि प्रवीणराय की प्रसिद्धि ने शहंशाह अकबर को भी चंचल कर दिया था और अन्ततः उसे अकबरी दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ा था। दरबार में जाकर उसने शाह सुजान (अकबर) से विनयपूर्वक कहा—'जूठी पतरी भखत हैं बारी, बायस, स्वान'। सम्भव है इससे अकबर का स्वाभिमान जागा हो और उन्होंने 'प्रवीणराय' को मुक्त कर दिया हो। इन्द्रजीत सिंह की वासना यह थी कि उनका दरबार अनन्त काल तक बना रहे। केशवदास की वासना यह थी कि उस दरबार से उनका सम्बन्ध बना रहे। जब कभी राज दरबार के किसी पक्ष का वर्णन करना होता है या अन्त.पुर की सुन्दरियों का वर्णन करना होता है, केशवदास सहज हो जाते हैं। उनका तनाव कम हो जाता है। उनकी भाषा में संदर्भ के अनुकूल लालित्य, प्रवाह, सजीवता और ओजस्विता प्रकृततः आ जाती है किन्तु जब कभी वे दरबार से हटकर किसी अन्य प्रसंग का वर्णन करने लगते हैं तो असामान्य हो जाते हैं। चमत्कार और पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

कहा जाता है कि तुलसीदास ने केशवदास का प्रेत-योनि से उद्धार किया था। इसका यही अर्थ लिया जा सकता है कि तुलसी के मानस के साथ रामचंद्रिका की चर्चा होने लगी और इस प्रकार केशव भी श्रेष्ठ भक्त-कवियों की पंक्ति में बैठने के अधिकारी मान लिये गये। तुलसी द्वारा प्रचारित रामलीलाओं में केशव के संवादों को स्थान मिला। इस प्रकार यदि देखा जाय तो सचमुच तुलसीदास ने केशवदास का प्रेत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योनि से उद्धार किया। तुलसी की स्पर्धा में 'रामचंद्रिका' की रचना करनेवाले केशव जन-मानस में 'कठिन काव्य के प्रेत' बनकर रह गये। यदि पांडित्य का आग्रह उनके व्यक्तित्व की सहज प्रवृत्ति होती तो उन्होंने 'कविप्रिया' के बाद काव्य-शास्त्र का कोई प्रौढ ग्रंथ लिखा होता। 'रसिक-प्रिया' जैसा मात्र परिचयात्मक रस-ग्रंथ न लिखकर रस-शास्त्र का समग्र और प्रौढ़ विवेचन किया होता। 'कविप्रिया' भी काव्य शिक्षा का परिचयात्मक ग्रंथ ही है। वस्तुतः केशव का पांडित्य किसी भी कृति में अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं कर सका है। इससे प्रकट है कि उनकी आत्यन्तिक निष्ठा का केन्द्र शास्त्र के निगूढ़ तत्वों का विवेचन नहीं है।

केशव की निष्ठा का केन्द्र क्या है? यह प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही विवादास्पद भी है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में 'केशव केवल उक्ति वैचित्र्य और शब्द क्रीड़ा के प्रेमी थे।' केशव के एक दूसरे आलोचक डॉ० हीरालाल दीक्षित के शब्दों में "कवि के रूप में केशव प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक रचनाओं में अधिक सफल हुए हैं।" उपर्युक्त दोनों ही निष्कर्ष एक ही दिशा की ओर संकेत करते हैं। उक्ति-वैचित्र्य और शब्द-क्रीड़ा के लिए मुक्तक काव्य में अधिक छूट रहती है। यह मुक्तक-रचना की प्रवृत्ति दरबारी वातावरण का प्रभाव है। केशवदास ने पण्डित-परम्परा के निर्वाह और दरबारी वातावरण की रक्षा के लिए जो चमत्कार-प्रदर्शन किया है उसमें उनकी केन्द्रीय-निष्ठा को लक्षित करने की चेष्टा समीचीन नहीं है। इस संदर्भ में बाबू श्यामसुन्दर दास ने एक बहुत सटीक बात कही है—'जहाँ-कहीं हृदय की प्रेरणा से रचना की गयी है, वहाँ न तो क्लिष्टता है न बाह्य-चमत्कार।" बाबू साहब ने जिसे 'हृदय की प्रेरणा' कहा है उसे मनोविज्ञान की शब्दावली में मनोवृत्ति (Attitude) कहा जा सकता है। इस मनोवृत्ति को परिभाषित करते हुये कहा गया है कि "मनोवृत्ति मनुष्य की वह मानसिक और स्नायविक तत्परता है जो अनुभूति के आधार पर संघटित होती है और मनुष्य के जीवन में आने वाली वस्तुओं और परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं का नियमन और संचालन करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है।"[1] यह मनोवृत्ति निषेधात्मक भी होती है और भावात्मक भी। निषेधात्मक मनोवृति हमें वस्तुओं, व्यक्तियों और परिस्थितियों से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने और उनके प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करने से रोकती है। भावात्मक मनोवृत्ति हमें उनसे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा देती है। केशव की भावात्मक मनोवृत्ति ही उनकी केन्द्रीय निष्ठा को लक्षित करने में हमारी सहायता कर सकती है। केशव ने कवियों को किन वस्तुओं का किस रीति से वर्णन करना चाहिए इसका 'कविप्रिया' में विस्तृत उल्लेख किया है, किन्तु 'रामचन्द्रिका' में जब स्वयं उनके सामने वर्ण्य विषयों को चुनने का प्रश्न आया है तो अनेक वस्तुओं की उपेक्षा करके राजवैभव सूचक वस्तुओं को अधिक महत्व दिया है। केशव के मर्मज्ञ लाला भगवानदीन का कहना है—"केशव ने सांसारिक प्रधान दृश्यों तथा सामाजिक और विशेषकर राजा सम्बन्धी पदार्थों के वर्णन एक भी नहीं छोड़े।" इससे केशव की भावात्मक मनोवृत्ति की सूचना मिलती है। राज वैभव के प्रति केशव का प्रबल आकर्षण है। किन्तु इससे भी प्रबल आकर्षण नारी रूप वर्णन के प्रति है। 'रामचन्द्रिका' में उन्होंने 'गणेश', 'सरस्वती', और 'श्रीराम' की वन्दना में एक-एक छन्द लिखा है। 'कविप्रिया' में गणेश-वन्दना दो छन्दों में और वाणी-वन्दना एक छन्द में की है। किन्तु इसी 'कविप्रिया' में इन्द्रजीत सिंह ने अखाड़े का वर्णन इक्कीस छन्दों में किया है। जिस उल्लास, सहजता और तन्मयता के साथ इसका वर्णन किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस अखाड़े का केन्द्र-विन्दु थी 'प्रवीणराय'। इसकी प्रशंसा में केशवदास ने आठ

---

1. "Attitude is a mental and neural state of readiness organised through experience entering a directive influence upon the individual's response to all objects and situations with which is it related". —Allport

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छन्द लिखे हैं। प्रवीण राय साक्षात् 'देव सभा' है। सत्यभामा है। प्रवीणों को सुख देने वाली है। रमा है। शारदा है। शिवा है। उसे भगवान् सविता ने कवित्व-शक्ति दी है। उसके लिए केशवदास ने 'कविप्रिया' की रचना की है। केशव के ही शब्दों में देखिये—

तंत्री, तुम्बुर, सारिका, शुद्ध सुरनि सों लीन।
देव सभा सी देखिए, राय प्रवीण प्रवीन॥
सत्या राय प्रवीण युत सुरतरु सुरतरु गेह।
इन्द्रजीत तासों बँध्यो केशवदास सनेह॥
राय प्रवीण प्रवीण सों परवीणन कहँ सुख।
ऊपर वीण केशव कहा, परवीणन मन दुख॥
रत्नाकर लालित सदा, परमानन्दहिं लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा की राय प्रवीन॥
राय प्रवीण की शारदा, शुचि रुचि रंजित अंग।
वीणा पुस्तक धारिणी, राजहंस सुत संग॥
वृषभवाहिनी अंग युत, वासुकि लसत प्रवीण।
शिव सँग सोहति सर्वदा, शिवा की राय प्रवीण॥
नाचत गावत पढ़त सब, सबै बजावत वीण।
तिन में करत कवित्त पद राय प्रवीण प्रवीण॥
सविता जू कविता दई, जाकहँ परम प्रकास।
ताके कारज कविप्रिया, कीन्हीं केशव दास॥

हम कह आये हैं कि जब कभी 'अंतःपुर की सुन्दरियों का वर्णन करना होता है, केशवदास सहज हो जाते हैं।' उनकी केन्द्रीय निष्ठा न राम के प्रति है न पांडित्य के प्रति। राजवैभव उन्हें रुचता है और मध्य-कालीन राजवैभव कामिनी की कमनीयता पर निछावर है। केशव के लिए नवरंग राय ही नवरस और नवधा भक्ति थी—

सुरी, आसुरी, किन्नरी, नरी रहति सिरु नाइ।
नवरस नवधा भक्ति स्यों शोभित नवरँग राय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से केशवदास मूलतः राजकीय वैभव और शृङ्गार के कवि हैं। पांडित्य, दर्शन, भक्तिभाव एवं भाषागत प्रयोग उनके व्यक्तित्व में निहित हीन भावना की पूर्ति के परिणाम हैं। इन्द्रजीत सिंह के अमरत्व की कामना ही उनके हृदय की संचित वासना है—

भूतलको इन्द्र इन्द्रजीत राजै युग-युग,
केशोदास जाके राज, राज सों करत हैं।

व्यक्तित्व और मूल्यांकन

आचार्य केशव का व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे काव्य रीति-प्रवर्तक आचार्य हैं। वे संस्कृतज्ञ पण्डित हैं। वे राजमन्त्री और नीतिज्ञ हैं। उन्हें वैद्यक और ज्योतिष का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है। संगीत में उनकी अच्छी गति है और उसके भेद-प्रभेद उन्हें ज्ञात है। वे दर्शन और अध्यात्म-ग्रन्थों के अध्येता हैं। उन्हें अस्त्र-शस्त्रों की भी अच्छी जानकारी है। यहां नहीं, भगवान् राम उनके इष्टदेव हैं।[1] उनकी मति रूपिणी सीता के नेत्र राम के चरण-कमलों में अनुरक्त रहते हैं।[2] वे अपने पुरातन पापों को दूर करने के लिए ही भगवान् राम के गुणों का गान करते हैं।[3] उनके राम परब्रह्म हैं।[4] इस प्रकार वे भक्तों की

---

१. मुनिपति यह उपदेश दै जब हीं भये अदृष्ट।
केशवदास तही कस्यो रामचन्द्र जू इष्ट॥
—'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, छन्द १८।

२. रामचन्द्रपदपद्मं वृन्दारकवृन्दाभिवंदनीयम्।
केशवमति भू–तनया लोचनं चंचरीकायते॥—वही, छन्द १९।

३. तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागे।
वही, छंद २०।

४. 'यद्यपि जग करता पालक हरता, परिपूरण वेदना गायो।'
—वही, ग्यारहवां प्रकाश, छन्द १५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोटि में आ जाते हैं। उनके ग्रंथों में इतिहास की अच्छी सामग्री है। अतः एक प्रकार से वे इतिहास-निर्माता भी हैं। ऐसे महिमामय और बहुमुखी व्यक्तित्व को लोक-चेतना ने सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्रदान करके उचित ही किया है। उनके परवर्ती आचार्यों ने उनका अनुकरण चाहे न किया हो, किन्तु कवियों ने उनके भावों के अनुसार रचाएँ की हैं। 'बिहारी' और 'मतिराम' इसके प्रमाण हैं। 'देव' में अलंकारों के निरूपण में भी केशव की ही पद्धति का ध्यान रखा है। ऐसे महाकवि की सर्वाधिक उपेक्षा आचार्य शुक्ल के निर्णय साहित्य के यथार्थ निर्णय हैं। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किया गया महाकवि केशवदास का मूल्यांकन विचारणीय है। वास्तव में केशव के सबसे बड़े समर्थक और मर्मज्ञ लाला भगवानदीन के निर्णय भी ठीक वहीं हैं जो आचार्य शुक्ल के। दीन जी के निर्णयों पर ध्यान दीजिए—

[(केशव) कुछ रूखे जान पड़ते हैं, राजसि कवि हैं, बहुत से मनमाने शब्द गढ़े हैं, वर्णन-प्रधान कवि हैं; यह गुण (आन्तरिक भाव व्यक्त करने का) बहुत कम; आचार्यत्व, कवित्व और पाण्डित्य-प्रदर्शन हेतु कविता करते थे; अपने गुणों का अहंकार करते थे, माघ, श्री हर्ष, भास के अनुगामी थे।] [1] मूल्यांकन के आधार पर दिए गए निर्णय प्रायः एक होने पर भी महत्व और गौरव की स्वीकृति में अन्तर हो सकता है। प्रश्न निर्णय का नहीं, मूल्यों का है। केशव के काव्य में जो कुछ है वही जिसके काव्यादर्शों की सीमा होगी उसे केशवदास जी संसार के सबसे बड़े कवि प्रतीत होंगे। जिनकी आस्था भिन्न प्रकार के मूल्यों में होगी उसे वे हीन प्रतीत होंगे। आचार्य शुक्ल के आदर्श तुलसी हैं। वे रसवादी आलोचक हैं। वे मर्यादा को सर्वोपरि महत्व देते हैं। वे काव्य की मान्यताओं को लोक-हृदय-समर्थित देखना चाहते हैं। वे काव्य की उस भूमि को महत्व देते हैं जिसमें लोक-मंगल की भावना प्रधान हो। कोरी कलाबाजी से उन्हें चिढ़ है। वे प्रबंध-रचना

---

१. 'रामचन्द्रिका', उत्तरार्द्ध, भूमिका भाग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को अधिक महत्व देते हैं। केशव की स्थिति इसके ठीक विपरीत है। वे अलंकारवादी हैं। उनके काव्य में मर्यादा को उचित स्थान नहीं दिया गया है। उन्होंने लोक-मंगल के लिए नहीं लिखा है। वे चमत्कार प्रिय हैं। उनकी मनोवृत्ति दरबारी है। वे समाज को विधि-निषेध नहीं दे सकते। उन्होंने मानव जीवन की प्रत्येक स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप अनुभव करते हुए व्यापक सहृदयता एवं सहानुभूति का परिचय दिया है। अतः आचार्य शुक्ल की निगाहों में उनका मूल्य कम है। लाला भगवानदीन भी चमत्कार-प्रिय व्यक्ति थे। उन्हें अलंकारों के प्रयोग में आनन्द आता था। उनका केशव की मनोवृत्ति से मानसिक तादात्म्य था। यदि दीन जी के समय में कोई रामसिंह या इन्द्रजीत होता, वे अपनी टीका उसे ही समर्पित करते। इसीलिए केशव उन्हें प्रिय हैं। अब बात रह जाती है सत्यासत्य की। इसका निर्णायक सदैव काल रहा है। जिसमें शक्ति होती है वह काल को चुनौती देता हुआ मुस्कराता है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि केशव की कविता इन्द्रजीतसिंह के अखाड़े की कविता है जिसका जमाना बहुत खद चुका था। शुक्ल जी नवीन जीवन-चेतना के प्रतीक हैं और दीन जी पुरानी। उन्होंने केशव के प्रेत काव्य का उद्धार अवश्य किया, किन्तु उन्हें वह स्थान न दिला सके जो सूर और तुलसी का है। डॉ० हीरालाल दीक्षित ने आचार्यत्व की दृष्टि से भी केशव को देव और भिखारीदास से नीचा स्थान दिया है। तुलसी और सूर आज के उद्भ्रान्त विकल मानव को भी कुछ दे सकते हैं, केशव के पास आज देने को कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति में लोक-प्रचलित सूक्तियों में जो स्थान केशव को प्राप्त है भगवान करे वही बना रहे—

सूर-सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकास॥

× × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविता कर्ता तीन हैं तुलसी केशव सूर।
कविता खेती इन लुनी, सीला बिनत मजूर॥

× × ×

सुन्दर पद कवि गंग के, उपमा को बरबीर।
केशव अर्थ गम्भीरता, सूर तीन गुण धीर॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचंद्रिका

[संक्षिप्त]

बाल-कांड

गणेश-वंदना

[मनहरण छंद]

बालक मृणालुनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख को।
दूरि कै कलंक अंक भवशीश शशि सम,
राखत हैं केशोदास दास के वपुख को।
साँकरे की साँकरन सनमुख होत तोरैं,
दशमुख मुख जोवैं गजमुख मुख को ॥१॥

शब्दार्थ—बालक = यहाँ हाथी के बच्च स तात्पर्य है। मृणाल = कमल नाल। दीह = दीर्घ। अंक = चिन्ह। भव = महादेव। वपुख = (वपुष) शरीर। साँकरे = संकट। साँकरन = शृंखला, जंजीर। दशमुख = दशों दिशाएँ (दशों दिशाओं के लोग) अथवा ब्रह्मा ४ मुख; विष्णु १ मुख; महादेव ५ मुख; ब्रह्मा + विष्णु + महादेव = दश मुख। गजमुख = गणेश।

व्याख्या—कवि ग्रन्थारंभ करते हुए उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए विघ्नेश्वर भगवान् गणेश की वन्दना करता है। गणेश 'गजवदन' हैं इसलिए उनके सभी कार्यों को कवि ने हाथी के बच्चे के कार्यों के समान दिखाने की चेष्टा की है।

जिस प्रकार हाथी का बच्चा प्रत्येक स्थिति में कमलनाल को सरलतापूर्वक तोड़ देता है उसी प्रकार गणेशजी अकाल-जनित भयंकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठोर और दीर्घ दुखों को (सरलता से) नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार जैसे हाथी का बच्चा हठपूर्वक पद्मिनी (कमलिनी) के पत्ते को तोड़ डालता है वैसे ही गणेशजी भक्तजनों की विपत्ति को (हठपूर्वक) दूर कर देते हैं। वैसे हाथी का बच्चा अपने पैरों के भार से कीचड़ को नीचे (पाताल की ओर) दबा देता है वैसे ही गणेशजी भी भक्तों के कालुष्य को पाताल भेज देते हैं—अर्थात् नष्ट कर देते हैं। यही नहीं, वे महादेव के मस्तक पर विद्यमान निष्कलंक चन्द्रमा के समान ही अपने भक्तों के शरीर को कलंक रहित करके उनकी रक्षा करते हैं। [कहा जाता है कि गणेश के शाप से ही चन्द्रमा कलंकित है और उन्हीं की कृपा से द्वितीया का चन्द्रमा निष्कलंक है। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार चन्द्रमा का सकलंक और निष्कलंक होना गणेशजी के कोप और अनुग्रह पर निर्भर है वैसे ही बंस जनों का कलंकित होना या निष्कलुष होना भी उन्हीं के क्रोध और कृपा पर निर्भर करता है। जिस प्रकार हाथी का बच्चा लौह शृङ्खलाओं को तोड़ डालता है वैसे ही गणेशजी भी संकट की शृङ्खलाओं को सम्मुख आते ही तोड़ डालते हैं। ऐसे दुःखहारी, विपत्ति विदारक, कालुष्य-नाशक और संकट-भंजन भगवान् गणेश का मुख दशो दिशाओं के लोग या ब्रह्मा, विष्णु, महेश जोहते रहते हैं। उनकी कृपा की कोर की कामना किया करते हैं।

अलंकार—उपमा, परिकरांकुर।

सरस्वती-वंदना

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं उदार कौन की भयी।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न केहूँ लयी।
भावी, भूत वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूँ न बखानी काहू पै गयी।
वर्णैं पति चारि मुख, पूत वर्णैं पाँच मुख,
नाती वर्णैं षट मुख, तदपि नयी नयी॥ २॥

शब्दार्थ—बानी = सरस्वती। उदार = महिमामय। भावी = भविष्य। भूत = प्राचीनकाल। वर्त्तमान = इस समय। पति = ब्रह्मा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(सरस्वती के पति माने जाते हैं)। पूत = महादेव। नाती = षड़ानन, कार्तिकेय।

व्याख्या—ग्रन्थारंभ करते हुए कवि विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की वन्दना करता है।

भला ऐसी महिमामयी किसकी बुद्धि है जो संसार व्याप्त (जगरानी) वाग्देवी की उदारता का वर्णन (अपनी बुद्धि के सहारे) कर सके। देवतागण, संसार प्रसिद्ध लोग, बड़े-बड़े राजर्षि, महान् से महान् तपस्वी सभी उनकी (सरस्वती देवी की) उदारता का वर्णन करके थक चुके हैं (हार मान चुके हैं) किसी ने भी पूर्ण रूप से सफलता नहीं प्राप्त की। अतीतकाल से सारा संसार (उनकी उदारता का) वर्णन करता चला आ रहा है, अब भी कर रहा है और भविष्य में भी करेगा किन्तु (कवि का निश्चित मत है) सम्यक् रूप से किसी के द्वारा भी वर्णन नहीं किया जा सका। और तो और उनके निकटतम सम्बन्धी (जो उनके विषय में पूरी जानकारी रखते हैं)—पति (ब्रह्मा), पुत्र (महादेव) और नाती (कार्तिकेय), जिन्हें क्रमशः चार, पाँच और छः मुखों से वर्णन करने का सौभाग्य प्राप्त है, भी वर्णन करते रहे हैं फिर भी वह (उनकी उदारता) नित्य नवीन होती जाती है और वे पूर्ण वर्णन करने में असमर्थ हो जाते हैं।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

राम-वंदना

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत, जिन्हें दरसन समुझैं न,
'नेति नेति' कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि, गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि मुक्ति को॥ ३॥

शब्दार्थ—पूरण = सम्पूर्ण, अठारहो पुराण। पुरुष पुराण = पुराने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोग। परिपूरण = सब प्रकार से पूर्ण। [बृहदारण्यक उपनिषिद् के पाँचवें अध्याय के प्रथम ब्राह्मण की प्रथम कण्डिका का पूर्वार्द्ध भी इसी सत्य का उद्घोष करता है—

"ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते"।]

दरशन देत = अवतरित होकर सगुण-साकार रूप में दर्शन देते हैं। दरशन = छवो शास्त्र। नेति-नेति = अन्त नहीं है, अन्त नहीं है। अनुदिन = नित्यप्रति। अणिमा = छोटा से छोटा रूप धारण करने की सिद्धि गरिमा = भारवृद्धि करने की सिद्धि।

व्याख्या—अष्टादश पुराण तथा अनुभवी पुराने लोग भगवान् राम को 'पूर्ण' कहते हैं। उनके विषय में अन्य कोई उक्ति नहीं कहते। जिनके स्वरूप का निर्णय षटदर्शन भी नहीं कर पाते वे ही भगवान् राम भक्तों को सगुण-साकार रूप धारण करके प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। वेद भी उनका तत्त्व-निरूपण करते समय केवल 'नेति-नेति' (अंत नहीं है—अंत नहीं है) कह पाते हैं। यह भली-भाँति जानकर (कि भगवान् को ज्ञान या तर्क के मार्ग से नहीं समझा जा सकता) केशव कवि नित्य प्रति भक्ति भावना पूर्वक भगवान् के नाम (राम) का स्मरण किया करते हैं। [सामान्यतः काव्यशास्त्र के पण्डित होने के नाते वे पुनरुक्ति दोष से डरते हैं किन्तु] भक्ति के क्षेत्र में भगवान् राम का बार-बार नाम लेने में (पुनरुक्ति करने में) भी वे नहीं डरते। भगवान् राम की रूपासक्ति अणिमा; गुणासक्ति गरिमा; भक्ति महिमा; तथा नाम-जप मुक्ति देनेवाला है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

कवि-परिचय

[गुणवती सुगीत छन्द]

सनाढ्य जाति गुनाढ्य हैं, जग सिद्ध शुद्ध स्वभाव।
कृष्णदत्त प्रसिद्ध हैं, महि मिश्र पंडितराव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि कै जिन जानियो मत साध॥४॥

[दो०] उपज्यो तेहि कुल मंदमति, सठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चंद्रिका, भाषा करी प्रकास॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोरह सै अट्ठावनै, कार्तिक सुदि बुधवार।
रामचंद्र की चंद्रिका, तब लीन्हों अवतार ॥६॥

शब्दार्थ—गुनाढ्य=गुणवान। बुध=विद्वान्। अशेष=सम्पूर्ण। साध=उत्तम, श्रेष्ठ। जिन जानियो मत साध=जिन्होंने उत्तम मत जान लिया था।

व्याख्या—सरल है।

छन्द ५, ६ सरल और स्पष्ट हैं।

राम-महिमा

[षट् पद]

बोलि न बोल्यो बोल, दयो फिर ताहि न दीन्हों।
मारि न मारयो शत्रु, क्रोध मन वृथा न कीन्हों।
जुरि न मुरे संग्राम, लोक की लीक न लोपी।
दान, सत्य, सम्मान सुयश दिशि विदिशा ओपी।
मन लोभ-मोह-मद-काम-वश भये न केशवदास भणि
सोई परब्रह्म श्रीराम हैं अवतारी अवतार मणि ॥७॥

शब्दार्थ—बोलि न बोल्यो बोल=एक बार जो कह दिया उसमें फिर परिवर्तन नहीं किया। फिर कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं हुई। मुरे=मुड़े, पीछे हटे। लीक=मर्यादा। ओपी=प्रकाशित है, विदित है। भणि=कहते हैं। मणि=श्रेष्ठ।

व्याख्या—कवि राम की महिमा का गान करते हुए कहता है—भगवान् राम ने एक बार जो कह दिया उसे पूर्ण किया। फिर दूसरी बार में उसमें किसी प्रकार के परिवर्तन को आवश्यकता ही नहीं हुई। (वचन की दृढ़ता व्यञ्जित है।) जिसे उन्होंने एक बार दान दिया उसे कभी दान देने की आवश्यकता ही नहीं हुई। जिस शत्रु पर एक बार प्रहार किया उस पर फिर प्रहार करने की आवश्यकता न हुई। (वह सीधे स्वर्ग सिधार गया) उन्होंने कभी व्यर्थ ही मन में क्रोध नहीं धारण किया। (अपराधी पर ही क्रोध किया) युद्ध में प्रवृत्त होकर वे कभी पीछे नहीं हटे। उन्होंने कभी लोक-मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। उनकी दानशीलता, सत्यनिष्ठा, तथा गौरव और यश से दिशायें तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रत्येक दिशा, समस्त पृथ्वीमण्डल) प्रकाशित हैं। केशवदास कवि कहते हैं कि उनका मन कभी भी लोभ, मोह, मद तथा काम के वशीभूत नहीं हुआ। इन विशेषताओं से युक्त भगवान् श्रीराम परब्रह्म हैं और अवतारियों में श्रेष्ठ अवतारी हैं।

[चतुष्पदी छन्द]

जिनको यश-हंसा जगत प्रशंसा मुनिजन-मानस रंता।
लोचन अनुरूपनि श्याम-स्वरूपनि अंजन अंजित संता।
कालत्रयदर्शी निर्गुणपर्शी होत विलंब न लागै।
तिनके गुण कहिहौं, सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै ॥८॥

शब्दार्थ—मानस = मनरूपी मानसरोवर। रंता = अनुरक्त। निर्गुण-परशी = निर्गुण ब्रह्म को स्पर्श करनेवाले। पुरातन = प्राचीन।

व्याख्या—वाल्मीकि मुनि के द्वारा स्वप्न में उपदेश प्राप्त करने के बाद केशव भगवान् राम के गुण-गान का संकल्प करते हैं। वे कहते हैं—जिनका (जिन भगवान् राम का) यशरूपी हंस संसार में प्रशंसित है और जो (यशरूपी हंस) मुनियों के मनरूपी मानसरोवर में अनुरक्त रहता है और जिनके (जिन भगवान् राम के) अपने नेत्रों के अनुरूप, श्याम-स्वरूप-रूपी अंजन को संत लोग अपने नेत्रों में आँजकर शीघ्र ही त्रिकालदर्शी (भूत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञाता) तथा ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप को स्पर्श करनेवाले हो जाते हैं; मैं उन्हीं भगवान् राम के गुणों का वर्णन करूँगा, सब प्रकार के सुख लाभ करूँगा और मेरे जन्म-जन्म के संचित पाप दूर हो जायँगे।

अलंकार—रूपक।

[दो०] जागित जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छंद।
रामचंद्र की चंद्रिका बरणत हौं बहु छन्द ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जागत = जाग्रत, प्रकाशित। एकरूप = अपरिवर्तित। स्वच्छन्द = आत्म प्रकाश से प्रकाशित।

व्याख्या—जिसकी ज्योति सारे संसार में एकरस (निर्विकार) स्वयमेव प्रकाशित है (प्राकृतिक चन्द्रमा की ज्योति तो सूर्य के आधार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर प्रकाशित होती है जब कि भगवान् राम का तेज स्वयं प्रकाशित है) उन्हीं रामरूपी चन्द्रमा की चन्द्रिका (यश) का वर्णन मैं अनेक छन्दों में करता हूँ।

[रोला छंद]

शुभ सूरज-कुल-कलश नृपति दशरथ भये भूपति।
तिनके सुत भये चारि चतुर चितचारु चारुमति।
रामचन्द्र भुवचंद भरत भारत-भुव-भूषण।
लक्ष्मण अरु शत्रुघ्न दीह दानव-दल-दूषण ॥१०॥

शब्दार्थ—सूरज कुल-कलश = सूर्य कुल में श्रेष्ठ। चितचारु = सुन्दर चित्त वाले, शुद्ध चित्त वाले। चारु मति = सुन्दर बुद्धि वाले। दीह = दीर्घ। दल-दूषण = दल को नष्ट करने वाले।

व्याख्या—शुभ सूर्यकुल में शिरोमणि राजा दशरथ सिंहासनारूढ़ हुए। उनके चार पुत्र हुए जो चतुर, शुद्ध चित्त वाले और सुबुद्धि युक्त थे। रामचन्द्रजी इस पृथ्वी मण्डल के चन्द्रमा थे। भरतजी सम्पूर्ण भारत भूमि के भूषण तुल्य थे। (इसी प्रकार) लक्ष्मण और शत्रुघ्न भयंकर और विशाल दानवदल को नष्ट करनेवाले थे।

अलंकार—रूपक।

[धत्ता छंद]

सरयू सरिता तट नगर बसै अवधनाम यश-धाम धर।
अघओघ-विनाशी सब-पुरवासी अमरलोक मानहुँ नगर ॥११॥

शब्दार्थ—अघ ओघ = पाप-राशि। धर = धरा, पृथ्वी।

व्याख्या—सरयू नदी के तट पर अवध नाम का श्रेष्ठ नगर बसा हुआ था जिसका यश पृथ्वी पर छाया था। उस नगर के निवासी पापों की राशि को नष्ट करनेवाले थे। मानो वह नगर अमरलोक (देवपुरी) ही था।

विश्वामित्र आगमन

[षट्पद]

गाधिराज को पुत्र, साधि सब मित्र शत्रु बल।
दीन कृपानिधान विधान वश्य कीन्हों भुवमंडल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कै मन अपने हाथ, जीति जग इंद्रियगन अति।
तप बल याही देह भये क्षत्रिय ते ऋषिपति।
तेहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति काल अतीतागतनि गुनि।
तहँ अद्भुत गति पैगु धारियो विश्वामित्र पवित्र मुनि ॥१२॥

शब्दार्थ—गाधिराज के पुत्र = विश्वामित्र। साधि = वश में करके। दान-विधान = उदारता का व्यवहार। कृपान-विधान = युद्ध। जग = चंचल। अतीता गतनि = (अतीत + आगत + नि) गत काल और आगत काल। अद्भुत गति = अपूर्व गति से।

व्याख्या—राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने मित्रों के साथ उदारता का व्यवहार करके और शत्रुओं से युद्ध करके (इस प्रकार) दोनों की शक्ति को अपने अधीन करके समस्त पृथ्वी मंडल पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने मन को संयमित करके चंचल इन्द्रियों को भी वश में कर लिया था। तपस्या के बल से उन्होंने इसी शरीर से (बिना दूसरा जन्म ग्रहण किए) क्षत्रिय से ब्रह्मर्षि की पदवी प्राप्त कर ली थी। उस प्रसिद्ध पुरी में पवित्र और बुद्धिमान मुनि विश्वामित्र ने अतीत और भविष्य का ठीक-ठीक हिसाब लगाकर (भगवान् राम को यज्ञ की रक्षा के निमित्त माँगने का ठीक अवसर आ गया है, ऐसा निश्चय करके) अपूर्व गति से प्रवेश किया।

सरयू-वर्णन

[प्रज्झटिका छन्द]

पुनि आये सरयू सरित तीर।
तहँ देखे उज्ज्वल अमल नीर।
नव निरखि निरखि द्युति गति गँभीर।
कछु बरणन लागे सुमति धीर ॥१३॥

शब्दार्थ—अमल—स्वच्छ। गति = चाल, बहाव। गम्भीर = गहराई। सुमति धीर = सुन्दर और धीर मतिवाले (विश्वामित्र)।

व्याख्या—सरल है।

अति निपट कुटिल गति यदपि आप।
तउ देत शुद्ध गति छुवत आप।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कछु आपुन अध अघ गति चलंति ।
फल पतितन कहँ ऊरध फलंति ॥१४॥

शब्दार्थ—आप=स्वयं । आप=जल । अध=नीचे । ऊरध=ऊर्ध्व=ऊँचा ।

व्याख्या—विश्वामित्रजी सरयू नदी का वर्णन करते हैं—यद्यपि यह नदी स्वयं तो बक्र गतिवाली है—(टेढ़ी-मेढ़ी बहती है) किन्तु जो इसका जल स्पर्श करता है उसे शुद्ध गति देती है (पवित्र कर देती है) स्वयं तो नीचे की ओर बहती है (निम्नगा है) किन्तु जो पापी इसमें स्नान करते हैं उन्हें उच्चगति देती है (स्वर्ग भेज देती है)

मदमत्त यदपि मातंग संग ।
अति तदपि पतितपावन तरंग ।
बहु न्हाइ न्हाइ जेहि जल सनेह ।
सब जात स्वर्ग सूकर सुदेह ॥१५॥

शब्दार्थ—मदमत्त=गण्डस्थल से बहते हुए मद के कारण मत्त, (२) मदिरा पान से मस्त । मातंग=(१) हाथी, (२) चांडाल । सनेह=(१) स्नेह-पूर्वक (२ तेल युक्त होकर (तेल लगाकर) । सूकर=(१) अच्छा कर्म करनेवाले । (२) सुअर ।

व्याख्या—यद्यपि इसके जल में मदमत्त मातंग स्नान करते रहते हैं (मदमत्त मातंगों को साथ रखती है) फिर भी इसकी तरंगें पतितों को पवित्र करनेवाली हैं । [ऊपर से यह कथन परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं किन्तु विचार करने पर विरोध का परिहार हो जाता है । 'मातंग' शब्द श्लिष्ट है । मातंग का अर्थ चांडाल लेने पर कथन में विरोध प्रतीत होता है । जिसमें मदिरा पान से मत्त होकर चांडाल स्नान करते हैं । उसकी तरंगें पतित पावनी कैसे हो सकती हैं ? यही विरोध है । किन्तु 'मत्त मातंग' का अर्थ मस्त हाथी लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है] जिसके जल में स्नेहयुक्त होकर बहुत से जीव स्नान करके—यहाँ तक कि 'सूकर' भी—सदेह स्वर्ग चले जाते हैं । [इस कथन में भी विरोधाभास है । 'सनेह' का अर्थ 'तेलयुक्त' और 'सुकर' का अर्थ सुअर लेने पर विरोध प्रतीत होता है । भला तेल लगाकर स्नान करने पर बहुत से जीव यहाँ तक सूअर भी सदेह स्वर्ग कैसे जा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है? किन्तु 'सनेह' का अर्थ 'प्रेम पूर्वक' (श्रद्धा के साथ) और 'सूकर' का अर्थ अच्छे कर्म करने वाले लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है।] श्रद्धा पूर्वक स्नान करने पर बहुत से जीव विशेषतः सुकर्म करने वाले सदेह स्वर्ग चले जाते हैं।

अलंकार—श्लेश पुष्ट विरोधाभास।

गजशाला-वर्णन

[नवपद्दी छंद]

जहँ तहँ लसत महामदमत्त। वर वारन वार न दल दत्त।
अंग-अंग चरचे अति चंदन। मुंडन भुरके देखिय बंदन ॥१६॥

शब्दार्थ—वर = श्रेष्ठ। वारन = हाथी। वार न = देरी नहीं होती। दल दत्त = दल का दलन करने में। बंदन = रोली, सिन्दूर।

व्याख्या—विश्वामित्रजी महाराज दशरथ की गजशाला में बँधे हुए हाथियों का वर्णन करते हैं। गजशाला में जहाँ-तहाँ महा मदमत्त हाथी शोभित हो रहे हैं। ये श्रेष्ठ हाथी ऐसे हैं जिन्हें शत्रु-दलों का दलन करने में देर नहीं लगती। उनके (हाथियों के) अंग-अंग में चन्दन चर्चित है और उनके मुंडों पर बंदन (रोली या सिन्दूर) छिड़का हुआ है।

[दो०] दीह दीह दिग्गजन के, केशव मनहुँ कुमार।
दीन्हें राजा दसरथहिं, दिग्पालन उपहार ॥१७॥

शब्दार्थ—दीह-दीह = दीर्घ-दीर्घ, बड़े-बड़े।

व्याख्या—उन विशाल हाथियों को देखकर ऐसा लगता है मानो दिग्गजों के लड़के हैं (दिग्गज जिन पर पृथ्वी का भार है बहुत विशाल होते होंगे इसलिए उनके कुमार भी साधारण हाथियों की तुलना में पर्याप्त बड़े होते होंगे) और दिग्पालों ने उन्हें भेंट रूप में महाराज दशरथ को प्रदान किया है। (महाराज दशरथ चक्रवर्ती हैं उन्हें दिग्पाल भी भेंट देते हैं। यह व्यक्षित है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाग-वर्णन

[अरिल्ल छंद]

देखि बाग अनुराग उपज्जिय।
बोलत कलध्वनि कोकिल सज्जिय।
राजति रति की सखी सुवेषनि।
मनहुँ वहति मनमथ संदेशनि ॥१८॥

शब्दार्थ—सुवेषनि = सुन्दर वेशवाली। बहति = वहन करती है। मनमथ = कामदेव।

व्याख्या—कवि अयोध्या के उद्यान का वर्णन करता है। वह उद्यान इतना मनोरम है कि उसे देखकर स्वतः अनुराग उत्पन्न हो जाता है। (विरक्त ऋषियों के मन में भी अनुराग जागृत होता है) सुन्दर वेश में सजी हुई कोकिला मधुर ध्वनि से बोल रही है। वह साक्षात् रति की सखी-सी शोभित है और ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों को काम का सन्देश सुना रही है। (कामोद्दीपन में सहायक हो रही है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा

फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत।
मोदत महा मोद उपजावत।
उड़त पराग न, चित्त उड़ावत।
भ्रमत भ्रमत नहिं, जीव भ्रमावत ॥१९॥

शब्दार्थ—फूल = हर्ष। मोदत = महकते हुए। मोद = आनन्द। पराग = पुष्पराग। उड़ावत = उड़ते हैं।

व्याख्या—अयोध्या के उद्यान में वृक्ष पुष्पित होकर लोगों का हर्ष-वर्द्धन करते हैं। सुगन्धि बिखेरते हैं और लोगों में आनन्द उत्पन्न करते हैं। यह पुष्प-रज नहीं उड़ रही है वरन् लोगों के चित्त हैं जो सौंदर्य देखकर चंचल हो रहे हैं और इधर-उधर उड़ रहे हैं। यह भौंरे नहीं हैं जो इधर-उधर गुंजार कर रहे हैं वरन् लोगों के जी (हृदय) हैं जो (उद्यान की रमणीयता देखकर) भ्रमित हो रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकार—शुद्धापह्नुति ।

[पादाकुलक छंद]

शुभ सर शोभै । मुनिमन लोभै ।
सरसिज फूले । अलि रस भूले ।।
जलचर डोलैं । बहू खग बोलैं ।
बरणि न जाहीं । उर अरुझाहीं ।।२०।।

शब्दार्थ—सर = तालाब । सरसिज = कमल । अलि = भौंरे । रस = मकरन्द । भूले = आत्मविस्मृत । उरझाहीं = हृदय आकर्षित कर लेते हैं ।

व्याख्या—उद्यान में ही पवित्र जल से पूर्ण तालाब शोभित है जो मुनियों के मन को मुग्ध कर रहा है । उसमें कमल पुष्पित हैं । भौंरे मकरन्द पान करके आत्मविस्मृत हो रहे हैं । जल के जीव सरोवर में इधर-उधर डोल रहे हैं । अनेक प्रकार के पक्षी शब्द कर रहे हैं । इन सबका वर्णन नहीं किया जाता क्योंकि वे मन को उलझा लेते हैं ।

[हाकलिक छंद]

संग लिये ऋषि शिष्यन घने । पावक से तपतेजनि सने ।
देखत सरिता उपवन भले । देखन अवधपुरी कहं चले ।।२१।।

शब्दार्थ—घने = बहुत से । सने = युक्त । भले = भली प्रकार ।

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र साथ में अनेक शिष्यों को लिए हुए, जो तपश्चर्या के तेज से युक्त अग्नि से प्रतीत हो रहे थे, नदियों और उद्यानों को भली प्रकार देखते हुए अयोध्यापुरी को देखने के लिए आगे बढ़े ।

अवधपुरी-वर्णन

[मधुभार छंद]

ऊँचे अवास । बहु ध्वज प्रकाश ।
सोभा बिलास । सोभे आकास ।।२२।।

शब्दार्थ—अवास = आवास, गृह । प्रकाश = प्रकाशित, शोभित ।

व्याख्या—अयोध्या के गृह ऊँचे-ऊँचे हैं । उन पर अनेक प्रकार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पताकायें शोभित हैं। उनकी शोभा विलसित हो रही है। उनकी रमणीयता सुहावनी लग रही है।

[आभीर छंद]

अति सुंदर अति साधु। थिर न रहत पल आधु।
परम तपोमय मानि। दंड धारिनी जानि ॥२३॥

शब्दार्थ—साधु = (१) सीधा (२) साधु आचरण करने वाला। थिर=स्थिर। आधु = अर्द्ध।

व्याख्या—पताकायें अत्यन्त सुन्दर और साधु (सीधी) हैं। वे एक पल के लिए भी स्थिर नहीं रहतीं। (सामान्यतः इस कथन में विरोध प्रतीत हो रहा है। साधु में स्थिरता होनी चाहिए किन्तु यहाँ इसके विपरीत वर्णन है। "साधु" का अर्थ सीधी (लम्बवत्) लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है (वे परम तपस्विनी) सीधी खड़ी रहने के कारण (और दण्ड-धारिणी हैं।) दण्ड धारण करना संन्यासियों का लक्षण है। ऐसे संन्यासी दण्डी कहलाते हैं। यहाँ बाँस के दण्डों में लगी होने के कारण पताकाओं को दण्ड धारिणी कहा गया है।)

अलंकार—विरोधाभास।

[हरिगीत छंद]

शुभ द्रोणगिरिगण शिखर ऊपर उदित औषधि सी गनौ।
बहु वायु वश वारिद बहोरहि अरुझि दामिनि द्युति मनौ ॥
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली।
यह किधौं सरित सुरेश मेरी करी दिवि खेलति भली ॥२४॥

शब्दार्थ—औषध = जड़ी-बूटियाँ। वारिद = बादल। बहोरहि = लौटा रही है। सरित=कौशिकी गंगा। सुदेश = सुन्दर। दिवि= आकाश। खेलति = क्रीड़ा कर रही है।

व्याख्या—पताकाओं को देखकर ऋषि विश्वामित्र अनेक प्रकार की कल्पनायें कर रहे हैं। यह पताकायें क्या हैं मानो पवित्र द्रोणाचल के शिखरों पर प्रकाशमान होती हुई अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ हैं या अयोध्या के ऊपर से यात्रा करते समय बादलों की दामिनियों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्युति इन पताकादण्डों में उलझ गई थी जिसे मानो वायु (बादलों की वशवर्तिनी होने के कारण) उन्हें पुनः लौटा रही है। अथवा यह रघुवंशियों के प्रताप की अग्नि है जो (पृथ्वी में न समा सकने के कारण) देवपुरी की ओर जा रही है। अथवा यह मेरी ही बनाई हुई गंगा (कौशिकी गंगा) है जो आकाश में क्रीड़ा कर रही है। (एक ही रेखा में लहराती हुई अनेक पताकायें नीचे से देखने पर जल-तरंगों-सी प्रतीत हो रही हैं) इस वर्णन से कवि अयोध्या के नगरों का अत्यन्त ऊँचा होना व्यंजित कर रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, सन्देह, सम्बन्धातिशयोक्ति।

[दो०] जीति जीति कीरति लई, शत्रुन की बहु भाँति।
पुर पर बाँधी सोभिजै, मानो तिनकी पाँति ॥२५॥

शब्दार्थ—शोभिजै = शोभित हो रही है।

व्याख्या—उन्हीं पताकाओं को लेकर कवि नवीन उत्प्रेक्षा करता हैं। प्रबल शक्तिशाली रघुवंशी राजाओं ने अपने शत्रुओं को पराजित करके उनकी कीर्ति हर ली थी, यह पताकायें क्या है? मानो उन्हीं पराजित राजाओं की कीर्तियाँ हैं जो रघुवंशियों के द्वारा अयोध्या के ऊँचे आवासों पर पंक्तिबद्ध होकर शोभित हो रही हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[त्रिभंगी छंद]

सम सब धर सोभैं, मुनि मन लोभैं,
रिपुगण छोभैं, देखि सबै।
बहु दंदुभि बाजैं, जनु घन गाजैं,
दिग्गजलाजैं, सुनत जबै ॥
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं, विधन न बढ़हीं,
जै जस मढ़हीं, सकल दिशा।
सबई सब विधि छम, बसत यथाक्रम,
देवपुरी सम दिवस निशा ॥२६॥

शब्दार्थ—छोभैं = क्षुब्ध होते हैं। श्रुति = वेद। मढ़हीं = छा जाते हैं। छम = समर्थ। यथाक्रम = क्रमबद्ध रूप में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—कवि अयोध्या के आवासों का वर्णन कर रहा है। अयोध्या के सभी गृह समान रूप से शोभित हैं। उनकी शोभा देखकर मुनियों का मन भी मुग्ध हो जाता है। साथ ही उन्हें देखकर शत्रुओं को ईर्ष्या (क्षोभ) होती है। अयोध्या नगरी में जहाँ-तहाँ दुन्दुभियाँ बजती रहती हैं ऐसा लगता है मानो घन गर्जन कर रहे हों। दुन्दुभियों की ध्वनि सुनकर दिशाओं के हाथी लज्जित हो जाते हैं (क्योंकि वे उस प्रकार की ध्वनि नहीं कर सकते) जहाँ-तहाँ ब्राह्मण वेद-पाठ करते रहते हैं। वेद के मंगल पाठ के परिणामस्वरूप नगर में विघ्न (उपद्रव आदि) नहीं बढ़ते। नगरवासियों की जय जयकार तथा यश-गान से सभी दिशायें मंडित हैं। इस नगरी में सभी लोग सब प्रकार से समर्थ हैं। सब लोग अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार क्रमबद्ध रूप से निवास करते हैं। इस प्रकार यह नगरी रात-दिन (बराबर) देवपुरी के समान शोभायुक्त रही है।

[दंडकला छंद]

कविकुल, विद्याधर, सकुल कलाधर,
राजराज वर वेष बने।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक,
सूर सहायक कौन गने।
सेनापति, बुधजन, मंगल, गुरु गण,
धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु शुभ मनसाकर करुणामय अरु,
सुरतरंगिनी सोभसनी ॥२७॥

शब्दार्थ—कविकुल = (१) शुक्र (२) कवि लोग। विद्याधर = (१) देवताओं की एक जाति (२) विद्वान्। कलाधर = (१) चन्द्रमा (२) कलाकार। राजराज = (१) कुबेर (२) बड़े-बड़े राजा। गणपति = (१) गणेश (२) गणों के पति। पशुपति = (१) महादेव (२) पशुशालाओं के अधिकारी। सूर = (१) सूर्य (२) शूरवीर। सेनापति = (१) स्वामिकार्तिकेय (२) सेनाध्यक्ष। बुधजन = (१) बुध नक्षत्र (२) पंडित लोग। मंगल = (१) मंगल नक्षत्र (२) मंगल पाठ करने वाले ब्राह्मण। गुरु = (१) बृहस्पति (२) शिक्षक लोग। धर्मराज =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) यम (२) धर्माध्यक्ष। मनसाकर=(१) कल्पवृक्ष (२) मनोवांछित दान देनेवाले। सुरतरंगिनी=(१) आकाश गंगा (२) सरयू। करुणामय=(१) विष्णु (२) दयालु।

व्याख्या—छब्बीसवें दोहे में कवि ने अयोध्यापुरी को 'देवपुरी सम' कहा था। इसीलिए इस छन्द में मुद्रालंकार के माध्यम से अयोध्या का वर्णन करते हुए वह उन सब वस्तुओं का नामोल्लेख कर देता है जो देवपुरी में पाई जाती हैं। इस देवनगरी तुल्य अयोध्या में वे सब वस्तुएँ सुलभ हैं जिनके लिए देवपुरी प्रसिद्ध है। यदि देवपुरी में कवि (शुक्र) हैं तो अयोध्या में अनेक कवि हैं। देवपुरी में 'विद्याधर' हैं तो अयोध्या में विद्याओं के जानकार हैं। वहाँ कलाधर (चन्द्रमा) हैं तो यहाँ अनेक कलाओं के मर्मज्ञ हैं। वहाँ राजराज (कुबेर) हैं तो यहाँ श्रेष्ठ राजा लोग हैं। वहाँ सुख देनेवाले गणपति (गणेश) हैं तो यहाँ प्रजाओं को सुख देनेवाले गणों के पति हैं। वहाँ पशुपति (महादेव) हैं तो यहाँ सुयोग्य पशु-शालाध्यक्ष हैं। वहाँ सूर (सूर्य) हैं तो यहाँ अगणित सहायता करनेवाले शूरवीर हैं। वहाँ सेनापति (स्वामिकार्तिकेय) हैं तो यहाँ अनेक सेनाध्यक्ष हैं। वहाँ 'बुध' (बुद्ध नक्षत्र) हैं तो यहाँ पंडित लोग हैं। वहाँ 'मंगल-गुरु' (मंगल और बृहस्पति) हैं तो यहाँ मंगल पाठ करनेवाले ब्राह्मण तथा शिक्षक हैं। वहाँ धर्मराज (यम) हैं तो यहाँ धर्माध्यक्ष हैं जो अत्यधिक बुद्धिमान हैं। वहाँ पवित्र मनसाकर (कल्पवृक्ष) है तो यहाँ भी मनोवांछित दान देनेवाले दानी लोग हैं। वहाँ करुणामय (विष्णु) और देव गंगा हैं तो यहाँ भी बड़े-बड़े कृपालु लोग हैं और सरयू नदी है। इस प्रकार यह अयोध्यापुरी सब प्रकार से देवपुरी के समान है।

अलंकार—मुद्रा।

[हीरक छंद]

पंडितगण मंडितगुण, दंडित-मति देखिए।
क्षत्रिय वर धर्म-प्रवर क्रुद्ध समर लेखिए।
वैश्य सहित-सत्य रहित पाप प्रगट मानिए।
शूद्र, सकति, विप्र भगति, जीव जगत जानिए ॥२८॥

शब्दार्थ—मंडित गुण = गुणों से भूषित। दंडित-मति=संयमित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुद्धि। सकति = (शाक्तिक) शक्ति के उपासक। जीव = जी, हृदय, मन। जगत = जगती है, जागृत रहती है।

व्याख्या—अयोध्या के निवासी पंडित लोग गुणों से भूषित हैं और उनकी बुधि संयमित है। क्षत्रिय लोग धर्मनिष्ठ हैं। वे केवल युद्ध में ही क्रोध दिखाते हैं। वैश्य लोग निष्पाप हैं और (अपने व्यवहारों में) सत्य का पालन करते हैं। शूद्र, शक्ति की उपासना करते हैं और उनके हृदय में विप्रों के प्रति भक्ति-भावना जागृत रहती है।

[सिंह विलोकित छंद]

अति मुनि तन मन तहँ मोहि रह्यो।
कछु बुधि बल वचन न जाइ कह्यो।
पशु पक्षि नारि नर निरखि तबै।
दिन रामचंद्र गुण गनत सबै ॥२९॥

व्याख्या—अयोध्या नगरी और वहाँ के निवासियों को देखकर मुनि विश्वामित्र का मन मुग्ध हो गया। (मन के मुग्ध होने से) उनका शरीर भी शिथिल पड़ गया। नगरी की प्रशंसा करने में उनका बुद्धि-बल कार्य नहीं कर पाया। उन्होंने देखा कि अयोध्या के नर-नारी, पशु-पक्षी सभी प्रतिदिन (निरन्तर) भगवान् राम के गुणों का गान करते रहते हैं।

[मरहटठा छंद]

अति उच्च अगारनि बनी पगारनि जनु चिंतामणि नारि।
बहु सत मख धूमनि धूपति अंगनि हरि की सी अनुहारि॥
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रनि केशवदास निहारि।
जनु विश्वरूप को अमल आरसी रची विरंचि विचारि ॥३०॥

शब्दार्थ—अगारिन = आगार, गृह (बहुवचन रूप में) पगारनि = चहारदीवारी। नारि = खानि। बहुशत = सैकड़ों। अंगन = आँगन, प्राङ्गण। चित्री = चित्रित। विश्वरूप = विविध रूपात्मक विश्व।

व्याख्या—कवि अयोध्या को देखकर उसे अनेक रूपों में कल्पित करता है। अयोध्या के ऊँचे-ऊँचे गृह हैं। उनके चारों ओर रत्नजटित परकोटे हैं। ऐसा लगता है कि यह पगारें (चहार-दीवारियाँ) चिन्तामणियों (एक विशेष रत्न) की खान हैं। अयोध्या के गृहों के सैकड़ों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आँगन यज्ञ के धुएँ से श्याम वर्ण हो रहे हैं, इस प्रकार वे श्याम वर्ण विष्णु के अनुरूप बन गये हैं। अनेक आवास विविध प्रकार के विचित्र चित्रों से चित्रित हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि ये गृह विविध रूपात्मक विश्व को प्रतिम्बित करने के लिए दर्पण स्वरूप हैं। [गृहों में इतने प्रकार के चित्र चित्रित हैं कि सारा संसार ही चित्र रूप में वहाँ साकार है इसीलिए कवि कल्पना करता है कि मानो वे गृह समस्त विश्व को प्रतिबिम्बित करने के लिए दर्पण स्वरूप हैं।]

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सो०] जग यशवंत विशाल, राजा दशरथ की पुरी।
चंद्र सहित सब काल, भालथली जनु ईश की॥३१॥

शब्दार्थ—चन्द्र = (१) रामचन्द्र, (२) चन्द्रमा।

व्याख्या—महाराज दशरथ की नगरी (अयोध्या) संसार में बड़ी यशस्विनी है। ऐसा लगता है कि वह महादेव की भाल-स्थली है क्योंकि जैसे महादेवजी के भाल पर द्वितीया का चन्द्रमा सदैव शोभित रहता है वैसे ही अयोध्या नगरी भी सदैव चन्द्र से युक्त (रामचन्द्रजी के होने के कारण) रहती है।

अलंकार—श्लेष, उत्प्रेक्षा।

[कुंडलिया]

पंडित अति सिगरी पुरी, मनहु गिरा गति गूढ़।
सिंहन युत जनु चंडिका, मोहति मूढ़ अमूढ़॥
मोहति मूढ़ अमूढ़, देव सँगऽदिति सी सोहै।
सब शृंगार सदेह, मनो रतिमन्मथ मोहै॥
सब शृंगार सदेह, सकल सुख सुखमा मंडित।
मनो शची विधि रची विविध विधि वरणत पंडित॥३२॥

शब्दार्थ—सिगरी = सम्पूर्ण। गिरा—सरस्वती। सिंहन युत = सिंह स्वरूप शक्तिशाली क्षत्रियों से युक्त। शची = इन्द्राणी।

व्याख्या—कवि, अयोध्यानगरी को, वहाँ के निवासियों के गुण-शील स्वभाव को ध्यान में रखकर विविध देवियों के रूप में कल्पित करता है। सारी अयोध्यानगरी (विद्वान् पंडितों से युक्त होने के कारण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत्यंत विदुषी है, ऐसा लगता है कि वह रहस्यमयी गतिवाली सरस्वती है। अयोध्यापुरी में सिंह-स्वरूप वीर क्षत्रिय निवास करते हैं। इस आधार पर कवि कल्पना करता है कि मानो यह नगरी सिंह पर आरूढ़ साक्षात् चंडिका (चंडीदेवी) है जो ज्ञानियों और अज्ञानियों दोनों को मुग्ध कर रही है। (ज्ञानी लोग उसकी वास्तविक शक्ति को जानकर श्रद्धावनत होकर मुग्ध होते हैं और मूर्ख उसके प्रचंड रूप को देखकर भय वश मुग्ध होते हैं)। अयोध्या के निवासी अपने पवित्र आचरण से देवस्वरूप हैं और वे अयोध्या के प्रति माता जैसी ममता एवं निष्ठा रखते हैं। इस प्रकार देवतुल्य पुत्रों को धारण किये हुए यह नगरी ठीक वैसी ही शोभा प्राप्त कर रही है जैसी शोभा देवताओं के साथ उनकी माता अदिति की होती है। यह नगरी विविध प्रकार के अलंकारों से अलंकृत साक्षात् रति-रूप है जो मानो कामदेव को (अपने शासकों को) मुग्ध करने के लिए सब प्रकार के शृङ्गारों से युक्त होकर प्रकट हुई है। अथवा सभी प्रकार के सुख-सौन्दर्य से शोभित यह नगरी मानो ब्रह्मा द्वारा रचित साक्षात् इन्द्राणी है जिसकी प्रशंसा पण्डित लोग अनेक प्रकार से करते हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[काव्य छंद]

मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम-हुताशन-धूम नगर एकै मलिनाइय॥
दुर्गति दुर्गन ही जो, कुटिलगति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रगट कविकुल के जी में॥३३॥

शब्दार्थ—मूलन = जड़ों। अधोगति = नीचे या पृथ्वी के भीतर प्रवेश; नीच गति। हुताशन = अग्नि। मलीनाइय = मलीनता; कालुष्य। दुर्गति = प्रवेश में कठिनता; बुरी गति। कुटिल गति = वक्र चाल; हृदय की कुटिलता। श्रीफल = लक्ष्मी का वैभव; कुच (बेल का फल)।

व्याख्या—कवि अयोध्या की अन्य विशेषताओं का वर्णन करता है—

अयोध्या में किसी की अधोगति नहीं होती, यदि किसी की अधोगति (नीचे की ओर भूमि में प्रवेश) होती है तो वृक्षों की जड़ों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही। नगर में किसी प्रकार की मलिनता नहीं दिखाई पड़ती, यदि कहीं मलीनता है (श्यामता) है तो होमाग्नि के धूम में ही। यहाँ (अयोध्या में) किसी की दुर्गति नहीं होती यदि कहीं दुर्गति में है (कठिनाई से गमन होता) तो किला में ही। यहाँ (अयोध्या) किसी की कुटिल गति नहीं है यदि किसी की कुटिल गति (टेढ़ी चाल) है तो केवल नदियों की ही। यहाँ किसी को श्रीफल (वैभव-विलास) की कामना नहीं होती (क्योंकि सभी के पास प्रभूत धनराशि है) यदि किसी के मन में श्रीफल की अभिलाषा होती है तो वे केवल कवि लोग हैं अर्थात् कवि ही कभी-कभी काव्य-रचना के प्रसंग में श्रीफल (बेल के फल) को उपमान रूप में ग्रहण कर लेते हैं।

अलंकार—परिसंख्या।

[दो०] अति चंचल जहँ चलदलै, बिधवा बनी न नारि।
मन मोह्यौ ऋषिराज को, अद्भुत नगर निहारि॥३४॥

शब्दार्थ—चलदल = पीपल का पत्ता। बिधवा = (१) पतिहीना (२) धवा नामक पौधे से हीन। बनी = वनस्थली।

व्याख्या—कवि अयोध्या की आश्चर्य-चकित कर देने वाली विशेषता का उल्लेख करता है।

अयोध्या में केवल पीपल के पत्ते ही चंचल हैं (अन्य कोई व्यक्ति चंचल स्वभाव का नहीं है), केवल वनस्थली ही धवा नामक पौधे से हीन है; नारियाँ विधवा नहीं होतीं (पुण्य भूमि होने के कारण स्त्रियाँ सदैव सौभाग्यवती रहती हैं) ऐसी अद्भुत नगरी को देखकर मुनि विश्वामित्र का मन मुग्ध हो गया।

अलंकार—परिसंख्या।

[सो०] नागर नगर अपार, महामोहतम मित्र से।
तृष्णालता कुठार, लोभसमुद्र अगस्त से॥३५॥

शब्दार्थ—नागर = चतुर, बुद्धिमान। तम = अन्धकार। मित्र = सूर्य।

व्याख्या—अयोध्या नगरी के अनेक बुद्धिमान नागरिक महामोह रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान हैं; तृष्णारूपी बेलि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को समूल नष्ट करने के लिए कुठार के समान हैं और लोभरूपी समुद्र को सोखने के लिए अगस्त के समान हैं। (तात्पर्य यह कि अयोध्या के नागरिकों को मोह; तृष्णा और लोभ नहीं सताते)।

अलंकार—रूपक।

[दो०] विश्वामित्र पवित्र मुनि, केशव बुद्धि उदार।
देखत शोभा नगर की, गए राजदरबार ॥३६॥

शब्दार्थ—पवित्र मुनि=पवित्र मन वाले मुनि। बुद्धि-उदार=उदार मति वाले।

शोभित बैठे तेहि सभा, सात द्वीप के भूप।
तहँ राजा दशरथ लसै, देव देव अनुरूप ॥३७॥

शब्दार्थ—देवदेव=देवताओं के देवता, इन्द्र।

देखि तिन्हैं तव दूर ते, गुदरानो प्रतिहार।
आये विश्वामित्रजू, जनु दूजो करतार ॥३८॥

शब्दार्थ—गुदरानो=निवेदन किया। प्रतिहार—चोबदार। करतार=ब्रह्मा।

उठि दौरे नृप सुनत ही, जाइ गहे तब पाइ।
लै आये भीतर भवन, ज्यौं सुरगुरु सुरराइ ॥३९॥

शब्दार्थ—ज्यौं सुरगुरु सुरराइ=जैसे इन्द्र देवगुरु बृहस्पति को आदर पूर्वक ले जाते हैं।

नोट—उपर्युक्त ३६, ३७, ३८, और ३९ दोहों का अर्थ सरल है।

[सो०] सभा मध्य बैताल, ताहि समय सो पढ़ि उठ्यो।
केशव बुद्धि विशाल, सुंदर सूरो भूप सो ॥४०॥

शब्दार्थ—बैताल=भाट, बन्दीजन। पढ़ि उठो=बोल पड़ा। बुद्धि-विशाल=अत्यधिक बुद्धिमान। सूरो=शूरवीर।

व्याख्या—जिस समय राजा दशरथ ऋषि-श्रेष्ठ विश्वामित्र को लेकर दरबार में प्रविष्ट हुए उसी समय बुद्धिमान चारण जो सुन्दरता और वीरता में राजा के ही समान था, सभा के बीच में बोल उठा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[घनाक्षरी]

बैताल—विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस,
विविध विबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दिपति अति सातौं दीप दीपियतु,
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा की बल है।
सागर उजागर की बहु वाहिनी को पति,
छनदानप्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ,
भगीरथपथगामी गंगा कैसो जल है ॥४१॥

शब्दार्थ—विमानीकृत = विमान (१) (वाहन) किये हुए हैं। (२) मानरहित किये हुये हैं। राजहंस = (१) हंस पक्षी (२) राजाओं का चित्त। विबुध = (१) देवता (२) पंडित। दीपति = दीप्ति। दिपति = प्रकाशित होती है। दीपियतु = प्रकाशित हो जाते हैं। सुदक्षिणा = (१) दिलीप की रानी (२) सुन्दर दक्षिणा। उजागर = प्रसिद्ध। बहु वाहिनी = १) बहुत सी नदियाँ (२) विशाल सेना। छनदान प्रिय = (१) आनन्द देना प्रिय है जिसको; क्षणदा (रात्रि) नहीं है प्रिय जिसको (२) प्रतिक्षण दान देना प्रिय है जिसको। भगीरथ पथगामी = भगीरथ द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर प्रवाहित होनेवाला। (२) भगीरथ द्वारा स्थापित मर्यादा का अनुसरण करनेवाला।

व्याख्या—महाराजा दशरथ ब्रह्मा के समान हैं क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्मा राजहंसों के विमान पर आरूढ़ होते हैं वैसे ही राजा दशरथ भी राजाओं के चित्त पर चढ़े रहते हैं अथवा श्रेष्ठ राजाओं का भी अपनी शक्ति से मान-मर्दन कर देते हैं। राजा दशरथ मेरु पर्वत के सदृश दृढ़ (अविचल मति वाले) हैं क्योंकि जिस प्रकार मेरु पर्वत अनेक देवताओं से युक्त है (उस पर देवता निवास करते हैं) उसी प्रकार महाराज दशरथ की सभा में भी अनेक पण्डित विद्यमान रहते हैं। महाराज की दीप्ति (कान्ति) से सातों द्वीप प्रकाशित हैं और वे दूसरे दिलीप के समान हैं क्योंकि जैसे महाराज दिलीप को अपनी रानी सुदक्षिणा की निष्ठा-भक्ति और पातिव्रत का बल प्राप्त था उसी प्रकार महाराज दशरथ को भी सत्पात्रों को दी जानेवाली दक्षिणा का बल प्राप्त है। महाराज दशरथ समुद्र के समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं क्योंकि जैसे समुद्र अनेक नदियों का पति है उसी प्रकार महाराज भी विशाल सेना के स्वामी हैं। अथवा महाराज विमल सूर्य हैं क्योंकि जैसे सूर्य को आनन्द देना प्रिय है (या रात्रि नहीं प्रिय है) वैसे ही इन्हें भी प्रति-क्षण दान देना प्रिय है। महाराज दशरथ गंगा-जल के समान हैं क्योंकि जिस प्रकार गंगा ने भगीरथ द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुसरण किया था उसी प्रकार महाराज भी भगीरथ द्वारा स्थापित कुल-मर्यादा का पूरा अनुसरण करते हैं। इस प्रकार सभी दृष्टियों से शक्तियुक्त महाराज दशरथ शोभित हो रहे हैं।

अलंकार—'उल्लेख' प्रधान। उपमा, रूपक, सन्देह और श्लेष अंगीभूत।

[दो०] यद्यपि ईंधन जरि गये अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के पल-पल बढ़त प्रकास ॥४२॥

शब्दार्थ—ईंधन = जलाने की लकड़ी।

व्याख्या—कवि केशवदास कहते हैं कि महाराज दशरथ के प्रताप-रूपी अग्नि में उनके शत्रुगण ईंधन के समान जलकर भस्म हो गये हैं फिर भी उनकी प्रतापाग्नि का प्रकाश क्षण-प्रति-क्षण बढ़ता जाता है। [सामान्यतः ईंधन-वृद्धि के साथ अग्नि-ज्वाला बढ़ती है। यहाँ शत्रुरूपी ईंधन के अभाव में भी प्रतापरूपी अग्नि का प्रकाश प्रतिक्षण बढ़ता दिखाया गया है। इस प्रकार कथन में चमत्कार आ गया है।]

अलंकार—विभावना, रूपक।

[तोमर छंद]

बहु भाँति पूजि सुराइ। कर जोरिकै परे पाइ ॥
हँसिके कह्यो ऋषिमित्र। अब बैठ राजपवित्र ॥४३॥

शब्दार्थ—सुराय = राजा दशरथ। ऋषि-मित्र = ऋषियों में सूर्य के समान।

व्याख्या—सरल है।

मुनि—सुनु दान-मानस-हंस। रघुवंश के अवतंस ॥
मन माँह जो अति नेहु। इकु बस्तु माँगहिं, देहु ॥४४॥

शब्दार्थ—दान-मानस-हंस = दानरूपी मानसरोवर के हंस।

व्याख्या—सरल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[बोधक छंद]

राम गये जब तें बन माहीं। राक्षस (राकस) वैर करैं बहुधाहीं॥
राजकुमार हमैं नृप दीजै। तौ परिपूण यज्ञ करीजै॥४५॥

शब्दार्थ—राम = तात्पर्य परशुराम से है। राकस = राक्षस।
व्याख्या—सरल है।

[तोटक छंद]

यह बात सुनी नृप नाथ जबै।
शर से लगे आखर चित्त सबै।
मुख ते कछु बात न जाय कही।
अपराध बिना ऋषि देह दही॥४६॥

शब्दार्थ—सर-से = बाण के समान। आखर = अक्षर।
व्याख्या—सरल है।

राजा—अति कोमल केशव बालकता।
बहु दुष्कर राक्षस-घालकता।
हमहीं चलिहैं ऋषि संग अबै।
सजि सैन चलै चतुरंग सबै॥४७॥

शब्दार्थ—बालकता = लड़कपन। राकस-घालकता = राक्षस-बध।
व्याख्या—महाराज दशरथ ऋषि-श्रेष्ठ विश्वामित्र से कहते हैं—बालक राम अभी अत्यन्त सुकुमार हैं। राक्षसों का बध अत्यन्त कठिन कार्य है (अर्थात् बालक राम के द्वारा राक्षसों का बध सम्भव नहीं है) इसलिए मैं स्वयं अभी साथ में चतुरंगिणी सेना लेकर (राक्षसों के बध के लिए) आपके साथ चलूँगा।

[षट्पद]

विश्वामित्र-निज हाथन हठि हरषि हनत हरणि रिपु-नंदन।
तिन न करत संहार कहा मदमत्त गयंदन।
जिन बेधत सुख लक्ष लक्ष नृपकुँवर कुँवरमनि।
तिन बाणनि बाराहे बाघ मारत नहिं सिंहनि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नृपनाथनाथ दशरथ सुनिय, अकथ कथा जनि मानिए।
मृगराजराजकुलकलश अब बालक वृद्ध न जानिए ॥४८॥

शब्दार्थ—हरिनी-रिपु-नन्दन = हरिनी-रिपु = सिंह, हरिनी-रिपु-नन्दन = सिंह का बच्चा। सुख = सुखपूर्वक। कुँवरमनि = राजकुमारों में श्रेष्ठ। लक्ष = लाखों। लक्ष = लक्ष्य। बाराह = बनैला सुअर। मृग-राज = सिंह। राजकुल-कलश = राज-परिवार में श्रेष्ठ।

व्याख्या—विश्वामित्र राजा दशरथ के हृदय में राजकुमार राम के बल-पौरुष के प्रति विश्वास उत्पन्न करने लिए कहते हैं—हे राजन्! जिन हाथों से सिंह-शावक सहज ही किसी मृगी का घात करता है क्या उन्हीं हाथों से मदमत्त का संहार नहीं करता? जिन बाणों से कोई श्रेष्ठ राजकुमार सुखपूर्वक (अनायास) लक्ष्यों का वेध करता है क्या उन्हीं बाणों से बनैले सुअर, बाघ और सिंह का शिकार नहीं करता। (इसलिए) हे राजाओं में श्रेष्ठ महाराज दशरथ! मेरे कथन को अकथ्य (अविश्वसनीय) न समझिये। सिंह-शावक और राजकुल के तेजस्वी बालक को बालक या वृद्ध नहीं मानना चाहिए। (अर्थात् बालक या वृद्ध होते हुए भी वह शत्रु-संहार करने में समर्थ होता है।)

[मोदक छंद]

राजा—मैं जो कह्यो ऋषि देन, सो लीजिय।
काज करो, हठ भूलि न कीजिय॥
प्राण दिये, धन जाहिं दिये सब।
केशव राम न जाहिं दिये अब ॥४९॥

अत्यन्त सरल है।

ऋषि—राम तज्यो धान धाम तज्यो सब।
नारि तजी, सुत सोच तज्यो तब॥
आपनपौ जो तज्यौ जगबंद है।
सत्य न एक तज्यौ हरिचंद है ॥५०॥

शब्दार्थ—आपनपौ = अपनापन, ममत्व। जगबन्द = संसार के द्वारा वन्द्य (अर्थात् जिनकी संसार वन्दना करता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र महाराज दशरथ के हृदय में सत्यनिष्ठा उत्पन्न करने के लिए उनके पूर्वज महाराज हरिश्चन्द्र की सत्य-पालन-परम्परा का उल्लेख करते हैं—

राजा हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य, धन-धाम सब कुछ त्याग दिया। यहाँ तक कि स्त्री और पुत्र की चिन्ता भी नहीं की (उन्हें भी त्याग दिया) जिसे सारा संसार वंदनीय मानता है उस अपनेपन को भी (स्वातन्त्र्य-भाव को भी) उन्होंने त्याग दिया। किन्तु उन्होंने केवल सत्य को नहीं त्यागा।

[दो०] जान्यो विश्वामित्र के, कोप बढ़ायो उर आइ।
राजा दशरथ सों कह्यो, वचन वशिष्ठ बनाइ ॥५१॥

स्पष्ट है।

[षट्पद]

वसिष्ठ—इनहीं के तपतेज यज्ञ की रक्षा करिहैं।
इनहीं के तपतेज सकल राक्षस बल हरिहैं।
इनहीं के तपतेज तेज बढ़िहै तन तूरन। शीघ्र
इनहीं के तपतेज होहिंगे मंगल पूरन।
कहि केशव जैयुत आइहैं इनहीं के तपतेज घर। तपस्या के बल से
नृप वेगि राम लक्ष्मण दोऊ सौपो विश्वामित्र कर ॥५२॥

शब्दार्थ—तपतेज = तपस्या के बल से। तूरन = तूर्ण = शीघ्र।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[दो०] नृप पै वचन वसिष्ठ को, कैसे मेटयो जाइ।
सौप्यों विश्वामित्र कर, रामचंद्र अकुलाइ ॥५३॥

सरल है।

[पंकजवाटिका छंद]

राम चलत नृप के युग लोचन।
वारिभरित भै वारिदरोचन। लाल
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गै भीतर भौनहिं ॥५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सजि मौनहिं = मौन साधकर।

व्याख्या—राजकुमार राम के प्रस्थान करते समय महाराज दशरथ के दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। उस समय वे जलयुक्त लाल मेघ-सदृश प्रतीत होते थे। (रोने से आँखें लाल हो गई थीं और उनमें अश्रु छलक आए थे) वे ऋषि विश्वामित्र के चरण छूकर मौन भाव से (गहन दुःख के कारण वे कुछ भी न बोल सके) उठकर महल के भीतर चले गये।

[चामर छंद]

वेद मंत्र तंत्र शोधि, अस्त्र-सस्त्र दै भले।
रामचंद्र लक्ष्मणै सो बिप्र छिप्र लै चले।
लोभ छोह मोह गर्व काम कामना हुयी।
नींद, भूख, प्यास, त्रास, वासना सबै गयी ॥५५॥

शब्दार्थ—अस्त्र = दूर से फेंके जाने वाले हथियार। शस्त्र = हाथ से पकड़कर प्रहार करने वाले हथियार। वेद-मन्त्र-तन्त्र-शोधि = वेद-मन्त्रों एवं तान्त्रिक विधियों से पवित्र करके। छिप्र = शीघ्र। हुई = नष्ट हो गई।

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र ने वेद-मन्त्रों तथा तान्त्रिक विधियों से अस्त्र-शस्त्रों को अभिमन्त्रित करके राम-लक्ष्मण को दिया और उन्हें साथ लेकर शीघ्र प्रस्थान किया। [ऋषि ने राम-लक्ष्मण को 'बला' और 'अतिबला' विद्याओं की शिक्षा भी दी] इन विद्याओं के प्रभाव से उनकी 'लोभ', 'क्रोध', 'मोह', 'गर्व' और 'काम-वासना' आदि प्रवृत्तियाँ शमित हो गईं। साथ ही 'नींद', 'भूख', 'प्यास', 'त्रास' तथा अन्य विषय-वासनायें भी नष्ट हो गईं। [इस प्रकार शरीर और मन दोनों को आकर्षित करने वाली वासनाओं पर विजय प्राप्त करके भगवान् राम ने राक्षसों का संहार करने के लिए मुनि विश्वामित्र के साथ प्रस्थान किया।

[निशिपालिका छंद]

कामवन राम सब बास तरु देखियो।
नैन सुखदैन मन मैनमय लेखियो।
ईश जहँ कामतनु कै अतनु डारियो।
छोड़ि वह यज्ञथल केशव निहारियो ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—काम वन=वह वन जहाँ भगवान् शंकर ने काम को भस्म किया था। 'मन-मैनमय' = मन में काम-भावना उत्पन्न करने वाले।

व्याख्या—काम वन में प्रवेश करके भगवान राम ने मुनियों के निवास-स्थानों और वृक्षों को देखा। वे नेत्रों को सुख देने वाले और मन में काम-भावना उत्पन्न करने वाले थे। भगवान् शंकर ने जिस स्थल पर कामदेव को भस्म करके अंतनु (अशरीरी) कर दिया था उसे छोड़कर राम ने (आगे बढ़कर) विश्वामित्र की यज्ञस्थली देखी।

[दो०] रामचंद्र लक्ष्मण सहित, तन मन अति सुख पाई।
देख्यो विश्वामित्र को, परम तपोवन जाइ ॥५७॥

सरल है।

तपोवन-वर्णन

[षट्पद]

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेर बर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहैं।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहैं।
शुभ राजहंस कुलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अति प्रफुलित फलित सदा रहै केशवदास विचित्रबन ॥५८॥

शब्दार्थ—तालीस (सं० तालीश) = एक प्रकार का आँवला। हिंताल = एक प्रकार का छोटा ताड़ वृक्ष। बंजुल = अशोक। लकुच = बड़हर। केर = केला। एला = लाची। पुंगीफल = सोपारी।

व्याख्या—तपोवन में तालीश, (एक प्रकार का आँवला), तमाल, ताड़, हिंताल (छोटा ताड़ वृक्ष जो जलाशयों के समीप उग आता है) के मनोहर वृक्ष थे। अशोक, तिलक/बड़हर और नारियल के वृक्ष शोभायमान थे। लाची, लौंग और सोपारी के वृक्ष भी रमणीय लग रहे थे। मैना, तोता, कोकिल और भँवरे दर्शकों का मन मुग्ध कर रहे थे। (सरोवरों में) राजहंस (वह हंस जिसकी चोंच और पैर लाल होता है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और वत्तक क्रीड़ा कर रहे थे। मयूर पक्षी मत्त होकर नृत्य कर रहे थे। (कवि केशवदास कहते हैं) इस प्रकार वह अद्भुत वन सदैव पुष्पित और फलयुक्त रहता था।

नोट—यहाँ कवि देश की भौगोलिक स्थिति का ध्यान रखकर वृक्षों का वर्णन नहीं किया है। कवि-परिपाटी के अनुसार तपोवनों के वर्णन में जिन वृक्षों की गणना होनी चाहिए, सभी का उल्लेख कर दिया गया है।

[सुप्रिया छंद]

कहुँ द्विजगण मिलि सुख श्रुति पढ़हीं।
कहुँ हरि हरि हर हर रट रटहीं।
कहुँ मृगपति मृगशिशु पय पियहीं।
कहुँ मुनिगण चितवत हरि हियहीं ॥५९॥

शब्दार्थ—सुख = सुखपूर्वक। मृगपति = सिंह।

व्याख्या—तपोवन में कहीं वेद-पाठी ब्राह्मण सुखपूर्वक (सहज भाव से) वेद-पाठ कर रहे थे। कहीं वैष्णव भक्त हरि-हरि और कहीं शैव लोग हर-हर महादेव-महादेव) की रट लगाये हुए थे। कहीं सिंह और मृगशावक एक साथ जल पी रहे थे। कहीं तपस्वी लोग हृदय में हरि का ध्यान कर रहे थे।

[नाराच छंद]

विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।
अदीयमान दुःख सुख गर्व दीयमान जानिए।
अदंडमान दीन, गर्व दंडमान भेदवै।
अपठ्यमान पापग्रन्थ, पठ्यमान वेदवै ॥६०॥

शब्दार्थ—विचारमान = विचारणीय। अर्चमान = अर्चना करने योग्य। अदीयमान = न देने योग्य। दीयमान = देने योग्य। अदंडमान = अदण्डनीय। दंडमान = दण्डनीय। भेदवै = भेद-दृष्टि। अपठ्यमान = न पढ़ने योग्य। पठ्यमान = पढ़ने योग्य।

व्याख्या—कवि मुनि-श्रेष्ठ विश्वामित्र की तपोभूमि का वर्णन करता है विश्वामित्रजी के आश्रम में केवल 'ब्रह्म' ही विचारणीय तत्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माना जाता था। 'देवता' ही अर्चना के योग्य समझे जाते थे। 'दुःख' न दिया जानेवाला पदार्थ था। 'सुख' ही दिया जा सकनेवाला पदार्थ समझा जाता था। 'दीन' लोग अदण्डनीय थे। गर्व और भेद-बुद्धि ही दण्डनीय थे। पाप-ग्रन्थ अपठ्य और वेद पठ्य (पढ़ने योग्य) माने जाते थे।

(केशव की उपर्युक्त पंक्तियों से तपोवनों की आचार-पद्धति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।)

अलंकार—परिसंख्या।

[चंचला]

रक्षिबे को यज्ञकूल बैठे वीर सावधान।
होन लागे होम के जहाँ तहाँ सबै विधान।
भीम भाँति ताड़ुका सो भंग लागि कर्न आइ।
बान तानि, राम पै न नारि जानि छाँड़ि जाइ ॥६१॥

शब्दार्थ—कूल = किनारे; यहाँ सन्निकट से तात्पर्य है। सावधान = सतर्क। विधान = आयोजन। कर्न = करना क्रिया का छन्दानुकूल प्रयोग।

व्याख्या—दोनों वीर राम और लक्ष्मण मुनि के यज्ञ की रक्षा करने के लिए यज्ञ-स्थली के समीप सावधान होकर बैठ गये। जहाँ-तहाँ हवन करने का आयोजन होने लगा। (हवन होता हुआ जानकर) भीम-रूपिणी राक्षसी ताड़ुका आकर मख-भंग करने लगी। भगवान् राम ने उसका वध करने के लिए शर-सन्धान किया किन्तु उसे नारी जानकर रुक गये। (स्त्री पर बल प्रयोग क्षात्र-धर्म के प्रतिकूल है।)

ऋषि–[सो०] कर्म करति यह घोर, विप्रन को दुसहू दिशा।
मत्त सहस गज जोर, नारी जानि न छाँड़िए ॥६२॥

शब्दार्थ—घोर = नीच। मत्त = मतवाला। सहस = एक हजार।

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र भगवान् राम की हिचकिचाहट समझ गये। उन्हें उत्तेजित करने के लिए उन्होंने कहा—

यह विप्रों को सन्तप्त करने के लिए घोर नीच कर्म करती है। (यह साधारण स्त्री नहीं है) इसमें एक सहस्र मतवाले हाथियों की शक्ति है। इसे सामान्य स्त्री मानकर छोड़ न दीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] द्विजदोषी न विचारिए, कहा पुरुष कह नारि।
राम विराम न कीजिए, बाम ताड़का तारि ॥६३॥

शब्दार्थ—द्विज-दोषी = ब्राह्मणों का अहित करनेवाला।

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र भगवान् राम को उत्तेजित करते हुए कहते हैं—

ब्राह्मणों का अहित करनेवाला चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री उसे लेकर वध्य-अवध्य का विचार नहीं करना चाहिए। (इसलिए) हे राम! आप रुकें नहीं। शीघ्र ही बाम (कुटिल) ताड़का का उद्धार करें। (यहाँ बाम शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया गया है)

ताड़का-सुबाहु-बध

[मरहट्ठा छंद]

यह सुनि गुरुबानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि।
ताड़का सँहारी दारुण भारी नारी अति बल जानि॥
मारीच बिडारयो जलधि उतारयो मारयो सबल सुबाहु।
देवनि गुन पर्ख्यो पुष्पनि बर्ख्यो हर्ख्यो अति सुरनाहु ॥६४॥

शब्दार्थ—धनु-गुन = धनुष की डोरी। बिडारयो = डराकर भगा देना। गुन-पर्ख्यो = गुण की परीक्षा हो गई।

व्याख्या—गुरु की आज्ञा पाकर भगवान् राम ने ताड़का को (ब्राह्मणों को दुःख देनेवाली समझकर) मारने लिए धनुष पर डोरी चढ़ा ली। उन्होंने अति शक्तिशालिनी और भयंकर स्त्री समझकर उसका संहार कर दिया। मारीच को डराकर समुद्र पार भगा दिया। बलवान सुबाहु को मार डाला। भगवान् राम के इन कृत्यों को देखकर देवताओं ने उनके गुण परख लिये। उन्होंने पुष्प-वर्षा की। देवेश इन्द्र अत्यन्त हर्षित हुए। (क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि अब रामावतार हो गया है और शीघ्र ही रावण-वध होगा)।

[दो०] पूरण यज्ञ भयो जहीं, जान्यो विश्वामित्र।
धनुषयज्ञ की शुभ कथा, लागे सुनन विचित्र ॥६५॥

सरल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विप्र-कथित स्वयंवर-कथा

खंडपरस को सोभिजै, सभामध्य कोदंड।
मानहुँ शेष अशेष धर, धरनहा बरिवंड ॥६६॥

शब्दार्थ—खण्डपरस = महादेव। कोदण्ड = धनुष। अशेष = समस्त। धर = पृथ्वी। बरिवण्ड = प्रबल।

व्याख्या—भगवान् राम द्वारा रक्षा किये जाने पर ऋषि विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। उसी समय मिथिला से एक ब्राह्मण पथिक उनके आश्रम में आया। वह जनक द्वारा आयोजित धनुष-यज्ञ की कथा सुनाने लगा।

देश-देश से आये हुए राजाओं की सभा के मध्य में महादेव का धनुष इस प्रकार शोभित है मानो समस्त पृथ्वी को धारण करनेवाला प्रचण्ड शेषनाग हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सवैया]

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छबि उज्ज्वल छाई।
ईश मनौ वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।
तामहँ केशवदास विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यों जनु देवसभा शुभ सीयस्वयंवर देखन आई ॥६७॥

शब्दार्थ—ईश = महादेव। सुधारि = ठीक से संशोधन करके। सुधाधर मण्डल = चन्द्रमण्डल। स्यों = सहित।

व्याख्या—गजदंतमयी उज्ज्वल आभा से पूर्ण मंचों की पंक्ति शोभा दे रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि महादेव ने चान्द्रमण्डित चन्द्रमण्डल को सुधार कर पृथ्वी पर रख दिया है। इन्हीं मंचों पर सभी सुन्दर राजकुमार विराजमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो सीता का शुभ स्वयंवर देखने के लिए देवताओं के साथ देव-सभा ही आ गई है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सो०] सभामध्य गुणग्राम, बंदी सुत द्वै सोभहीं।
सुमति विमति यह नाम, राजन को वर्णन करैं ॥६८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—गुण ग्राम = गुणों के समूह, गुणी।

व्याख्या—सभा के बीच में सभी गुणों से युक्त दो चारण-कुमार शोभित हैं जिनका नाम सुमति और विमति है। वे देश-देश से आये हुए राजाओं के ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं—

सुमति–[दो०] को यह निरखत आपनी, पुलकित बाहु विशाल।
सुरभि स्वयं जनु करी, मुकुलित शाख रसाल ? ॥६९॥

शब्दार्थ—सुरभि = बसंत। मुकुलित = मंजरी युक्त। रसाल = आम।

व्याख्या—सुमति विमति से प्रश्न करता है—

यह कौन राजा है जो अपने पुलकायमान विशाल भुजदण्डों को देख रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयंवर रूपी बसंत ऋतु ने रसाल वृक्ष की शाखा को मंजरी-युक्त कर दिया है। (यहाँ विशाल भुजदण्डों को रसाल की शाखा के रूप में तथा रोमाञ्च के कारण खड़े हुए रोंगटों को आम्र मंजरी के रूप में कल्पित किया गया है।)

नोट—यह वर्णन प्रसन्न-राघव नाटक के आधार पर किया गया है। प्रसन्न-राघव नाटक में चारण-कुमारों का नाम 'नू पुरक' और 'मंजरीक' है। नू पुरक प्रश्न करता है और मंजरीक उत्तर देता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

विमति–[सो०] जेहि यश-परिमल मत्त, चंचरीक-चारण फिरत।
दिसा विदिसन अनुरक्त, सो तौ मल्लिकापीड़नृप ॥७०॥

शब्दार्थ—मल्लिकापीड़ = (मल्लिक + आपीड़)। आपीड़ = शिरो-भूषण। मल्लिकापीड़ = (१) मल्लिक नामक पहाड़ी प्रदेश का श्रेष्ठ राजा; (२) मल्लिकापुष्प से निर्मित है शिरोभूषण जिसका वह राजा।

व्याख्या—विमति उत्तर देता है—

जिसके यश रूपी परिमल (सुगन्धि) से मत्त होकर चंचरीक (भौंरा) रूपी बन्दीजन अनुरागयुक्त होकर देश-देशान्तर में भ्रमण करते रहते हैं (यशगान करते फिरते हैं) यह वही मल्लिका नामक पहाड़ी प्रदेश का श्रेष्ठ राजा है या यह वही मल्लिका पुष्प से निर्मित शिरो-भूषण धारण करनेवाला राजा है।

अलंकार—रूपक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुमति-[दो०] जाके सुखमुख वास ते, वासित होत दिगंत।
सो पुनि कहु यह कौन नृप, शोभित शोभ अनंत ? ॥७१॥

शब्दार्थ—सुख = सहज, स्वाभाविक। शोभ = शोभा।

व्याख्या—सुमति प्रश्न करता है—

जिसके मुख की स्वाभाविक सुगन्धि से दिग्-दिगन्त सुवासित हो रहे हैं, अनन्त शोभा से युक्त यह कौन राजा है ?

विमति-[सो०] राजराजदिगवाम, भाल लाल लोभी सदा।
अति प्रसिद्ध जग नाम, कासमीर को तिलक यह ॥७२॥

शब्दार्थ—राज-राज = कुबेर। राजराजदिग = कुबेर की दिशा = उत्तर दिशा। राजराजदिगवाम = उत्तर दिशा रूपी स्त्री। कासमीर को तिलक = काश्मीर देश का राजा।

व्याख्या—विमति उत्तर देता है।

उत्तर दिशा रूपी स्त्री के भाल के लाल का सदा लोभी यह काश्मीर देश का राजा है। इसका नाम संसार में अत्यधिक प्रसिद्ध है।

अलंकार—रूपक।

सुमति-[दो०] निज प्रताप दिनकर करत, लोचन कमल प्रकास।
पान खात मुसुकात मृदु, को यह केशवदास ? ॥७३॥

शब्दार्थ—प्रताप-दिनकर = प्रताप रूपी सूर्य।

व्याख्या—सुमित प्रश्न करता है—

जो अपने प्रताप रूपी सूर्य के प्रकाश से लोगों के नेत्र-कमलों को विकसित कर रहा है, जो पान खाते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहा है, वह कौन राजा है ?

अलंकार—रूपक।

विमति-[सो०] नृप मणिक्य सुदेश, दक्षिण तिय जिय भावतो।
कटितट सुपट सुवेश, कल कांची शुभ मंडई ॥७४॥

शब्दार्थ—नृप-माणिक्य = राजाओं में माणिक्यवत्। सुदेश = सुन्दर दक्षिणतिय = दक्षिण दिशा रूपी स्त्री। सुपट = सुन्दर वस्त्र।

व्याख्या—विमति उत्तर देता है।

राजाओं में माणिक्यवत् (अर्थात् अत्यन्त रागी), सुन्दर तथा दक्षिण दिशा रूपी स्त्री के मन को भानेवाला, कटि प्रदेश में सुन्दर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्त्र धारण किये हुए यह सुन्दर काँचोपुरी को शोभित करनेवाला राजा है।

सुमति-[दो०] कुंडल परसन मिस कहत, कहौ कौन यह राज।
शंभुशरासन गुन करौं, करनालंबित आज ॥७५॥

शब्दार्थ—परसन = स्पर्श। मिस = व्याज, बहाने। गुन = प्रत्यंचा। करनालम्बित = कान तक ले जाना।

व्याख्या—सुमति प्रश्न करता है—

कहो यह कौन राजा है जो अपना कुण्डल स्पर्श करता हुआ उसके बहाने मानो यह प्रकट कर रहा है कि आज मैं शम्भु-धनुष की प्रत्यञ्चा को कानों तक खींचूँगा।

विमति-[सो०] जानहिं बुद्धिनिधान, मत्स्यराज यहि राज को।
समर समुद्र समान, जानत सब अवगाहि कै ॥७६॥

शब्दार्थ—मत्स्यराज = (१) मत्स्य देश का राजा। (२) मछलियों का राजा। अवगाहि = अवगाहन करके, प्रवेश करके।

व्याख्या—विमति उत्तर देता है—

हे बुद्धि निधान सुमति! यह मत्स्य देश का राजा है। (या सभी बुद्धिमान लोग इस राजा को मत्स्यराज के रूप में जानते हैं) यह समर-समुद्र में अवगाहन करके उसका मंथन कर डालता है ऐसा सब लोग जानते हैं।

अर्थात् जिस प्रकार बड़ा मत्स्य समुद्र में अवगाहन करके उसका मंथन कर डालता है उसी प्रकार यह मत्स्यप्रदेश का राजा युद्ध-रूपी समुद्र में अवगाहन करके उसका मंथन कर डालता है। ऐसा सभी जानते हैं। इस प्रकार इसकी मत्स्यराज संज्ञा सार्थक है।

अलंकार—श्लेष, रूपक।

सुमति-[सो०] अंगराग-रंजित रुचिर, भूषण-भूषित देह।
कहत विदूषक सों कछू, सो पुनि को नृप येह ? ॥७७॥

शब्दार्थ—अंगराग = चन्दन, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि का शरीर पर सुगन्धित लेप। रंजित = रँगा हुआ।

व्याख्या—सुमति प्रश्न करता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसका शरीर सुगन्धित लेपों से रंजित है, जो विविध प्रकार के भूषणों के भूषित है, जो अपने विदूषक से कुछ कह रहा है, वह कौन राजा है ?

विमति–[सो०] चंदनचित्रतरंग, सिंधुराज यह जानिए।
बहुत वाहिनी संग, मुक्तमाल विशाल उर ॥७८॥

शब्दार्थ—चंदन चित्र तरंग = चंदन की तरंगवत् चित्र रचना से युक्त। सिंधुराज = (१) सिंधु प्रदेश का राजा (२) समुद्रों का राजा। वाहिनी = (१) सेना (२) नदियाँ। मुक्तामाल = (१) मोतियों की माला (२) मोतियों का समूह।

व्याख्या—विमति उत्तर देता है—

जिनके शरीर पर चंदन की तरंगवत् चित्र-रचना हुई है, जिसके साथ विशाल सेना है, उसके विशाल वक्षस्थल पर मुक्ताओं की माला शोभित है, उसे, सिंधुराज समझो।

[जिस प्रकार महासागर (सिंधुराज) में तरंगें उठती गिरती हैं उसी प्रकार इसके शरीर में तरंगभंगी की अनुहारि चंदन चित्रित है, जिस प्रकार महासागर में अनेक नदियाँ गिरती हैं उसी प्रकार इसके साथ विशाल सैन्य समूह है, जिस प्रकार सागर में मोतियों की राशि प्राप्त होती है उसी प्रकार इसके वक्षस्थल पर मोतियों की माला शोभित है। इस प्रकार सिन्धुदेश का यह राजा वस्तुतः सिन्धु-राज है।]

अलंकार—श्लेष, रूपक।

विमति[दो०] सिगरे राज समाज के, कहे गोत्र गुण ग्राम।
देश सुभाव प्रभाव अरु, कुल बल विक्रम नाम ॥७९॥

शब्दार्थ—सिगरे = सम्पूर्ण। ग्राम = समूह। गुण-ग्राम = गुण समूह।

व्याख्या—इस प्रकार सुमति के प्रश्नों के उत्तर रूप में विमति ने सभी राजाओं के गोत्र, गुण, देश, स्वभाव, प्रभाव, कुल-परंपरा और बल-विक्रम का वर्णन किया।

विशेष—केशव का यह सुमति-विमति संवाद बड़ा ही सजीव और नाटकीय है। इससे प्रकट है कि वे राजकीय वातावरण का अलंकृत वर्णन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने में पूर्णतः समर्थ थे। यदि इस वर्णन में प्रसन्नराघव नाटक की छाया न होती तो केशव की काव्य-प्रतिभा अप्रतिम मानी जाती।

[धनाक्षरी]

पावक पवन मणिपन्नग पतंग पितृ,
जेते ज्योतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।
असुर प्रसिद्ध सिद्ध, तीरथ सहित सिंधु,
केशव चराचर जे बेदन बताये हैं।
अजर अमर अज अंगी और अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौन गुण पाये हैं।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे कों,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥८०॥

शब्दार्थ—मणि पन्नग = मणिधारी सर्प। पतंग = पक्षी। पितृ = पितर या पितृलोक निवासी। ज्योतिवंत = ज्योति वाले (चन्द्र, सूर्य आदि)। विश्वरूप = सम्पूर्ण विश्व, सम्पूर्ण विश्व के रूपधारी लोग।

व्याख्या—सीताजी का स्वयंवर देखने के लिए पावक, पवन, मणिधारी सर्प (शेष, वासुकी आदि), पतंग, पितृलोक-निवासी, ज्योतिषियों द्वारा परिगणित संसार के समस्त ज्योतिधारी (चन्द्र, सूर्य आदि, असुर, संसार प्रसिद्ध लोग, तीर्थों के साथ सिंधु (सिंधु सभी तीर्थों का राजा है), समस्त चराचर, (जिनका वेदों में निरूपण किया गया है) जरारहित देवगण, ब्रह्मा, शरीरी और अशरीरी आदि सभी विश्व के रूपधारी लोग भूपालों के वेश में जनक-पुरी में आये हैं।

[विजय छंद]

दिकपालन की भुवपालन की, लोकपालन की किन मातु गयी च्वै।
ठाढ़ भये उठि आसन ते, कहि केशव, शंभु शरासन को छ्वै।
काहू चढ़ायो न, काहू नवायो न, काहू न उठायो न आँगुरहू ह्वै।
स्वारथ भो न भयो परमारथ, आए ह्वै वीर, चले वनिता ह्वै ॥८१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—किन मातु गई चवै = माताओं का गर्भपात क्यों नहीं हो गया ? छवै = छूने के लिए।

व्याख्या—शंभु के शरासन की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए दिक्पालों, भूपालों और लोकपालों (राजाओं के वेश में आए हुए) आदि सभी ने प्रयत्न किया और सभी विफल रहे। अच्छा हुआ होता यदि इन सभी का माताओं के गर्भ में आते ही पात हो गया होता। कवि केशव कहते हैं कि ये सभी शंकर के चाप को उठाने के लिए अपने-अपने आसनों से उठे किन्तु न तो किसी ने उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई न तो किसी ने उसे झुकाया और न तो कोई उसे दो अंगुल भूमि ही छुड़ा सका। न तो इन लोगों का स्वार्थ ही सिद्ध हुआ न परमार्थ ही बना। ये अपने को वीर समझकर आये थे किन्तु इन्हें बनिताओं की भाँति अपने को निर्बल सिद्ध करके लजाते हुए जाना पड़ा।

[दो०] सबही को समझ्यो सवन वल विक्रम परिमाण।
सभा मध्य ताही समय आये रावण बाण ॥८२॥

शब्दार्थ—बाण = बाणासुर। परिमाण = मात्रा।

व्याख्या—सभी लोगों ने (अन्य) सभी लोगों की शक्ति और पौरुष का अनुमान लगा लिया। इस समय सभा में रावण और बाणासुर ने प्रवेश किया।

रावण बाण महावली, जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु करखिहैं, ताको कहा विचार ॥८३॥

शब्दार्थ—करखिहैं = खींचेंगे, प्रत्यंचा को झुकायेंगे।

व्याख्या—रावण और बाणासुर दोनों महाबली हैं। यदि कहीं दोनों ने शंकर के चाप की प्रत्यंचा चढ़ा दी तो क्या होगा ? (ऐसी स्थिति में सीता किसे वरण करेगी)।

[सवैया]

बाणासुर—

केशव और ते और भयी, गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आय, मिल्यों दसकंठ सदा अविचारी।
बाढ़ि गयो बकवाद वृथा, यह भूलि, न भाट सुनावहि गारी।
चाप चढ़ाय हौं कीरति कौं यह राज वरै तेरी राजकुमारी ! ॥८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सूरन = शूरवीरों। यह भूलि न भाट सुनावहि गारी = हे भाट (विमति) भूलकर भी मुझे यह गाली न दे (कि बाणासुर सीता को ब्याहने के लिए धनुष चढ़ाना चाहता है। बाणासुर सीता को माता रूप में देखता था। इसीलिए उपर्युक्त विचार उसके प्रति गाली रूप हुआ।)

व्याख्या—बाणासुर विचार करता है कि ब्रह्मा की गति जानी नहीं जाती। यहाँ आए थे किसी और विचार से हो गया कुछ और। आया था शूरवीरों से मिलने और यहाँ भेंट हो गई सदा के अविचारी (अविवेकी) रावण से। यहाँ व्यर्थ ही (उससे) विवाद बढ़ गया। हे भाट विमति! मुझे भूलकर भी यह गाली न दे (कि मैं सीता को ब्याहने के लिए शंकर के धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाना चाहता हूँ क्योंकि सीता मेरी माता तुल्य हैं) मैं तो कीर्ति के लिए चाप की प्रत्यञ्चा चढ़ाऊँगा। तेरी राजकुमारी सीता स्वेच्छया वरण करे।

खंडित मान भयो सबको नृपमंडल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल बाहु, निराकुल बुद्धि, थक्यो बल विक्रम लंकपती को॥
कोटि उपाय किये कहि केशव, क्योहुँ न छाड़त भूमि रती को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग-यती को॥८५॥

शब्दार्थ—निराकुल = अत्यन्त व्याकुल। रती को = रंच भर भी। विभूति = वैभव, ऐश्वर्य।

व्याख्या—अनेक प्रयत्नों के बाद भी शंकर के चाप के न डिगने से सभी राजाओं का मान खंडित हो गया। संसार के समस्त राजाओं ने मन ही मन अपनी पराजय मान ली। लंकापति रावण की विशाल बाहें व्याकुल हो गईं। बुद्धि चकरा गई और सारा बल-विक्रम शिथिल पड़ गया। (केशव कवि कहते हैं) करोड़ों उपाय करने पर भी किसी भी रूप में वह रंचमात्र भी भूमि न छोड़ सका। ठीक वैसे ही जैसे योगी का मन अपार वैभव के प्रभाव से स्वभावतः प्रभावित नहीं होता।

अलंकार—उदाहरण।

[दो०] मेरे गुरु को धनुष यह, सीता मेरी माय।
दुहूँ भाँति असमंजसै, बाण चले सुख पाय॥८६॥

शब्दार्थ—माय = माता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—बाणासुर कहता है कि यह धनुष मेरे गुरु शंकर का है (इसलिए इसे तोड़ना उचित नहीं है) सीता मेरी माता है। (इसलिए उनको वरण करने की बात भी अनुचित है) अतः दोनों प्रकार से यह कार्य उचित नहीं हैं। (असमंजस का है) यह कहकर बाणासुर सुख पूर्वक चला गया।

[तोटक]

रावण—

अब सीय लिये बिन हौं न टरौं। कहुँ जाहुँ न तौ लगि नेम धरौं।
जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत शब्द 'हते तन' को'।८७।

शब्दार्थ—हते तन को='मैं मारा जा रहा हूँ' इस प्रकार की आर्तवाणी।

व्याख्या—रावण निश्चय करता है कि अब सीता को बिना प्राप्त किए मैं यहाँ से नहीं टलूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक कोई अपना आश्रित व्यक्ति 'हाय मैं मारा जा रहा हूँ' इस प्रकार की आर्तवाणी में न पुकारेगा तब तक मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

काहु कहूँ सर आसुर मार्‌यो। आरत शब्द अकास पुकार्‌यो।
रावणके वह कान परयो जब। छोड़ि स्वयंवर जात भयो तब ॥८८॥

शब्दार्थ—आसुर=असुर, राक्षस।

व्याख्या—(जनकपुर से विश्वामित्रजी के आश्रम में आया हुआ ब्राह्मण कहता है) हे विश्वामित्रजी! इसी समय कहीं किसी ने किसी असुर को बाण मारा। उस असुर ने आर्त स्वर में सहायता की याचना की। रावण ने ज्योंही वह शब्द सुना स्वयंवर-भूमि छोड़कर चला गया।

ऋषिराज सुनी यह बात जहीं। सुख पाइ चले मिथिलाहि तहीं।
वन राम सिला दरसी जबहीं। तिय सुन्दर रूप भई तबहीं ॥८९॥

शब्दार्थ—ऋषिराज=विश्वामित्र। सिला=शिला, रूप में पड़ी हुई गौतम-नारी अहल्या। दरसी=देखी।

व्याख्या—ब्राह्मण के मुख से यह सम्पूर्ण गाथा सुनकर ऋषिराज विश्वामित्र ने सुखपूर्वक मिथिला की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में एक बन में (दण्डक वन में) राम ने एक प्रस्तर की शिला देखी। राम की दृष्टि पड़ते ही वह शिला सुन्दर स्त्री के रूप में परिणत हो गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचन्द्र का जनकपुर में आगमन

[दो०] काहू को न भयो कहूँ, ऐसो सगुन न होत।
जनकपुरी पुर पैठत श्रीराम के, भयो मित्र उद्योत ॥१०॥

शब्दार्थ—मित्र = सूर्य। उद्योत = उदति।

व्याख्या—कहीं किसी को (यात्रा में) न तो ऐसा शकुन हुआ है और न होता है। भगवान् राम ने ज्यों ही जनकपुरी की सीमा में प्रवेश किया त्यों ही सूर्योदय हुआ। (सूर्योदय शुभ-सूचक है)

सूर्योदय-वर्णन

[चौपाई]

राम—
कछु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मण के अनुराग भरे।
चितवत चित्र कुमुदिनी त्रसै। चोर चकोर चिता सो लसै ॥९१॥

शब्दार्थ—खरे = प्रखर, तेजयुक्त। कुमुदिनी = कोकाबेली।

व्याख्या—भगवान् राम सूर्योदय का वर्णन करते हैं—प्रखर अरुण वर्णवाले सूर्य शोभित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मण के अनुराग से युक्त हैं। (अनुराग का रंग लाल माना गया है। इसी आधार पर सूर्य की अरुणिमा के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ा गया है। लक्ष्मण उग्र स्वभाव के हैं। अतः उनके अनुराग में उग्रता (प्रखरता) भी हो सकती है। इस प्रकार लक्ष्मण की उग्रता से सूर्य की प्रखरता और उनके अनुराग से सूर्य की लालिमा का मेल बैठ जाता है) सूर्य को देखकर कुमुदिनी भयभीत है। (कुमुदिनी को चन्द्रमा से राग है। सूर्य की किरणों के प्रभाव से वह संकुचित हो जाती है।) चोरों और चकोर पक्षी के लिए तो यह सूर्य-बिम्ब प्रज्वलित चिता के समान लग रहा है। (चोर अन्धकार में ही घात लगा सकता है। इसलिए सूर्य उसे चिता के समान लग रहा है और चकोर चन्द्रमा से प्रेम करता है; जब तक सूर्य का प्रकाश रहेगा, चन्द्रमा का उदय नहीं होगा। अतः उसे भी सूर्य प्रज्वलित चिता के समान लग रहा है।)

अलंकार—उपमा, उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[षट्पद]

लक्ष्मण—अरुण गात अति प्रात पद्मिनीप्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोकप्रेममय।
परिपूरण सिंदूरपुर कैधौं मंगलघट्ट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिक्कमयूषपट्ट॥
कै श्रोणितकलित कपाल यह किल कपालिका काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनी के भाल को॥९२॥

शब्दार्थ—पद्मिनी-प्राणनाथ = सूर्य। भय = भए। कोकनद = कमल। माणिक मयूख पट = माणिक्य की किरणों से निर्मित वस्त्र। शक्र = इन्द्र। कोक = चक्रवाक।

व्याख्या—लक्ष्मण सूर्य का वर्णन कर रहे हैं। प्रातः काल सूर्य-बिम्ब अरुण वर्ण है। ऐसा लगता है कि चक्रवाक और कमल के प्रेम से युक्त होने से ही वह अरुण हो गया है। या पूर्णतः सिन्दूर से रँगा हुआ यह (सूर्य बिम्ब) कोई मंगल घट है। अथवा यह (सूर्य बिम्ब) माणिक्य की किरणों से मण्डित इन्द्र का छत्र है। अथवा यह कालरूपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्तरंजित मुण्ड है। अथवा पूर्वदिशा रूपी स्त्री के प्रशस्त भाल पर यह सुन्दर माणिक्य है।

अलंकार—रूपक और सन्देह गर्भित उत्प्रेक्षा।

[तोटक छंद]

पसरे कर कुमुदिनि काज मनो।
किधौं पद्मिनि कों सुख देन घनो।
जनु ऋक्ष सबै यहि त्रास भगे।
जिय जानि चकोर फँदान ठगे॥९३॥

शब्दार्थ—कर = हाथ, किरणें। ऋक्ष = नक्षत्र, तारागण। फँदान = फन्दा या जाल। ठगे = ठगा-सा हो जाना।

व्याख्या—सूर्य की किरणें प्रसरित हो रही हैं लगता है ये कुमुदिनी को पकड़ने के लिए आगे बढ़ती आ रही हैं या यह हो सकता है कि कमलिनी को ही प्रफुल्ल करने के लिए ये आगे बढ़ रही हों। सूर्योदय के साथ ही तारे अस्त हो गये हैं। कदाचित् वे इन्हीं किरणों से भयभीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर पलायित हो गए हैं। चकोर भी इन्हें फँसाने का फन्दा समझकर ठगा-सा हो गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, सन्देह।

[चंचरी छंद]

रामचंद्र-व्योम में मुनि देखिये अति लाल श्रीमुख साजहीं।
सिंधु में बड़वाग्नि की जनु ज्वालमाल विराजहीं।
पद्मरागनि की किधौं दिवि धूरि पूरित सी भयी।
सूर वाजिन की खुरी अति तिक्षता तिनकी हयी ॥९४॥

शब्दार्थ—लाल श्रीमुख=लाल वर्ण वाले सूर्य। पद्मराग=माणिक्य। दिवि=आकाश। सूर-वाजिनि=सूर्य के घोड़ों। तिक्षता=तीक्ष्णता, तीखापन। हयी=हती।

व्याख्या—रामचन्द्र जी सूर्य का वर्णन करते हैं—

हे मुनि श्रेष्ठ! देखिये आकाश में लाल मुख-श्री वाले सूर्य अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि सिन्धु के अन्तस् में बड़वाग्नि की लपटों का पुञ्ज शोभित है। (यहाँ विस्तृत नील नभ को समुद्र के रूप में और उसमें भासमान सूर्य को बड़वाग्नि के रूप में कल्पित किया गया है।)

अथवा ऐसा लगता है कि सूर्य के घोड़ों की तीखी खुरों से दलित होकर पद्मराग मणियाँ चूर्ण हो गई है और उन्हीं के धूल से आकाश भर गया है। (कहा जाता है कि सूर्य मेरु पर्वत की परिक्रमा करता है, मेरु पर्वत पर पद्मराग-मणियों की खाने हैं। परिक्रमा करते हुए सूर्य का रथ जब समीप से गुजरता होगा तो घोड़ों की तीखी खुरों से चूर्ण-चूर्ण होकर मणियों की धूल बन जाती होगी और आकाश में अरुण वर्ण का वितान सा तन जाता होगा। यहाँ सूर्य को इसी वितान के रूप में कल्पित किया गया है।)

अलंकार—संदेह, उत्प्रेक्षा।

विश्वामित्र-[सो०]चढ्यो गगन तरुणाइ, दिनकर-वानर अरुणमुख।
कीन्हों झुकि झहराइ, सकल तारकी कुसुम बिन ॥९५॥

शब्दार्थ—दिनकर-वानर=सूर्य रूपी बन्दर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—ऋषि विश्वामित्र सूर्य का वर्णन करते हैं—आकाश रूपी वृक्ष पर सूर्य रूपी बन्दर दौड़कर चढ़ गया है। क्रुद्ध होकर इस बन्दर (सूर्य) ने आकाश रूपी वृक्ष को झकझोर दिया है और इस प्रकार उसे (आकाश रूपी वृक्ष को) नक्षत्र-कुसुमों से रहित कर दिया है।

लक्ष्मण—[दो०] जहीं वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवंत बिन, संपति शोभा साज ॥९६॥

शब्दार्थ—जहीं=ज्योंही। बारुणी=(१) पश्चिम दिशा, (२) मदिरा। द्विजराज=(१) ब्राह्मण, (२) चन्द्रमा। भगवंत=(१) सूर्य, (२) भगवान।

लक्ष्मणजी कहते हैं—

व्याख्या—(१) ज्योंही ब्राह्मण मदिरा-पान की तनिक भी इच्छा करता है त्योंही भगवान उसे सम्पत्ति, सौन्दर्य आदि से रहित कर देते हैं। (२) ज्योंही चन्द्रमा पश्चिम दिशा की ओर उन्मुख होता है त्योंही सूर्य उसे वैभव और सौंदर्य से रहित कर देते हैं।

अलंकार—श्लेष।

[तोमर छंद]

लक्ष्मण—चहुँभाग बाग तड़ाग। अब देखिए बड़भाग॥
फल फूल सों संयुक्त। अलि यों रमै जनु मुक्त ॥९७॥

शब्दार्थ—चहुँभाग=चारों ओर। बड़भाग=महाभाग राम। मुक्त=जीवनमुक्त संन्यासी।

व्याख्या—लक्ष्मणजी जनकपुरी के चारों ओर के दृश्यों का वर्णन करते हैं—हे महाभाग राम! देखिये, जनक-पुरी के चारों ओर सुन्दर बाग और सरोवर हैं। ये फल-फूलों से शोभित हैं और इनमें भ्रमर स्वच्छन्द गति से रमण कर रहे हैं मानो वे जीवन-मुक्त संन्यासी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

रामचंद्र—[दो०] ते नर नगरि ना नागरी, प्रतिपद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जहँ, प्रगट पयोधर पीन ॥९८॥

शब्दार्थ—ते=वे। नगरि=नगरी, बस्ती। नागरी=नागरिका, चतुर स्त्री। प्रतिपद=(१) हरएक पैर में, (२) पद-पद पर। हंसक=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) बिछुवा, (२) (हंस + क) = हंस और जल। जलज = (१) मोती, (२) कमल। पयोधर = (१) कुच, (२) जलाशय। पीन = (१) पुष्ट, (२) बड़े-बड़े।

व्याख्या—भगवान् राम जनकजी के देश का वर्णन करते हैं—जनकजी के प्रदेश में ऐसी कोई नगरी नहीं है जो पग-पग पर हंसों, कमल-समूहों और बड़े-बड़े जलपूर्ण सरोवरों से हीन हो और जनक के देश में ऐसी कोई स्त्री नहीं है जिसके प्रत्येक चरण में नूपुर न हों, (अर्थात् सभी स्त्रियाँ सौभाग्यवती हैं) जिसके वक्ष पर मोतियों की माला शोभित न हो, और जिसके पयोधर उन्नत और पुष्ट न हों।

अलंकार—श्लेष, वक्रोक्ति, अनुप्रास।

[सवैया]

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस बिसे व्रत भंग भयो, सो कहौ, अब, केशव, को धनु ताने?
शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ॥९९॥

शब्दार्थ—बीस बिसे = निश्चित रूप से। घनश्याम = (१) राम, (२) बादल। बिहाने = प्रातःकाल।

व्याख्या—राजा जनक ने जब अपने हृदय में (मन-ही-मन) समझ लिया कि सातों द्वीपों के भूपाल धनुष को डिगाने में असफल हो गए हैं और अब निश्चय ही मेरा प्रण भंग हो जायगा क्योंकि अब धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने वाला कोई नहीं है; तब इस विचार से उनका हृदय शोकाग्नि में दग्ध होने लगा। इसी समय प्रातःकाल होते-होते घनश्याम रूप भगवान राम ने जनकपुरी में प्रवेश किया। उनके आगमन से देवी सीता और जनक आदि सभी के पुराने पुण्य-तरु पुष्पित हो उठे। [यहाँ घनश्याम शब्द का बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार दहकती हुई अग्नि को श्याम-घन शीतल जल-वृष्टि से शमित कर देता है और मुर्झाये हुए तरुओं को भी सींचकर पुष्पित कर देता है उसी प्रकार जनक के हृदय में प्रज्वलित शोकाग्नि को भगवान् राम ने (अपने आगमन से) शमित कर दिया और उनके आगमन के प्रभाव से सीता तथा जनकादि के पुण्यरूपी वृक्ष पुष्पित हो उठे अर्थात् इनके भाग्य जाग उठे।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकार—परिकरांकुर, रूपक।

विश्वामित्र और जनक की भेंट

[दोधक छंद]

आइ गये ऋषिराजहिं लीने। मुख्य सतानँद विप्र प्रवीने।
देखि दुवौ भये पाँयनि लीने। आशिष शीरषवासु लै दीने ॥१००॥

शब्दार्थ—ऋषि=याज्ञवल्क्य। राजहिं लीने=राना जनक को साथ लिए हुए। दुवौ=(राजा जनक और सतानन्द) दोनों।

व्याख्या—विश्वामित्र के आगमन की सूचना पाकर ऋषि याज्ञवल्क्य उनकी अगवानी करने के लिए महाराज जनक और सतानन्द आदि प्रमुख कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को साथ लेकर आ गए। विश्वामित्र को देखकर दोनों (राजा जनक और सनानन्द) ने उनके चरण स्पर्श किए। उन्होंने भी (विश्वामित्र) माथा सूँघकर आशीर्वाद दिया अथवा राजा जनक और सतानन्द को देखकर दोनों (राम और लक्ष्मण) ने उनके चरण-स्पर्श किए और उन्होंने दोनों को माथा सूँघकर आशीर्वाद दिया। अथवा सतानन्द आदि प्रमुख ब्राह्मण ऋषि राज (राजर्षि) जनक को साथ लिए हुए विश्वामित्र की अगवानी के लिए आ गए।

विश्वामित्र—

[सवैया]

केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरतिवेलि बयी है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी वसुधा जिन हाथ लयी है।
अंग छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भयी है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योगमयी है ॥१०१॥

शब्दार्थ—केशव=राम (सम्बोधन रूप में प्रयुक्त हुआ है) दान-कृपान विधानन सों=दान-विधान सों; कृपान-विधान सों। (अर्थात् उदारता और शक्ति दोनों के बल से।)

अंग छ=वेद के छः अंग (शिक्षा, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, छंद)।

अंग आठक=योग के आठ अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग सातक=राज्य के सात अंग (राजा, मन्त्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग, सेना) भव=उत्पन्न। वेदत्रयी=ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद।

व्याख्या—विश्वामित्रजी भगवान् राम को राजा जनक का गौरव-मय परिचय दे रहे हैं।

हे केशव! (राम!) ये मिथिला नरेश महाराज जनक हैं जिनकी कीर्ति-लता सारे संसार में फैली हुई है। जिन्होंने आवश्यकतानुसार उदारता और शक्ति दोनों का प्रदर्शन करके सम्पूर्ण पृथ्वी को हस्तगत कर लिया है। वेद के छः अंगों, राज्य के सात अंगों और योग के आठ अंगों की उपलब्धि के द्वारा इन्होंने तीनों लोकों में सभी कुछ सिद्ध कर लिया है। इन्हें तीनों प्रमुख वेदों का ज्ञान है साथ ही इन्हें राज-वैभव भी प्राप्त है। इस प्रकार इनमें (इनके व्यक्तित्व में) ज्ञान और वैभव दोनों की पूर्णता का शुभ योग हुआ है। [राज-वैभव भोगने वाला व्यक्ति वेदज्ञ नहीं हो सकता और वेदज्ञ, राज-वैभव नहीं प्राप्त कर सकता। राजा जनक का ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व है कि इनमें ये दोनों विरोधी उपलब्धियाँ एक साथ संयुक्त रूप से पूर्णता प्राप्त कर रही हैं।

अलङ्कार—प्रथम पंक्ति में—'कीरतिबेलि' में 'रूपक'।

जनक—[सो०] जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि मैं।
कीन्हों उत्तमवर्ण, तेई विश्वामित्र ये ॥१०२॥

शब्दार्थ—मेलि=डालकर। वर्ण=(१) रंग (२) जाति।

व्याख्या—राजा जनक अपने साथ आए हुए लोगों को विश्वामित्र का विशेष परिचय दे रहे हैं।

यह वही विश्वामित्र हैं जिन्होंने अपने शरीर रूपी स्वर्ण को तपस्या रूपी अग्नि में डालकर उत्तम वर्ण कर लिया है। [जिस प्रकार अग्नि में तपकर सोना खरा हो जाता है उसी प्रकार तपस्या की अग्नि में अपने को तपाकर ये उत्तम वर्ण वाले—क्षत्रिय से ब्राह्मण—हो गए हैं।]

अलंकार—श्लेष से पुष्ट रूपक।

[मोहन छन्द]

लक्ष्मण—जनराजवंत। जगयोगवंत
तिनको उदोत। केहि भाँति होत ॥१०३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—राजवंत = राज-वैभव में अनुरक्त । योगवंत = योग-साधना करने वाले ।

व्याख्या—राजा जनक का परिचय सुनकर लक्ष्मणजी को संदेह होता है । वे प्रश्न करते हैं—जो लोग राज-वैभव में अनुरक्त रहते हुए योग-साधना करते हैं उनके व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है ? (क्योंकि वैभव-विलास और योग-साधना दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं ।)

श्रीराम—

[विजय छन्द]

सब छत्रिन आदि दै काहु छुई न छुये बिजनादिक वात डगै ।
न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तमतेज भगै ।
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
जलहू थलहूँ परिपूरण श्री निमि के कुल अद्भुत ज्योति जगै ।१०४।

शब्दार्थ—बिजनादिक = पंखा आदि । वात = हवा । डगै = विचलित होती है । भव-भूषण = (भव = शंकर) शंकर का भूषण = राख । मसी = कालिमा ।

व्याख्या—भगवान् राम, लक्ष्मण की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं—हे लक्ष्मण ! महाराज जनक निमिवंश के हैं । इस वंश में अद्भुत ज्ञान-ज्योति प्रकाशित है । यह ज्योति (ज्ञान का प्रकाश) सर्वत्र (जलहू थलहू) समान रूप से व्याप्त है । इस ज्योति को प्रारम्भ से ही क्षत्रियों में किसी ने भी स्पर्श तक नहीं किया है (ज्ञान-साधना क्षत्रियों का कर्म नहीं रहा है केवल निमि के कुल में ही ज्ञानी साधक और योगी होते आए हैं ।) सामान्य दीप-ज्योति पंखे की हवा लगने से झलमला जाती है किन्तु यह (ज्ञान-ज्योति) ऐसी ज्योति है जिस पर पंखे आदि की वायु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता (वासना के झोंके उसे विचलित नहीं कर पाते) । सामान्य दीप-ज्योति दिन के प्रकाश में मन्द पड़ जाती है और रात्रि में अधिक प्रकाश करती है किन्तु निमिवंश में प्रदीप्त ज्ञान-ज्योति सदैव (रात-दिन) एक रस ज्योति विकीर्ण करती है जिसके तेज से तीनों लोकों का अज्ञानांधकार दूर हो जाता है । साधारण दीप-ज्योति में (भव-भूषण) राख भी (गुल) मिली रहती है किन्तु इस ज्ञान-ज्योति पर सांसारिक वैभव (भव-भूषण) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । सामान्य दीप-ज्योति में श्यामता भी होती है किन्तु इस ज्ञान-ज्योति में वैभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हाथी-घोड़े, लाव-लश्कर आदि वैभव की वस्तुओं का गर्व) के गर्व की श्यामता कभी नहीं लगती (निमिवंशीय राजा सच्चे ज्ञानसाधक हैं उन्हें अपने राज-वैभव का अहंकार कभी नहीं होता)। इस प्रकार वंश-परम्परा से राजा जनक राज-वैभव और ज्ञान-साधना दोनों का समन्वित विकास करने में समर्थ हैं।

अलंकार—व्यतिरेक।

[तारक-छन्द]

जनक—यह कीरति और नरेशन सोहै।
सुनि देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिए ऋषिराई।
गव गाँउँ छ सातक की ठकुराई ॥१०५॥

शब्दार्थ—अदेव = असुर। बपुरा = बेचारा।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

अलंकार—लोकोक्ति।

विश्वामित्र— [विजय-छन्द]

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपति की तुमहीं धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई।
केशव भूषन को भवि भूषण भू तन तें तनया उपजाई ॥१०६॥

शब्दार्थ—भुव = भू, पृथ्वी। विदेह = जीवन-मुक्त। भूषण की भवि-भूषण—अलंकारों का भी भव्य अलंकार। भू-तन तें = पृथ्वी से।

व्याख्या—विश्वामित्रजी जनकजी की प्रशंसा में कहते हैं—अपनी-अपनी स्थानीय सीमा में तो सभी राजा सदैव पृथ्वी का पालन करते रहते हैं किन्तु वे केवल कहने के लिए भू-पाल हैं। वस्तुतः उनसे भू पालन होता नहीं। आप ही एक ऐसे समर्थ व्यक्ति हैं कि शरीरधारी भूपति होकर भी मुक्त साधकों (जिन्हें शरीर जन्य वासनायें आकर्षित नहीं करतीं) में अपनी कीर्ति का प्रसार करते हैं और सच्चे अर्थों में (जिस रूप में एक समर्थ पति को अपनी परिणीता पत्नी का पालन करना चाहिए) भू-पालन करते हैं क्योंकि एकमात्र आपने ही भूषणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को भी अलंकृत करने वाली (अत्यन्त सुन्दर) तनया पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न की हैं।

अलंकार—विधि, विरोधाभास।

जनक—[दो०] इहि विधि की चित चातुरी, तिनको कहा अकत्थ।
लोकन की रचना रुचिर, रचिबे कौं समरत्थ ॥१०७॥

शब्दार्थ—अकत्थ = अकथनीय। चित-चातुरी = बुद्धिमत्ता।

व्याख्या—सरल है।

[दोधक-छन्द]

ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुन्दर श्यामल गौर विराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला विमला पति कोऊ ॥१०८॥

शब्दार्थ—सोदर = सहोदर। कमला-पति = विष्णु। विमलापति = ब्रह्मा।

व्याख्या—जनकजी राम और लक्ष्मण को देख सहज जिज्ञासा से प्रश्न करते हैं—

सुन्दर श्याम और गौर वर्णवाले शोभा से युक्त ये किसके पुत्र हैं ? हमारे हृदय में ऐसी प्रतीति हो रही है कि ये दोनों सहोदर भाई हैं या साक्षात् विष्णु और ब्रह्मा हैं।

अलंकार—सन्देह।

विश्वामित्र— [चौपाई]

सुन्दर श्यामल राम सु जानो। गौर सुलक्ष्मण नाम बखानो ॥
आशिष देहु इन्हैं सब कोऊ। सूरज के कुलमंडन दोऊ ॥१०९॥

शब्दार्थ—सूरज के कुलमण्डन दोऊ = ये दोनों सूर्यकुल (रघुवंश) को मण्डित करने वाले हैं।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] नृपमणि दशरथ नृपनि के, प्रगटे चारि कुमार।
राम भरत लक्ष्मण ललित, अरु शत्रुघ्न उदार ॥११०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—नृपनि के = राजाओं के। नृपमणि = राजाओं में मणि-रूप।

व्याख्या—सरल है।

[घनाक्षरी]

दानिन के शील, पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिए सुभाय के।
दीप दीप हूँ के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के।
आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदारप्रिय साधु मन वच काय के।
देहधर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के॥१११॥

शब्दार्थ—दानिन के शील = दानियों जैसी उदारता। शील = चरित्र। पर दान के प्रहारी दिन = प्रतिदिन शत्रुओं से कर रूप दान लेने वाला। दानवारि = विष्णु। कन्द = बादल, वर्षा करने वाले। आनन्द के कन्द = आनन्द की वर्षा करने वाले। परदार प्रिय = पृथ्वी को प्रिय; लक्ष्मी को प्रिय। देहधर्मधारी = शरीरी।

व्याख्या—विश्वामित्र जी राम और लक्ष्मण का परिचय देते हुए कहते हैं कि ये बालक संसार में विख्यात दानशीलों (शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि) के समान उदार हैं। शत्रुओं से सदैव कर रूप दान लेने वाले हैं। विष्णु के समान इनका स्वभाव है। (ये सबका पोषण करना चाहते हैं)। ये सात दीपों के राजाओं के भी राजा हैं। राजा पृथु के समान ये चक्रवर्ती हैं। ये गायों और ब्राह्मणों के सेवक हैं। आनन्द की वर्षा करने वाले हैं। इन्द्र के समान (वैभव-सम्पन्न और देव-हितैषी) हैं। लक्ष्मी को प्रिय हैं, मनसा वाचा कर्मणा साधु हैं। यद्यपि ये शरीरी हैं (अवतारी होने के कारण) किन्तु इन्द्रियों के वशवर्ती न होने के कारण जीवन मुक्तों (विदेहों के समान) के समान हैं। इन अनेक गुणों से युक्त ये महाराज दशरथ के राजकुमार हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकार—विरोधाभास।

[तार छंद]

रघुनाथ कहाँ शराशन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राजसमाजनि लेख्यो।
जनक—ऋषि है वह मंदिर माँझ मँगाऊँ।
गहि ल्यावहि हौं जनयूथ बुलाऊँ ॥११२॥

शब्दार्थ—लेख्यो = समझा गया। दुष्कर = कठोर। जन-यूथ = वीरों का दल।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[दंडक छन्द]

ब्रज तें कठोर है, कैलास तें विशाल, काल-
दंड तें कराल, सब काल काल गावई।
केशव त्रिलोक के विलोक हारे देव सब,
छोड़ चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई?
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि-पर्वत-प्रभा न मान पावई।
विनायक एकहू पै आवै न पिनाक ताहि,
कोमल कमलपाणि राम कैसे ल्यावई ॥११३॥

शब्दार्थ—सब काल काल गावई = सब लोग उसे काल का भी काल कहते हैं। चन्द्रचूड़ = भगवान् शंकर। पन्नग प्रचण्ड पति प्रभु = प्रचण्ड पन्नगों के स्वामी = वासुकि। पीन = पुष्ट। पनच = प्रत्यञ्चा। पर्व-तारि = इन्द्र। पर्वत प्रभा = दैत्य। मान = अन्दाज़। विनायक एक = प्रमुख-विनायक = गणेश।

व्याख्या—जनकजी शंकर के धनुष की कठोरता का वर्णन करते हैं—शंकर का धनुष इन्द्र के बज्र से भी कठोर हैं। कैलाश पर्वत से भी विशाल है। यमदंड से भी भीषण है; सब लोग उसे काल का भी काल कहते हैं। तीनों लोकों के समस्त देवता जिसे देखकर ही हिम्मत हार बैठे हैं। भगवान् शंकर के अतिरिक्त भला उसकी प्रत्यञ्चा कौन चढ़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है ? उसमें प्रचण्ड सर्पराज वासुकि की पुष्ट प्रत्यञ्चा लगी हुई है। स्वयं इन्द्र और दैत्य भी उसकी गुरुता का अन्दाज नहीं लगा पाते। गणेश जी द्वारा भी वह भीषण पिनाक (धनुष) नहीं लाया जा सकता। भला उसे कमल तुल्य सुकुमार हाथों वाले राम कैसे उठा सकते हैं।

[तोमर]

विश्वामित्र—सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिए इक वार॥
पुनि बेगि ताहि चढ़ाव। यश लोक बढ़ाव॥११४॥

शब्दार्थ—इकवार = एक ही वार में। बीच में कहीं न रखकर।

व्याख्या—सरल है।

धनुष-भंग

[दो०] ऋषिहि देखि दृरष्यो हियो, राम देखि कुम्हलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाइ॥११५॥

शब्दार्थ—ऋषिहि = विश्वामित्र। चिन्ता चित्त डोलाइ = चिन्ता से चित्त चंचल हो रहा है।

व्याख्या—राजा जनक की मनःस्थिति का वर्णन किया गया है। राजा जनक जब ऋषि विश्वामित्र की ओर देखते हैं तो उनका हृदय हर्ष से पुलकित हो उठता है (वे सोचते हैं कि तपबल से ऋषि विश्वामित्र निश्चय ही राम को शक्ति युक्त कर देगें) किन्तु जब वे राम की ओर देखते हैं तब (राम की सुकुमारता के कारण) उनका मन मलीन हो जाता है। फिर जब वे धनुष की ओर देखते हैं (उसकी विशालता, गुरुता और कठोरता की कल्पना करते हैं) तो भयभीत हो उठते हैं। इस प्रकार चिन्ता से उनका चित्त चंचल हो रहा है।

अलंकार—पर्याय।

[स्वागता छन्द]

रामचंद्र कटि सों पटु बाँध्यो। लीलयेव हर को धनु साँध्यो॥
नेकु ताहि करपल्लव सों छ्वै। फूलमूल जिमि टूक कर्‌यो द्वै॥११६॥

शब्दार्थ—लीलयेव = खिलवाड़ में ही। छ्वै = छूकर।

व्याख्या—सरल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सवैया]

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जु हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवन्त कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो।
ऐंचो जहीं तवहीं कियो संयुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभु को साँचो शरासन की नो।११७।

शब्दार्थ—उत्तम गाथ = उत्तम है गाथा जिसकी (शंकर का धनुष लोक विश्रुत था। इसलिए उसे 'उत्तम गाथ' कहा गया) निर्गुण = गुण रहित, प्रत्यञ्चारहित। गुणवंत = गुण सहित, प्रत्यञ्चा युक्त। ऐंचो = खींचा।

व्याख्या—जिस समय जगत् प्रसिद्ध (उत्तम गाथ) शंकर-धनुष को भगवान् राम ने उठाकर हाथ में ले लिया उस समय वह सनाथ हो गया। (अब तक किसी के द्वारा न उठाये जाने के कारण मानो वह धनुष अनाथ था) जब उस पर डोरी चढ़ा दी (निर्गुण ते गुणवन्त कियो) तो अनन्त सन्तों को परम हर्ष हुआ। (असन्त जन राम के इस कृत्य पर हर्षित नहीं हुए) जिस समय उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी उसी समय मानो उसे अपने तीक्ष्ण कटाक्ष-बाणों से युक्त कर दिया। (धनुष की डोरी खींचते समय स्वभावतः खींचनेवाले की दृष्टि धनुष-दण्ड के मध्य भाग में केन्द्रित हो जाती है। कवि इसी स्वाभाविक मुद्रा की कल्पना करता हुआ कहता है कि शंकर के धनुष की डोरी खींचते समय भगवान् राम ने उस पर अपने कटाक्ष-बाणों का संधान भी कर दिया) इस प्रकार राजकुमार राम ने उसे स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखकर सच्चे अर्थों में शरासन बना दिया। (अब तक शर-सन्धान न किये जाने के कारण शंकर का धनुष कहने के लिए ही शरासन था किन्तु कटाक्ष-बाणों का सन्धान करके राम ने सच्चे अर्थों में शर का आसन (शरासन) बना दिया।)

अलंकार—विधि।

[विजया छन्द]

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मुद
चंड कोदंड रह्यो मंडि नव खंड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल वल
पालि ऋषिराज के वचन परचंड को।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोधु दै ईश, बोधु जगदीश को,
क्रोधु उपजाइ भृगुनंद बरिबंड को।
बाधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग, धनु-
भंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्मांड को ॥११८॥

शब्दार्थ—झुकि = क्रुद्ध होकर। कोदण्ड = धनुष। चण्ड = प्रचण्ड, कठोर। अचला = पृथ्वी। धालि = नष्ट करके, तोड़कर। सोधु = सूचना। ईश = महादेव। जगदीश = विष्णु। बाधि = बाधा पहुँचाकर। अपवर्ग = मोक्ष। साधि = प्राप्त करना।

व्याख्या—महादेव के उस प्रचण्ड धनुष की प्रथम टंकार संसार का दर्प चूर्ण करके नवों खण्डों (इला, रमणक, हिरण्य, कुरु, हरि, वृष, किंपुरुष, केतुमाल, भरत) में व्याप्त हो गई। धनुष भंग होने का वह कठोर रव अचल-पृथ्वी को प्रकम्पित करके, दिग्पालों के बल को नष्ट करके, ऋषि-राज विश्वामित्र की आज्ञा-पूर्ति करके, महादेव को सूचना देकर (यह सूचित करके कि आपका धनुष टूट गया अर्थात् उस प्रचण्ड टंकार को सुनकर महादेव ने समझ लिया कि हमारा धनुष खण्डित हो गया) भगवान विष्णु को आश्वस्त करके, उग्र और बली भृगुनन्दन परशुराम को क्रुद्ध करके (टंकार सुनकर परशुरामजी को धनुष टूटने का विश्वास हुआ और इससे उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ) स्वर्ग के नैत्यिक क्रिया-कलापों में विघ्न पहुँचाकर और ऋषि-दधीचि की हड्डियों को मुक्ति दिलाकर (यह धनुष दधीचि की हड्डियों से निर्मित था। धनुष के टूटने से मानो उन हड्डियों को मोक्ष प्राप्त हो गया) ब्रह्माण्ड को भेदता हुआ अन्तरिक्ष में चला गया।

अलंकार—सहोक्ति।

जनक—[दो०] सतानंद आनंद मति, तुम जो हुते उन साथ।
बरज्यो काहे न धनुष जब, तोर्‌यो श्रीरघुनाथ ॥११९॥

शब्दार्थ—आनन्द मति = प्रसन्न स्वभाववाले। हुते = थे। बरज्यो = रोका।

व्याख्या—सरल है।

[तोमर]

सतानंद—सुनु राजराज विदेह। जब हौं गयो वहि गेह।
कछु मैं न जानी बात। कब तोरियो धनु तात ॥१२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—राजराज=राजाओं के राजा। विदेह=जनक।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[दो०] सीताजू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबन की, हृदयावलि भूपाल ॥१२१॥

शब्दार्थ—अमल=विमल, स्वच्छ।

व्याख्या—धनुष भंग होने पर सीताजी भगवान् राम को स्वच्छ कमलों की जयमाल पहना दी। जयमाल क्या थी मानो सभी भूपालों की हृदयावली थी।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[चित्रपदा छंद]

सीय जहीं पहिरायी। रामहि माल सुहायी।
दुन्दुभि देव बजाये। फूल तहीं बरसाये ॥१२२॥

शब्दार्थ—जहीं=ज्योंहीं। तहीं=त्योंही।

व्याख्या—सरल है।

बरात आगमन

[दो०] पठई तबहीं लगन लिखि, अवधपुरी सब बात।
राजा दशरथ सुनतहीं, चाह्यो चली बरात ॥१२३॥

शब्दार्थ—लगन=लग्न-पत्रिका।

व्याख्या—सरल है।

[मोटनक छंद]

आये दशरत्थ बरात सजे। दिगपाल गयंदनि देखि लजे।
चार्‌यों दल दूलह चारु बने। मोहे सुर औरनि कौन गनै ॥१२४॥

शब्दार्थ—गयंदनि=हाथी।

व्याख्या—महाराज दशरथ बारात सजाकर जनकपुर आये। बारात के हाथी इतने विशाल थे कि उन्हें देखकर दिग्पाल भी लजित हो गये। चारों दूल्हों के लिए (राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) सारी बारात चार दलों में विभक्त कर दी गई थी। इस प्रकार चारों दलों में सुन्दर दूल्हे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभित थे। उनकी शोभा देखकर देवता गण भी मुग्ध हो गये औरों की क्या बात कही जाय?

[तारक छंद]

बनि चारि बरात चहूँ दिशि आयी।
नृप चारि चमू अगवान पठायी॥
जनु सागर को सरिता पगु धारी।
तिनके मिलिबे कहँ बाँह पसारी॥१२५॥

शब्दार्थ—चमू = सेना। पगुधारी = पदार्पण किया।

व्याख्या—चारों दिशाओं से चार सजी हुई बारातें आईं। महाराज जनक ने चारों के स्वागत के लिए चारों दिशाओं में चार सेनायें भेजीं। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि सागर से मिलने के लिए (जनकपुर को सागर के रूप में कल्पित किया है) नदियाँ उमड़ पड़ी हैं (बारातों को नदियों के रूप में कल्पित किया है) और उन नदियों को भेंटने के लिए सागर ने अपनी बाहें फैला दी हैं। (महाराज जनक के द्वारा चारों दिशाओं में अगवानी के लिए भेजी गई सेनाएँ ही सागर की फैली हुई बाहों के रूप में कल्पित हैं।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] बारोठे को चार करि, कहि केशव अनुरूप।
द्विज दूलह पहिराइयो, पहिराए सब भूप॥१२६॥

शब्दार्थ—बारोठा = (द्वार + कोष्ठ) द्वार। बारोठे को चार = द्वाराचार, द्वारपूजा।

व्याख्या—महाराज जनक ने द्वाराचार करके दूल्हों, ब्राह्मणों तथा बारात में आये हुए सभी राजाओं को यथायोग्य नवीन वस्त्र पहनाया।

[त्रिभंगी छंद]

दशरत्थ सँघाती सकल बराती बनि बनि मंडप माँह गये।
आकाश विलासी प्रभा प्रकाशी जलज गुच्छ जनु नखत नये।
अति सुंदर नारी सब सुखकारी मंगल गारी देन लगीं।
बाजे बहु बाजत जनु घन गाजत जहाँ तहाँ शुभ शोभ जगीं॥१२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—संघाती = साथी । आकाश विलासी = आकाश में विलसित होनेवाला । जलज = मोती । शुभ शोभ जगीं = सुन्दर शोभा से मण्डित ।

व्याख्या—जनवासे से सज-धजकर महाराज दशरथ के साथ आए हुए सभी साथी राजा लोग विवाह-मंडप में गए । विवाह मंडप बहुत ही ऊँचा था । (आकाश में विलसित हो रहा था) उसमें आभा प्रकाशित हो रही थी । मोतियों के गुच्छे इस प्रकार शोभित थे मानो आकाश में नवीन नक्षत्र उदित हो गए हों । सुन्दरी स्त्रियाँ सुखद और मंगल की भावना से युक्त गारी गाने लगीं । विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था मानो घन-गर्जना कर रहे हों । सारा मंडप शुभ सौन्दर्य से मंडित था ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

[दो०] रामचंद्र सीता सहित, शोभित हैं तेहि ठौर ।
सुबरणमय मणिमय खचित, शुभ सुंदर सिर मौर ॥१२८॥

शब्दार्थ—सुबरणमय = स्वर्णमय । खचित = चित्रित ।

व्याख्या—उस सुन्दर मंडप में सीताजी के साथ भगवान् रामचन्द्र शोभित हैं । उनके सिर पर स्वर्ण-निर्मित तथा मणि-खचित मुकुट शोभा दे रहा है ।

नोट—मंडप के वर्णन में मोतियों की झालर को नक्षत्रों के रूप में कल्पित करने के बाद रामचन्द्र को 'चन्द्र' रूप में तथा 'सीता' को शीतकर या ताप हरण करनेवाली चाँदनी (जो चन्द्रमा से अभिन्न है) के रूप में कल्पित करने पर महाकवि केशव की काव्य-कला का अनुमान लगाया जा सकता है ।

अलंकार—परिकरांकुर ।

विवाह

[षट्पद] चारण विद्वान

बैठे मागध सूत विविध विद्याधर चारण ।
केशवदास प्रसिद्ध सिद्ध शुभ अशुभनिवारण ।
भरद्वाज जावालि अत्रि गौतम कश्यप मुनि ।
विश्वामित्र पवित्र चित्र मति वामदेव पुनि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब भाँति प्रतिष्ठित निष्ठमति तहँ वसिष्ठ पूजत कलश।
शुभ शतानंद मिलि उच्चरत शाखोच्चार सबै सरस ॥१२९॥

शब्दार्थ—सूत = चारणों की एक जाति। विद्याधर = देवयोनि की एक जाति; विद्वान। चित्रमति = (चित्र = विचित्र) विचित्र बुद्धिवाले। निष्ठमति = उत्तम बुद्धिवाले; निष्ठायुक्त मतिवाले।

व्याख्या—सरल है।

[अनुकूल छंद]

पावक पूज्यो समिध सुधारी।
आहुति दीनी सब सुखकारी।
दै तव कन्या बहु धन दीन्हों।
भाँवरि पारि जगत यश लीन्हों ॥१३०॥

शब्दार्थ—समिध—यज्ञ की लकड़ी। भाँवरि पारि = विवाह के समय अग्नि की परिक्रमा करके।

व्याख्या—स्पष्ट और सरल है।

[स्वागता छंद]

राजपुत्रिकनि सों छवि छाये। राज राज सब डेरहि आये।
हीर चीर गज वाजि लुटाये। सुंदरीन बहु मंगल गाये ॥१३१॥

शब्दार्थ—सों = सहित। राजराज = महाराज दशरथ।

व्याख्या—सरल है।

शिष्टाचार

[सो०] वासर चौथे याम, सतानंद आगू दिये।
दशरथ नृप के धाम, आये सकल विदेह बनि ॥१३२॥

शब्दार्थ—आगू = आगे किये हुए। धाम = यहाँ जनवासे से तात्पर्य है।

व्याख्या—दिन के चौथे प्रहर गुरु सतानन्द को आगे करके जनकजी तथा उनके अन्य साथी आनन्द के कारण आत्मविस्मृति की-सी स्थिति में महाराज दशरथ के डेरे पर (जनवासे में) आए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] आगे ह्वै दशरथ लियो, भूपति आवत देखि।
राज राज मिलि बैठियो, ब्रह्मब्रह्म ऋषि लेखि ।।१३३।।

शब्दार्थ—राज राज मिलि बैठियो = राजा लोग राजाओं के समाज में बैठे। ब्रह्म ब्रह्मऋषि लेखि = ब्रह्मर्षि लोग ब्रह्मर्षियों को देखकर उनके समाज में बैठे।

व्याख्या—जनकजी को आते हुए देखकर महाराज दशरथ ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। राजा लोग राज-समाज में तथा ब्रह्मर्षि गण ब्रह्मर्षियों में बैठे।

अलंकार—सम।

जनक— [सवैया]

सिद्ध समाज सजैं अजहूँ न कहूँ जग योगिन देखन पायी।
रुद्र के चित्त समुद्र बसै नित ब्रह्महु पै बरणी जो न जायी।
रूप न रंग न रेख बिसेख अनादि अनंत जो वेदन गायी।
केवल गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत देखायी ।।१३४।।

शब्दार्थ—सजैं = सजाते हैं; लगाते हैं। चित्त-समुद्र = चित्तरूपी समुद्र।

व्याख्या—जनकजी रामचन्द्रजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—जिस ज्योति का दर्शन करने के लिए सिद्ध लोग आज भी समाधि लगाते हैं; जिसे संसार में योगियों ने कहीं भी नहीं देखा; जो सदैव भगवान् रुद्र के चित्त रूपी समुद्र में निवास करती है; (अर्थात् जिसे भगवान् रुद्र अपने चित्त में बराबर बसाये हुए) स्वयं ब्रह्माजी भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते; जिसका न कोई विशेष रूप है, न रंग है, न रेखा है और वेद भी जिसको अनादि अनन्त कहते हैं; (निश्चयात्मक निरूपण नहीं करते) उसी ज्योति को (राम के रूप में) गाधि पुत्र ऋषि विश्वामित्र ने हमें प्रत्यक्ष दिखा दिया।

अलंकार—निदर्शना।

[तारक-छन्द]

जिनके पुरिखा भुव गंगहि ल्याये।
नगरी शुभ स्वर्ग सदेह सिधाये ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनके सुत पाहन ते तिय कीनी। भ्रम में डाल दिया है।
हर को धनुभंग भ्रमें पुर तीनी ॥१३५॥

शब्दार्थ—नगरी=सम्पूर्ण नगरी के साथ। अदेव=राक्षस, असुर। बपुरा=बेचारा। पुरन्दर=इन्द्र।

व्याख्या—इन पंक्तियों में जनकजी महाराज दशरथ की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

जिनके पूर्वजों ने तप बल से पृथ्वी पर गंगा का अवतरण कराया; जिनके पूर्व-पुरुष (महाराज हरिश्चन्द्र) ने सम्पूर्ण नगरी के साथ सदेह स्वर्ग प्रस्थान किया; जिनके पुत्र (राम) ने प्रस्तर को स्त्री (अहल्या) रूप में परिणत कर दिया, और भगवान् शंकर के धनुष को भंग करके तीनों लोकों को भ्रम में डाल दिया (आश्चर्यचकित कर दिया) जिसने स्वयं अनेक असुरों का संहार किया है और सदैव इन्द्र की रक्षा की है, जिनकी महिमा का अनुमान शेष भगवान् भी नहीं कर पाते; उन महाराज दशरथ के गौरव और महत्व के सामने भला मैं क्या हूँ? उनका यशोगान तो देवताओं ने भी किया है।

जिन आपु अदेव अनेक सँहारे।
सद काल पुरंदर के रखवारे।
जिनकी महिमाहि अनंत न पायो।
हम को बपुरा यश वेदनि गायो ॥१३६॥
बिनती करिए जन को जिय लेखो।
दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजुहु देखो।
यह जानि हिये ढिठई मुख भाषी।
हम हैं चरणोदक के अभिलाषी ॥१३७॥

शब्दार्थ—बिनती करिए=मैं निवेदन कर रहा हूँ। जन जो जिय लेखो=यदि आप हृदय से अपना सेवक मानते हैं। दुःख देख्यो=कष्ट किया। ढिठई=धृष्टता से भरी हुई बात।

व्याख्या—महाराज जनक शिष्टाचार पूर्वक महाराज दशरथ को भोजन के लिए निमन्त्रित कर रहे हैं।

मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ। यदि आप हृदय से मुझे अपना सेवक मानते हैं तो (मेरा निवेदन स्वीकार करके) जिस प्रकार कल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nāria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(हमारे महल तक चलने का) कष्ट किया था वैसे ही आज भी कष्ट कीजिए (आज भी हमारे महल तक चलने की कृपा कीजिए) आपकी कृपा समझकर ही मैंने यह धृष्टतापूर्ण वाणी मुख से प्रकट की है। हम सब लोग आपका चरणोदक लेना चाहते हैं।

अलंकार—पर्यायोक्ति।

[तामरस छंद]

जब ऋषिराज विनय करि लीनों।
सुनि सब के करुणा रस भीनों।
दशरथ राय यहै जिय जानी।
यह वह एक भई रजधानी ॥१३८॥

शब्दार्थ—ऋषिराज = राजर्षि = जनक। लाला भगवानदीन ने (ऋषि + राज) करके ऋषि सतानन्द और राजा जनक अर्थ किया है।

व्याख्या—जब राजर्षि जनक ने निवेदन कर लिया तब उनकी विनम्रतापूर्ण वाणी सुनकर सबका हृदय द्रवीभूत हो गया। महाराज दशरथ ने तो यही मान लिया कि अब अयोध्या और मिथिला (यह वह) में कोई भेद नहीं है। दोनों राज्य एक हो गये हैं।

दशरथ–[दो०] हमको तुम से नृपति की, दासी दुर्लभ राज।
पुनि तुम दीनी कन्यका त्रिभुवन की सिरताज ॥१३९॥

शब्दार्थ—सिरताज = श्रेष्ठ, शिरोमणि।

व्याख्या—महाराज दशरथ भी मर्यादा पूर्ण शब्दों में जनकजी को सम्मान देते हुए कहते हैं।

महाराज! आप जैसे यशस्वी राजा के कुल की सामान्य दासी भी हमारे लिए अप्राप्य थी। आपने तो कृपापूर्वक त्रिभुवन में श्रेष्ठ अपनी कन्या प्रदान की है। इससे हमारी प्रतिष्ठा में वृद्धि ही हुई है।

[विजय छंद]

वसिष्ठ—

एक सुखी यहि लोक बिलोकिए हैं वहि लोक निरै पगु धारी।
एक इहाँ दुख देखत फेशव होत वहाँ सुरलोक-विहारी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक इहाँऊ उहाँ अति दीन सो देत दुहूँ दिशि के जन गारी।
एकहि भाँति सदा सब लोकनि है प्रभुता मिथिलेश तिहारी।
॥१४०॥

शब्दार्थ—निरै=(सं० निरय) नरक। निरै पगुधारी=नरक में जाकर।

व्याख्या—वशिष्ठ जी महाराज जनक की प्रशंसा में कहते हैं—कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो इस संसार में सुखी रहते हैं किन्तु परलोक में जाकर नरक में प्रवेश करते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो यहाँ तो दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं किन्तु परलोक में जाकर स्वर्ग का सुख प्राप्त करते हैं। कुछ ऐसे जन भी होते हैं जो यहाँ और वहाँ (इस लोक और परलोक) दोनों ही लोकों में दुःखी रहते और दोनों लोकों में निंदित होते है। हे मिथिलेश! आपका प्रभुत्व सर्वत्र (इस लोक और परलोक दोनों में) सभी कालों में एक-सा मान्य है।

जाबालि—

ज्यों मणि में अति ज्योति हुति रवि ते कछु और महाछवि छायी।
चंद्रहि वंदत है सब केशव ईश ते वंदनता अति पायी।
भागीरथी हुतिय अति पावन बावन ते अति पावनतायी।
त्यों निमिवंश बड़ोई हुतो भइ सीय सँयोग बड़ीये बढ़ाई ॥१४१॥

शब्दार्थ—ईश=महादेव। वंदनता=वंदनीयता। भागीरथी=गंगा। हुतियै=थी ही। बावन=भगवन् विष्णु का एक रूप; वामन। हुत्यो=था। बड़ीये=अत्यधिक।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] पूजि राज ब्रह्म ऋषि, दुंदुभि दीन्हि बजाइ।
जनक जनक-मंदिर गये, गुरु समेत सुख पाइ ॥१४२॥

शब्दार्थ—राजऋषि=राजा दशरथ तथा उनके साथी राजा। ब्रह्मऋषि=वशिष्ठ, जाबालि, वामदेव आदि। दीह=दीर्घ। कनक-मंदिर='कनक भवन'। महाराज जनक के राजमहल का नाम। गुरु समेत=सतानंदजी के साथ।

व्याख्या—सुगम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जेंवनार

[चामर छन्द]

आसमुद्र के छितीश और जाति को गने।
राजभौन भोज को सबै जने गये बने।
भाँति भाँति अन्नपान व्यंजनादि जेंवहीं।
देत नारि गारि पूरि भूरि भूरि भेवहीं ॥१४३॥

शब्दार्थ—आसमुद्र = समुद्र पर्यन्त। छितीश = राजा। बने = सजकर। भेव = भेद। पूरि = पूर्ण, युक्त। पूरि भूरि-भूरि भेवहीं = विविध प्रकार के भेद भरी बातों से पूर्ण।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[हरिगीत छन्द]

अब गारि तुम कहँ देहिं हम कहि कहा दूलह राम जू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुबाम जू।
को गनै कितने पुरुष कीन्हें कहत सब संसार जू।
सुनि कुँवर चित्त दै बरणि ताको कहिय सब व्यौहार जू ॥१४४॥

शब्दार्थ—प्रिय परदार = परदार प्रिय (पर स्त्री के प्रेमी) करी = कर लिया। कुबाम = (१) बुरी (२)'(कु = पृथ्वी; बाम = स्त्री) पृथ्वी रूपी स्त्री।

व्याख्या—प्रसिद्ध है कि यह 'गारी' केशवदासजी की प्रिय शिष्या प्रवीणराय पातुर ने लिखी है। उसी के आग्रह पर पर केशव ने इसे 'रामचन्द्रिका' में स्थान दिया है। इसलिये इस 'सप्त छन्द मय गारी' में केशव के नाम की छाप नहीं है।

हे दूलह राम! किन शब्दों में तुम्हें गाली दूँ। आपके पिता (महाराज दशरथ) के विषय में सुना जाता है कि वे कुछ पर स्त्री-प्रेमी हैं और उन्होंने एक बुरी (आचरण भ्रष्ट) स्त्री को रख लिया है। (पृथ्वी को पत्नी बना लिया है; वे भूपति हैं) उस कुबामा (पृथ्वी) ने आजतक न जाने कितने पुरुषों को वरण किया है। यह बात संसार के सभी लोग कहते हैं (यह कुकर्म संसार में कुख्याति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त कर चुका है) । [पृथ्वी अनादि काल से न जाने कितने भूपतियों द्वारा शासित हुई है । इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर उपर्युक्त व्यंग्य किया गया है] हे कुँवर ! ध्यान पूर्वक सुनें हम उसका सारा आचरण प्रकट करती हैं।

अलंकार—श्लेष ।

वहु रूप सों नवयोवना वहु रत्नमय वपु मानिए।
पुनि वसन रत्नाकर वन्यो अति चित्त चंचल जानिए।
सुभ सेष फन मनिमाल पलिका परति करति प्रबंध जू।
करि सीस पच्छिम, पाँय पूरव गात सहज सुगंध जू ॥१४५॥

शब्दार्थ—सों, स्यों=सहित। वपु=शरीर। रत्नाकर=(१) समुद्र। (२) रत्नयुक्त।

व्याख्या—पृथ्वी को स्त्री रूप में कल्पित करके निम्नलिखित व्यंगोक्ति की गई है।

आपके पिता की वह रखैल (कुवामा) रूप और यौवन से युक्त है। उसका शरीर विविध रत्नों से पूर्ण है (पृथ्वी रत्नगर्भा और वसुन्धरा है) उसका वस्त्र रत्नजटित है। (समुद्र को पृथ्वी का वस्त्र कल्पित किया जा सकता है क्योंकि वह समुद्र-वेष्टित है।) उसका चित्त बड़ा ही चंचल है। (इसीलिए वह अनेक पुरुषों को वरण करती रही है) वह शेषनाग के फणों की मणियों से जटित पलंग पर पौढ़कर (लेटकर) प्रबन्ध (रचना, सृष्टि) करती है। (पृथ्वी शेष के फण पर स्थित है। इसी स्थिति में रहते हुए वह मानो समस्त सृष्टि-प्रबन्ध करती है) वह अपना शिर पश्चिम और पैर पूर्व की ओर करके लेटती है (पृथ्वी पश्चिम से पूरब की ओर फैली है) उसके शरीर से स्वाभाविक सुगन्धि फूटती रहती है। (गन्ध पृथ्वी का गुण है)।

नोट—पृथ्वी को स्त्री रूप में कल्पित करके एक पुंश्चली स्त्री के सभी लक्षण बड़े कौशल से उस पर घटाये गये हैं। इससे प्रवीण राय की काव्य-प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट समासोक्ति।

वह हरी हठि हरिनाच्छ दैयत देखि सुंदर देह सों।
वरवीर यज्ञवराह बर ही लयी छीनि सनेह सों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ह्वै गई विह्वल अंग पृथु फिरि सजे सकल सिंगार जू।
पुनि कछुक दिन वश भयी ताके लियो सरवसु सार जू ॥१४६॥

शब्दार्थ—दैयत = दैत्य। यज्ञ वराह = बाराह भगवान्। बरही = बलपूर्वक। विह्वल = विह्वल, शिथिल। सरवसु = सर्वस्व।

व्याख्या—उस कुबामा (पृथ्वी) को अब तक कितने लोग भोग चुके हैं, इसका वर्णन किया गया है।

उस कुबामा (जिसे आपके पिता इस समय भोग रहे हैं) को हिरण्याक्ष दैत्य ने सुन्दर देखकर हठ पूर्वक हर लिया। फिर उस पर बाराह भगवान् की कृपा हुई। उन्होंने उस दैत्य से बलपूर्वक उसे (कुबामा को) छीन लिया। बाराह भगवान् के साथ रहते हुए वह शिथिल अंगवाली हो गई। उनके बाद महाराज पृथु ने उसे पुनः साज-सज्जा से युक्त किया। वह उनकी वशवर्त्तिनी होकर कुछ दिनों तक रही और उन्होंने उसका सर्वस्व ले लिया। [वही कुबामा अब आपके पिता की रखैल बनकर रह रही है। इसी ओर व्यंग्य किया गया है।]

वह गयो प्रभु परलोक, कीन्हों हिरणकस्यप नाथ जू।
तेहि भाँति भाँतिन भोगियो भ्रमि पल न छोड्यो साथ जू।
वह असुर श्रीनरसिंह मार्‌यो लई प्रबल छँडाइ कै।
लै दई हरि हरिचंद राजहि बहुत जो सुख पाइ कै ॥१४७॥

शब्दार्थ—प्रभु = पति। हरि = श्री हरि, विष्णु।

व्याख्या—उस पति के (महाराज पृथु के परलोक चले जाने पर उस कुबामा ने हिरण्यकश्यप को पति रूप में वरण किया। उसने उस कुबामा को विविध प्रकार से भोगा और भूलकर एक पल के लिए भी साथ न छोड़ा। उस असुर (हिरण्यकश्यप) को मारकर नृसिंह भगवान् ने बलपूर्वक उस कुबामा को छीन लिया। फिर उनसे लेकर श्री हरि ने उस कुबामा को प्रसन्नता पूर्वक महाराज हरिश्चन्द्र को दे दिया।

हरिचंद विश्वामित्र को दयी दुष्टता जिय जानि कै।
तेहि वरो बलि बरिबंड बरही, विप्र तपसी जानि कै।
बलि बाँधि छल बल लयी वावन, दयी इंद्रहि आनि कै।
तेहि इंद्र तजि पति कर्‌यो अर्जुन सहस भुज को जानि कै ॥१४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—बरिबंड = प्रचण्ड, प्रबल।

व्याख्या—महाराज हरिश्चन्द्र ने उसकी (उस कुबामा की) दुष्टता समझ ली और (उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए ही) उसे विश्वामित्रजी को दे दिया। उस दुष्टा ने विश्वामित्रजी को तपस्वी-ब्राह्मण (अपने लिए सर्वथा अयोग्य) समझकर स्वेच्छा पूर्वक प्रचण्ड शक्तिशाली राजा बलि को वरण कर लिया। वामन भगवान् ने महाराज बलि को छल-बल से बाँधकर उसे छुड़ाया और लाकर इन्द्र को दे दिया। वह दुष्टा यहाँ भी अपने चाल से बाज न आई। उसने इन्द्र को त्यागकर सहस्र भुजावाले अर्जुन (सहस्रबाहु) को स्वीकार कर लिया।

तब तासु छवि मद छक्यो अर्जुन हत्यो ऋषि जमदग्नि जू।
परसुराम सो सकुल जार्‌यो प्रबल बल की अग्नि जू।
तेहि बेर तबहीं सकल छत्रिन मारि मारि बनाइ कै।
इकबीस बेरा दयी विप्रन रुधिर जल अन्हवाइ कै ॥१४९॥

शब्दार्थ—बनाइकै = भली प्रकार से। बेरा – बेर, बार। बेर = बेर।

व्याख्या—उस कुबामा के सौन्दर्य के मद से मस्त होकर सहस्र बाहु ने ऋषि जमदग्नि की हत्या कर दी। पिता की हत्या से कुपित होकर परशुरामजी ने अपने प्रबल प्रताप कीअग्नि में उसे सपरिवार भस्म कर दिया। उसी बैर का स्मरण करके उन्होंने सभी क्षत्रियों को भलीभाँति इक्कीस बार मारकर नष्ट कर दिया और उनके रुधिर के जल से स्नान कराकर (इस प्रकार मानो उस कुबामा को पवित्र करके) उसे ब्राह्मणों को (इक्कीस बार) सौंप दिया।

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।
अरु कहत हैं सब रावणादिक रहे ताकहँ ढूँकि कै।
यहि लाज मरियत, ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू।
अब और मुख निरखैं न ज्यों त्यों राखियो रघुनाथ जू ॥१५०॥

शब्दार्थ—थूँकि कै = घृणा पूर्वक। ढूँकि कै = छिपकर।

व्याख्या—ब्राह्मणों ने भी (उसके आचार से परिचित होने पर) उसे घृणा पूर्वक त्याग दिया। उसी कुबामा (पृथ्वी) को आपके पिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने पत्नी रूप में स्वीकार किया है। कहा जाता है (ऐसी प्रसिद्धि है) कि रावणादि राक्षस उसके लिए ताँक-झाँक लगाये रहते हैं। अब उस कुबामा का नाता (सम्बन्ध) आपसे हो गया (वह आपकी माता हुई) हम यह सोचकर लज्जा से मरी जाती हैं। हे राम ! अब उसे इस प्रकार (यत्न पूर्वक) रखिये कि वह अन्य किसी पर-पुरुष का मुख न देखे।

बरात बिदाई

[सो०] प्रात भये सब भूप, बनि बनि मंडप में गये।
जहाँ रूप अनुरूप, ठौर ठौर सब सोभिजें ॥१५१॥

शब्दार्थ—बनि-बनि = सज-धजकर। रूप-अनुरूप = स्थिति के अनुसार

व्याख्या—प्रातःकाल होने पर सभी राजा लोग सज-धजकर सभा-मण्डप में गये। वहाँ अपनी स्थिति के अनुसार स्थान-स्थान पर वे शोभित हुए।

[नाराच छंद]

रची विरंचि वास सी नितंबराजिका भली।
जहाँ तहाँ बिछावने बने घने थली थली।
बितान श्वेत श्याम पीत लाल नील के रँगे।
मनो दुहूँ दिसान के समान बिंब से जगे ॥१५२॥

शब्दार्थ—नितंब राजिका = खम्भों की अवली। थली-थली = स्थान-स्थान पर।

व्याख्या—सभा-मण्डप में खम्भों की अवली विरचित है। यह अवली पूरे मण्डप को ब्रह्मा के आवास की शोभा प्रदान कर रही है। स्थान-स्थान पर सुन्दर बिछौने बिछाये गये हैं। ऊपर श्वेत, श्याम, पीत, लाल और नील वर्ण के चँदोये तने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नीचे के बिछौनों का प्रतिबिम्ब ऊपर के तम्बुओं (चँदोवों) पर पड़ रहा है और तम्बुओं का प्रतिबिम्ब नीचे के बिछौनों पर पड़ रहा है। सम्भवतः तम्बू और बिछौने दोनों एक दूसरे के अनुरूप रंगों की समानता का ध्यान रखते हुए सजाये गये थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

[पद्धटिका छंद]

गज मोतिन की अवली अपार ।
तहँ कलशन पर उरमति सुढार ।
सुभ पूरित रति जनु रुचिर धार ।
जहँ तहँ अकास गंगा उदार ॥१५३॥

शब्दार्थ—उरमति = लटकती है । सुन्ढार = सुन्दर ।

व्याख्या—मण्डप के कलशों पर (जो मंगल सूचक मानकर सजाये गये थे) गजमुक्ता की लड़ियाँ लटकाई गई हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रीति-विह्वल होकर आकाश-गंगा ही अनेक धाराओं में विभक्त होकर जहाँ-तहाँ शोभित हो रही है ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

गजदंतन की अवली सुदेश ।
तहँ कुसुमराजि राजति सुवेश ।
सुभ नृप कुमारिका करति गान ।
जनु देविन के पुष्पक विमान ॥१५४॥

शब्दार्थ—गजदंतन = प्रांगण की दीवारों में आगे की ओर निकली हुई टोड़ियाँ जिन पर छज्जे निकाले जाते हैं । कुसुमराजि = पुष्पावलियाँ ।

व्याख्या—महल के प्रांगण में गजदन्तों की पंक्ति पर छज्जे बने हुए हैं । उन पर सुन्दर पुष्पावलियाँ रमणीय लग रही हैं । उन छज्जों पर नृप-कन्यायें मंगलगान गा रही हैं । कन्याओं से युक्त ऊँचे छज्जे ऐसे लग रहे हैं मानो देवियों के पुष्पक विमान हों ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

[तामरस छंद]

इत उत शोभित सुंदरि डोलैं ।
अर्थ अनेकनि बोलनि बोलैं ।
सुखमुख मंडल चित्तनि मोहैं ।
मनहुँ अनेक कलानिधि सोहैं ॥१५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सुख = स्वाभाविक । कलानिधि = चन्द्रमा ।

व्याख्या—छज्जों पर इधर-उधर आती-जाती हुई सुन्दरियाँ शोभित हो रही हैं । वे अनेक अर्थों से भरी हुई बातें करती हैं । (केशवदास की मनोवृत्ति के अनुकूल कल्पना है) वे अपने मुखमण्डलों के स्वाभाविक सौन्दर्य से देखने वालों का चित्त मुग्ध कर लेती हैं । ऐसा लगता है कि अनेक चन्द्रमा शोभित हो रहे हैं ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

भृकुटि विलास प्रकाशित देखे ।
धनुष मनोज मनोमय लेखे ।
चरचित हास चंद्रिकनि मानो ।
सुखमुख वासिन वासनि जानो ॥१५६॥

शब्दार्थ—मनोज मनोमय = कामदेव के मन से ही निर्मित । चर्चित = युक्त । सुख मुख वासनि = मुख की स्वाभाविक सुगन्धि से ।

व्याख्या—सुन्दरी स्त्रियों के विविध प्रकार के भ्रू विलास ऐसे लग रहे थे मानो साक्षात् कामदेव के मन के बने हुए धनुष हों । उन युवतियों का हास्य इतना स्निग्ध और शुभ्र था कि लगता था कि चन्द्रमा की किरणों से चर्चित है । उनके मुखों से स्वाभाविक सुगन्धि प्रस्फुटित हो रही थी ।

अलंकार—उत्प्रेक्षा ।

[दो०] अमल कपोलै आरसी, बाहू चंपक मार ।
अवलोकनै विलोकिए, मृगमदमय घनसार ॥१५७॥

शब्दार्थ—बाहू = भुजायें । चपकमार = चंपा की माला । मृगमद = कस्तूरी । घनसार = कपूर ।

व्याख्या—उन रमणियों के स्वच्छ कपोल दर्पण (आरसी) के समान हैं । उनकी भुजायें चंपकमाला के समान हैं । उनकी दृष्टियाँ (नेत्र) (श्याम और श्वेत वर्णों से युक्त होने के कारण) कस्तूरी और कपूर-सी प्रतीत हो रही हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पलकाचार

[सवैया]

बैठे जराय जरे पलिका पर रामसिया सबको मन मोहैं।
ज्योति-समूह रहे मढ़िकै, सुर भूलि रहे, बपुरे नर को हैं?
केशव तीनिहुँ लोकन की अवलोकि वृथा उपमा कवि टोहैं।
शोभन सूरजमंडल माँझ मनौ कमला-कमलापति सोहैं ॥१५८॥

शब्दार्थ—जराय जरे पलिका = जड़ाऊ पलँग। टोहैं = ढूँढ़ते हैं। शोभन = सुन्दर।

व्याख्या—जड़ाऊ पलँग पर बैठे हुए सीता और राम अपने अनुपम सौन्दर्य से सबका मन मुग्ध कर रहे हैं। उनके चारों ओर सुन्दरी स्त्रियों की अनुपम रूप छटा से निर्मित ज्योति मण्डल उनकी सौन्दर्य-वृद्धि कर रहा है। उनके सौंदर्य को देखकर देवतागण भी विस्मय विमुग्ध हो रहे हैं फिर बेचारे नरों की क्या गणना की जाय? केशव कवि कहते हैं कि कविगण व्यर्थ ही तीनों लोकों में इस उपमेय के लिए उपमान ढूँढ़ रहे हैं, मुझे तो ऐसा लगता है कि सुन्दर सूर्यमण्डल में 'कमला' (लक्ष्मी) के साथ कमलापति शोभित हो रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

राम का शिखनख

[दो०] गंगाजल की पाग सिर, सोहत श्रीरघुनाथ।
शिव सिर गंगाजल किधौं, चंद्र चंद्रिका साथ ॥१५९॥

शब्दार्थ—गंगाजल = एक प्रकार का श्वेत रेशमी वस्त्र।

व्याख्या—भगवान् राम के शिर पर यह गंगाजल की श्वेत पाग (पगड़ी) शोभित है या भगवान् शंकर के शिर पर साक्षात् गंगा की धारा है जो चन्द्रमा की किरणों के साथ और भी सुन्दर प्रतीत हो रही है।

अलंकार—सन्देह।

[तोमर छंद]

कछु भृकुटि कुटिल सुवेश। अति अमल सुमिल सुदेश।
विधि लिख्यो सोधि सुतंत्र। जनु जया-जय के मंत्र ॥१६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सुवेश = सुन्दर। सुमिल = घने और चिकने। सुदेश = सुन्दर। सुतंत्र = स्वतन्त्रता पूर्वक। जयाजय = (जय + अजय) दूसरों को जीतते और स्वयं अजेय रहते।

व्याख्या—भगवान राम की भौहें थोड़ी वक्र हैं। वे सुन्दर स्वच्छ और घनी तथा चिकनी हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ब्रह्मा ने (इन भौहों के रूप में) स्वयं अजेय रहने और दूसरों पर जय प्राप्त करने (दूसरों को वश में करने) का मंत्र लिख दिया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] यदपि भृकुटि रघुनाथ की, कुटिल देखियत ज्योति।
तदपि सुरासुर नरन की, निरखि शुद्ध गति होति ॥१६१॥

शब्दार्थ—गति = मोक्ष।

व्याख्या—यद्यपि भगवान राम की भौहों का सौन्दर्य उनकी वक्रता में ही है (वे स्वयं वक्र हैं) फिर भी देवताओं, दैत्यों तथा मानवों को उन्हें (भौहों को) देखने से शुद्ध गति (मोक्ष) प्राप्त होती है।

अलंकार—विरोधाभास।

स्रवन मकर कुंडल लसत, मुख सुखमा एकत्र।
ससि समीप सोहत मनो, स्रवन मकर नक्षत्र ॥१६२॥

शब्दार्थ—मकर कुण्डल = मकराकृत कुण्डल। स्रवन = कानों में।

व्याख्या—भगवान राम के कानों में मकर के आकार के कुण्डल शोभित हो रहे हैं। कानों के समीप ही मुखचन्द्र शोभित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा के समीप 'श्रवण' और 'मकर' नक्षत्र शोभित हो रहे हैं।

नोट—भगवान राम का मुख, चन्द्रमा के रूप में, उनके कान 'श्रवण' नक्षत्र के रूप में और उनके कानों में लटकते हुए मकर के आकार के कुण्डल 'मकर' नक्षत्र के रूप में कल्पित किये गये हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[पद्धटिका छन्द]

अति वदन सोभ सरसी सुरंग।
तह कमल नयन नासा तरंग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनु युवति चित्त विभ्रम विलास।
तेइ भ्रमर भँवत रस रूप आस ॥१६३॥

शब्दार्थ—सोभ = शोभा। सरसी = बावली, पोखरी। सुरंग = निर्मल।

व्याख्या—भगवान राम की मुख-छवि विमल पुष्करिणी के समान है। उनके नेत्र ही उस पुष्करिणी के कमल हैं। उनकी नासिका ही पुष्करिणी में उठनेवाली जल-तरंग है। इस मुख-छवि रूपी पुष्करिणी में विकसित नेत्र-कमलों के सौन्दर्य से विभ्रमित होकर युवतियों के चंचल चित्त जो बार-बार उसी रूप-राशि पर मँडराते रहते हैं वे ही मानो भँवरें हैं जो रूप-मकरन्द के लोभ से बार-बार भ्रमित हो रहे हैं।

अलंकार—रूपक। (सांग)

नोट—भगवान राम के मुख सौन्दर्य का यह अलंकृत वर्णन उचित कल्पना के कारण अत्यधिक काव्य-सौष्ठव-युक्त हो गया है। केशव की काव्य-कल्पना के सुन्दर उदाहरणों में से है।

[निशिपालिका छन्द]

सोभिजति दंतरुचि सुभ्र उर आनिए।
सत्य जनु रूप अनुरूपक बखानिए।
ओंठ रुचि रेख सविसेख सुभ श्रीरये।
सोधि जनु ईश शुभ लक्षण सबै दये ॥१६४॥

शब्दार्थ—सोभिजति = शोभा देती है। श्री रये = शोभा से रंजित। ईश = ब्रह्मा।

व्याख्या—राम के शुभ्र दाँतों की सुन्दर पंक्ति शोभा दे रही है। विचार करने पर ऐसा लगता है कि मानो (यह दंत पंक्ति) यह सत्य के रूप की प्रतिकृति है। ओठों की कान्ति एक विशेष प्रकार की पवित्र सुषमायुक्त रेखा के समान है। ऐसा प्रतीत होता है मानो ब्रह्मा ने ढूंढ़-ढूंढ़कर इन ओठों को सभी शुभ लक्षणों (चिह्नों) से युक्त कर दिया है।

नोट—काव्य-परम्परा में 'सत्य' का रंग श्वेत माना गया है। इसी-लिए केशव ने शुभ्र दन्त-पंक्ति को 'सत्य-रूप-अनुरूपक' माना है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] ग्रीवा श्रीरघुनाथ की, लसति कंबुपर वेख।
साधु मनो वच काय की, मानो लिखी त्रिरेख ॥१६५॥

शब्दार्थ—कंबुवर = श्रेष्ठ शंख।

व्याख्या—भगवान राम की ग्रीवा श्रेष्ठ शंख के रूप में शोभित है। (उसमें शंख की ही भाँति त्रिवलियाँ भी हैं) भगवान राम मनसा, वाचा, कर्मणा साधु हैं, माना इसी सत्य को प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मा ने उनकी ग्रीवा में तीन रेखायें खींच दी हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सुन्दरी छन्द]

सोभन दीरघ बाहु विराजत।
देव सिहात, अदेव ते लाजत।
वैरिन को अहिराज बखानहु।
हे हितकारिन की ध्वज मानहु ॥१६६॥

शब्दार्थ—सोभन = सुन्दर। अहिराज = वासुकि। सिहात = सिहाते हैं, ईर्ष्या करते हैं।

व्याख्या—भगवान राम के सुन्दर दीर्घ बाहु-दण्ड शोभित हैं। उन विशाल बाहु-दण्डों को देखकर देवता सिहाते हैं और असुर (उनकी तुलना में अपनी हीनता का अनुभव करके) लज्जित होते हैं। शत्रुओं के लिए उन्हें नागराज ही समझिए और मित्रों के लिए उन्हें कीर्ति-ध्वज मानना चाहिए। [ये बाहें शत्रुओं को डसनेवाली (नष्ट करनेवाली है) और मित्रों की कीर्ति सुरक्षित रखनेवाली हैं।]

अलंकार—उल्लेख।

ज्यों उर में भृगु-लात बखानहु।
श्री कर को सरसीरुह मानहु।
सोहति है उर में मनि यों जनु।
जानकि को अनुरागि रह्यो मनु ॥१६७॥

शब्दार्थ—भृगुलात = भृगुमुनि के चरण चिह्न। श्री कर = लक्ष्मीजी के हाथ। सरसीरुह = कमल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—भगवान राम के वक्षस्थल पर भृगुमुनि के चरण-चिह्न ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो लक्ष्मीजी के हाथ के कमल हों। उनके हृदय पर मणि ऐसी शोभा दे रही है कि प्रतीत होता है मानो जानकीजी के अंतस् का अनुराग ही (मणि रूप में) साकार हो उठा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] सोहत जनरत-रामउर, देखत जिनको भाग।
आइ गयो ऊपर मनो, अंतर को अनुराग ॥१६८॥

शब्दार्थ—जन रत = भक्तों में अनुरक्त।

व्याख्या—भक्तों में अनुरक्त भगवान राम का मणियुक्त हृदय शोभित है। जो लोग उस अनुपम सौन्दर्य को देख रहे हैं वे सौभाग्य-शाली हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि भगवान के अंतस् का अनुराग ही ऊपर आकर प्रत्यक्ष हो गया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[पद्धटिका छन्द]

सुभ मोतिन की दुलरी सुदेस।
जनु वेदन के अच्छर सुबेस।
गजमोतिन की माला बिसाल।
मन मानहुँ संतन के मराल ॥१६९॥

शब्दार्थ—दुलरी = दो लड़ियों की माला। सुबेस = सुन्दर।

व्याख्या—रामचन्द्रजी मोतियों की दो लड़ियों की सुन्दर माला पहिने हुए हैं, ऐसा लगता है कि वे वेदों के सुन्दर अक्षर हैं। वे गज-मुक्ता की विशाल माला भी धारण किये हुए हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है कि सन्तों के मन-मराल हैं जो स्नेह सूत्र में बंधकर भगवान राम के हृदय पर शोभा दे रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[विशेषक छंद]

स्याम दुवौ पग लाल लसै द्युति यों तल की।
मानहुँ सेवति ज्योति गिरा यमुनाजल की।
पाट जटी अति स्वेत सो हीरन की अवली।
देवनदी कन मानहुँ सेवत भाँति भली ॥१७०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—दुवौ = दोनों। कन = कण, जलविन्दु। पाट = रेशम।

व्याख्या—भगवान राम के चरणों का ऊपरी भाग श्याम-वर्ण है और उनके तलवे लाल हैं। ऐसा लगता है मानो यमुना के प्रवाह में सरस्वती की धारा आकर मिल गई हो। (वर्ण-साम्य के आधार पर चरणों की ऊपरी सतह को जमुना के रूप और तलवों को सरस्वती के रूप में कल्पित किया गया है।) राम के जूतों में रेशम के सूत्र में गुँथी हुई हीरों की शुभ्र पंक्ति भी शोभित है। इस रूप में देवनदी (गंगा) के जलकण भी चरणों की सेवा कर रहे हैं। (हीर-कणों को गंगा के श्वेत जल-कणों के रूप में कल्पित किया गया है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] को बरनै रघुनाथ-छवि, केसव बुद्धि उदार।
जाकी किरपा सोभिजति, सोभा सब संसार ॥१७१॥

शब्दार्थ—सोभिजति = शोभयति, शोभित होता है।

व्याख्या—केशवदास जी कहते हैं कि कौन ऐसी उदार बुद्धिवाला है जो भगवान राम के सौन्दर्य का अंकन कर सके। संसार का सारा सौन्दर्य तो उन्हीं की कृपा से शोभा-प्राप्त कर रहा है।

अलंकार—सम्बन्धातिशयोक्ति।

सीता का रूप-वर्णन

[दंडक]

की है दमयंती इंदुमती रति राति-दिन,
होंहिं न छबीली छबि इन जो सिंगारिए।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिए।
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै विचारिए।
सीताजू के रूप पर देवता कुरूप को हैं?
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिए ॥१७२॥

शब्दार्थ—दमयन्ती = राजा नल की स्त्री। इन्दुमती = राजा अज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की स्त्री। छनछवि = बिजली। जलजात = कमल। जातवेद = अग्नि। ओप = आभा। जातरूप = सोना। निरूपम = जिसकी उपमा न दी जा सके। निरूपन = निरूपण करते समय। निरूप = रूप रहित। बहु-रूप = अनेक रूप धारण करने वाला। देवता = (स्त्री-वाची प्रयोग) देवियाँ।

व्याख्या—कवि केशवदास सीता का सौन्दर्य अंकन करते हुए कहते है—सीता के सौन्दर्य के सामने दमयन्ती, इन्दुमती और रति (जो संसार मे अपने अनुपम सौन्दय के लिए विख्यात हैं) क्या हैं? यदि इनका शृङ्गार विद्युत् की आभा से किया जाय तो भी ये सीता सदृश छवि धारणी न हो सकेंगी। सीता की रूप-कान्ति के सामने कमल और अग्नि की कांति फीकी पड़ जाती है और बेचारा सोना तो विरूप-सा लगने लगता है। स्वयं कामदेव, (जिसकी उपमा में अन्य कोइ भी नहीं ठहरता) सौंदर्य का निरूपण करते समय रूप-रहित होने के कारण व्यर्थ हो जाता है। यदि चंद्रमा को सीता की मुख कांति के सदृश माना जाय तो यह भी ठीक नहीं जँचता क्योंकि वह अनेक रूप धारी है। कभी छोटा कभी बड़ा होता रहता है। (उसके सौंदर्य की पूर्णता में निरंतरता नहीं है।) यदि सीताजी के सौंदर्य की समता देव नारियो के सौंदर्य से की जाय तो वह भी अनुचित है क्योंकि वे तो उनके सामने कुरूप-सी लगती हैं। सत्य तो यह है कि उनके सौंदर्य के सम्मुख सौन्दर्य के समस्त उपमानों को निछावर कर देना चाहिए।

अलंकार—प्रतीप।

[गीतिका छंद]

श्री सोभिजै सखि सुंदरी जनु दामिनी वपु मंडिकै।
घन स्याम को जनु सेवहीं जड मेघ-ओघन छंडिकै।
इक अंग चर्चित चारु नंदन चंद्रिका तजि चंद को।
जनु राहु के भय सेवहीं रघुनाथ आनंदकंद को ॥१७३॥

शब्दार्थ—वपु = शरीर। मंडिकै = शोभायुक्त होकर। ओघन = समूह। छण्डिकै = छोड़कर।

व्याख्या—सीताजी के साथ वहाँ उनकी सखियाँ भी शोभित हैं। कवि उनके सौंदर्य का अलंकृत चित्र उपस्थित करता है। वे सुंदरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सखियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो विद्युति अनेक शरीर धारण करके जड मेघ-समूह को त्यागकर सचेतन घनश्याम (भगवान) की सेवा कर रही है। कोई सखी अपने शरीर में चंदन चर्चित किये हैं। उसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो राहु के भय से चंद्रिका चंद्रमा को त्यागकर आनंद की वर्षा करने वाले भगवान राम की सेवा कर रही हो [रामचंद्र को कभी भी किसी राहु से भय नहीं है। इसलिए क्षय ग्रस्त चंद्रमा को त्याग कर चंद्रिका मानो शक्ति-पुञ्ज रामचंद्र की सेवा कर रही है।]

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

मुख एक है नत लोकलोचन लोल लोचन को हरे।
जनु जानकी सँग सोभिजै सुभ लाज देहन को धरे।
तहँ एक फूलन के विभूखन एक मोतिन के किये।
जनु छीरसागर देवता तन छीर छीटनि को छिये ॥१७४॥

शब्दार्थ—लोक-लोचन = लोगों के नेत्र। लोल = चंचल। कै = करके। देवता (स्त्रीलिंग) = देवियाँ। छिए = छुए हुए, स्पर्श किये हुए।

व्याख्या—सीताजी की कोई सखी लज्जावश अपने मुख को नीचे किए हुए है किंतु अपने चंचल नेत्रों से लोगों के नेत्रों को आकर्षित कर रही है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं लज्जा ही साकार होकर सीता जी के साथ शोभित हो रही है। कोई सखी पुष्प-माला धारण किए हुए है और कोई मोतियों की माला पहने हुए है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये क्षीर-सागर निवासिनी देवियाँ हैं जिनके शरीर पर क्षीर के श्वेत छींटे लगे हुए हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सो०] पहिरे वसन सुरंग, पावक युत स्वाहा मनो।
सहज सुगंधित अंग, मानो देवी मलय की ॥१७५॥

शब्दार्थ—स्वाहा = अग्नि देव की स्त्री। सुरंग = लाल रंग।

व्याख्या—कोई सखी लाल रंग की साड़ी पहिने हुए है। उसे देखकर ऐसा लगता है मानो अग्नि देवता के साथ उनकी स्त्री स्वाहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभित हो रही हो। कोई सखी अपने शरीर की सहज सुगन्धि से मलयगिरि निवासिनी देवी प्रतीत हो रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

दायज वर्णन

[चामर छंद]

मत्त दंतिराज राजि वाजिराज राजि कै।
हेम हीर मुक्त चीर चारु साज साजि कै।
वेस वेस वाहिनी असेस वस्तु सोधियो।
दाइजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥१७६॥

शब्दार्थ—दंतिराज = दाँतवाले हाथी। राजि = पंक्ति। वाजराज = श्रेष्ठ घोड़े। कै = को। हेम = स्वर्ण। हीर = हीरा, जवाहिरात। मुक्त = मोती। वाहिनी = समूह। दाइजो = दायज, दहेज। असेष = सम्पूर्ण।

व्याख्या—महाराज जनक ने दहेज में बड़े-बड़े दाँतोंवाले विशाल हाथियों और श्रेष्ठ घोड़ों को सोने, हीरे और मोती के हारों तथा सुन्दर वस्त्रों से सज्जित करके दिया। (यही नहीं) अपने अनेक सेवकों से दहेज में दी जा सकनेवाली सम्पूर्ण वस्तुओं को ढुंढ़वाकर मँगाया और (इस प्रकार) भाँति-भाँति की वस्तुयें दहेज रूप में प्रदान की।

वस्त्र भौन स्यों वितान आसने बिछावने।
अस्त्र सस्त्र अंगत्राण भाजनादि को गने।
दासि दास वासि वास रोम पाट के कियो।
दाइजो विदेहराज भाँति भाँति को दियो ॥१७७॥

शब्दार्थ—वस्त्र-भौन = कपड़ों से निर्मित भवन (रावटी, कनात, आदि)। स्यों = सहित। वितान = शामियाना। अंगत्रान = कवच। भाजनादि = बर्तन आदि। बासि = बड़े वस्त्र। बास = छोटे वस्त्र। रोम = ऊनी। पाट = रेशम।

व्याख्या—वस्त्र के बने हुए रावटी, कनात आदि; शामियाना, आसन और बिछावन, अस्त्र, शस्त्र, कवच तथा अगणित बर्तन, दास-दासियाँ, ऊनी-रेशमी वस्त्र आदि न जाने कितनी प्रकार की वस्तुयें महाराज जनक ने दहेज में प्रदान की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परशुराम संवाद

[दो०] बिस्वामित्र बिदा भये, जनक फिरे पहुँचाइ।
मिले आगिली फौज को, परशुराम अकुलाइ ॥१७८॥

शब्दार्थ—अकुलाइ = व्याकुल होकर।

व्याख्या—सरल है।

[चंचरी छंद]

मत्त दंति अमत्त ह्वै गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर ठौर सुदेस केशव दुंदुभि नहिं वज्जही॥
डारि डारि हथ्यार सूरज जीव लै लै भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकै नारि वेखन सज्जहीं ॥१७९॥

शब्दार्थ—मत्तदंति = मस्त हाथी। अमत्त = मदहीन। सुदेश = सुन्दर। सूरज = शूरवीरों से जायमान। (स्वयं तो शूर थे ही पिता-पितामह भी शूरवीर थे)।

व्याख्या—परशुरामजी को देखते ही बड़े-बड़े मदमस्त हाथी मदहीन हो गये। उन्होंने एक-दूसरे को देखकर गर्जना बन्द कर दिया। (परशुराम जी के आतंक का प्रभाव हाथियों पर भी दिखाया गया है)। स्थल-स्थल पर बजनेवाली दुन्दुभियाँ बन्द हो गईं। बड़े-बड़े शूरवीरों के पुत्र हथियार फेंक-फेंककर प्राण लेकर भागने लगे। और कुछ ऐसे भी थे जो कवच फेंककर स्त्री-वेश में शोभित होने लगे।

[दो०] वामदेव ऋषि सों कह्यो, 'परशुराम रणवीर।
महादेव को धनुष यह, को तोरेउ बलवीर' ? ॥१८०॥

शब्दार्थ—वामदेव = महाराज दशरथ के साथ के एक मुनि जो उनके मन्त्री भी थे।

व्याख्या—सरल है।

वामदेव—महादेव को धनुष यह, परशुराम ऋषिराज!
तोरेउ 'रा' यह कहतहीं, समुझेउ रावन राज ॥१८१॥

शब्दार्थ—'रा' = 'राम' (ऋषि वामदेव 'राम' उच्चारण करना चाहते थे)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—परशुरामजी के प्रश्न के उत्तर में मुनि वामदेव ने 'राम' कहना चाहा किन्तु वे केवल 'रा' कह पाये थे कि परशुराम ने 'रावण' समझ लिया।

[चंद्रकला छंद]

परशुराम—वर बान-सिखीन असेस समुद्रहि,
सोखि सखा सुख ही तरिहौं।
पुनि लंकहिं औटि कलंकित कै,
फिरि पंक कनंकहिं की भरिहौं॥
भल भूँजि कै राख सुखै करिकै,
दुख दीरघ देवन को हरिहौं।
सितकंठ के कंठन को कठुला,
दसकंठ के कंठन को करिहौं॥१८२॥

शब्दार्थ—बान-सिखीन = आग्नबाण। कनक = सोना। सुखै = सुखपूर्वक, सहज ही। सितकण्ठ = महादेव। कठुला = माला। कण्ठन = मस्तकों को।

व्याख्या—परशुराम रोषावेश में अपने कुठार को सम्बोधित करके कहते हैं। हे सखा! (कुठार) मैं अपने श्रेष्ठ आग्नबाणों से सम्पूर्ण समुद्र को सुखाकर सहज ही उस पार (लंका) में पहुँच जाऊँगा। कलंकित रावण की स्वर्ण निर्मित लंका को पिघलाकर सूखे समुद्र को सोने की कीच से भर दूँगा। लंका को भली प्रकार भूनकर सहज ही राख कर दूँगा और देवताओं के दीर्घ दुःख का निवारण कर दूँगा और अन्ततः रावण को मारकर उसके दश मस्तकों की माला बनाकर महादेव के गले में पहना दूँगा।

अलंकार—अनुप्रास।

[संयुता छंद]

परशुराम—वह कौन को दल देखिए?
वामदेव—यह राम को प्रभु लेखिए॥
परशुराम—कहि कौन राम न जानियो।
वामदेव—शर ताड़का जिन मारियो॥१८३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—दल = सेना। कहि = कहो, बताओ।

व्याख्या—सरल है।

[विजय छंद]

परशुराम—ताड़का सँहारी तिय न विचारी
कौन वड़ाई ताहि हने ?
वामदेव—मारीच हुते सँग प्रबल सकल खल
अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखवारी गुरु सुखकारी
गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मंडयो हरधनु खंडयो
सीय स्वयंवर माँझ वरी ॥१८४॥

शब्दार्थ—क्रतु = यज्ञ। माँझ = में। वरी = वरण किया।

व्याख्या—स्पष्ट और सरल है।

अलंकार—गूढ़ोत्तर।

परशुराम [दो०] हर हू होतो दंड द्वै, धनुष चढ़ावत कष्ट।
देखो महिमा काल की, कियो सो नरसिसु नष्ट ॥१८५॥

शब्दार्थ—दण्ड द्वै = दो दण्ड तक। नरसिसु = सामान्य नर-बालक।

व्याख्या—परशुरामजी थोड़े आश्चर्य में पड़कर सोच रहे हैं। "काल की महिमा तो देखिये। जिस विशाल धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाने में स्वयं महादेव को भी दो दण्ड पर्यन्त कष्ट का अनुभव होता था उसे ही सामान्य नर-बालक ने नष्ट कर दिया ?"

[विजय छंद]

बोरों सबै रघुबंस कुठार की धार में वारन बाजि सरत्थहिं।
बान की वायु उड़ाइ कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।
रामहिं बाम समेत पठै वन कोप के भार मैं भूंजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तौ आजु अनाथ, करौं दसरत्थहिं।१८६।

शब्दार्थ—वारन = हाथी, बाजि = घोड़ा। सरत्थहिं = रथ सहित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लच्छन = लक्ष्मण। अरिहा = शत्रुघ्न। समरत्थहि = शक्तिशाली। बाम = बामा, स्त्री।

व्याख्या—परशुरामजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहते हैं—

आज मैं अपने कुठार की तीक्ष्ण धारा में समस्त रघुवंश को हाथियों, घोड़ों और रथों के साथ डुबा दूँगा। (अर्थात् कुठार के तीखे प्रहारों से सभी को नष्ट कर दूँगा) लक्ष्मण को प्रबल वेग वाले बाणों की वायु से ही उड़ाकर शक्तिशाली शत्रुघ्न को बाणों का निशाना बना दूँगा। राम को सपत्नीक जंगल में भागने को विवश करके भरत को अपने क्रोध की भाड़ में भून डालूँगा और यदि राम धनुष हाथ में लेकर सम्मुख युद्ध करने आयेगा तो उसे भी नष्ट करके दशरथ को सब प्रकार से अनाथ कर दूँगा।

[सो०] राम देखि रघुनाथ, रथ ते उतरे वेगि दै।
गहे भरत को हाथ, आवत राम विलोकियो ॥१८७॥

अलंकार—स्वभावोक्ति।

नोट—उपर्युक्त छन्द रौद्र-रस का सुन्दर उदाहरण है। परशुराम आश्रय हैं। रामादि आलम्बन हैं। टूटा हुआ धनुष उद्दीपन का कार्य कर रहा है और परशुराम जी के कठोर वचन क्रोध की प्रतीति कराने के कारण अनुभाव माने जा सकते हैं।

शब्दार्थ—राम = परशुराम। वेगि दै = शीघ्रता से।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[दंडक छन्द]

परशुराम—अमल सजल घनस्याम वपु केसौदास
चंद्रहू ते चारु मुख सुखमा को ग्राम है
कोमल कमल-दल दीरघ विलोचननि
सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है।
बालक विलोकियत पूरन पुरुष, गुन
मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है।
वर मान वामदेव को धनुख तोरो इन
जानत हौं बीस बिसे राम वेस काम है ॥१८८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सजल = जलयुक्त। अमल = स्वच्छ, निर्मल। वपु = शरीर। ग्राम = समूह। सोदर = सहोदर। वामदेव = महादेव। बीस बिसे = निश्चय ही।

व्याख्या—राम और भरत के सुन्दर रूप को देखकर परशुरामजी मन ही मन उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—इनका शरीर स्वच्छ सजल जलद के समान है। मुख चन्द्रमा से भी अधिक सुषमा मंडित है। इनके दीर्घ नेत्र कोमल कमल दल के समान हैं। इनकी आकृतियों में इतनी समानता है कि ये सहोदर जान पड़ते हैं। इनके नाम (राम, भरत) भिन्न-भिन्न हैं। यह बालक (राम) तो देखने में 'पूर्णपुरुष' के लक्षणों से युक्त प्रतीत होता है। यह इतना रूपवान है कि मेरे सहज विरक्त मन (या किसी पर तनिक भी दया न करनेवाले मन) को भी मुग्ध कर रहा है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह राम रूप धारी साक्षात् कामदेव ही है और पूर्व-बैर का ध्यान करके ही इसने महादेव के धनुष को खंडित कर दिया है।

अलंकार—भ्रम और अनुमान का संकर।

[गीतिका छंद]

भरत—कुस मुद्रिका समिधैं स्रुवा कुस औ कमंडल को लिये।
कटिमूल श्रौननि तर्कसी भृगुलात सी दरसै हिये॥
धनु बाण तिच्छ कुठार केसव मेखला मृग-चर्म सों।
रघुवीर को यह देखिए रसवीर सात्त्विक धर्म सों॥१८९॥

शब्दार्थ—कुश मुद्रिका—कुशा की मुदरी जिसे 'पैंती' कहते हैं। समिधा = यज्ञ की लकड़ी। स्रुवा = वह पात्र जिससे यज्ञ कुंड में अग्नि डालते हैं। कटिमूल श्रौनति = कटि के मूल प्रदेश से लेकर श्रवणों तक। तर्कसी = तूणीर, तरकश। तिक्ष = तीक्ष्ण। मेखला = करधनी। सों = सहित। सात्त्विक धर्म = स्वाभाविक अंग विकार। (स्वेद, कम्प, वैवर्ण्य, आदि)।

व्याख्या—क्रुद्ध परशुरामजी की मुद्रा का वर्णन किया गया है। केशवदासजी का यह वर्णन बड़ा ही सजीव है—

परशुरामजी कुश की मुद्रिका (पैंती, उँगली में पहिने हैं, हाथ में यज्ञ की लकड़ी हवन कुंड में घृत डालने का पात्र, कुश और कमंडल लिए हुए हैं। उनकी पीठ पर (कटि के मूल भाग से लेकर कानों तक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तूणीर बँधा है। उनके वक्षस्थल पर भृगु के चरण-चिह्न-सा कुछ अंकित है। वे धनुष, बाण और तीक्ष्ण कुठार धारण किये हैं। उनकी कटि में मूज की मेखला है। वे मृगछाला लिए हुए हैं। ऐसे परशुरामजी को देखकर भरतजी पूछते हैं, हे रघुवीर! (राम) यह सात्विक धर्म सहित साक्षात् वीर रस के समान कौन व्यक्ति है?

अलंकार—भ्रम और अनुमान का संकर।

नाराच छंद।

राम—प्रचंड हैहयाधिराज दंडमान जानिए।
अखंड कीर्त्तिलेय भूमि देयमान मानिए॥
अदेव देव जेय भीत रच्छमान लेखिए।
अमेय तेज भर्गभक्त भार्गवेश देखिए॥१९०॥

शब्दार्थ—हैहयाधिराज=हैहय वंश के राजा, सहस्रार्जुन। दण्डमान=दंड देने वाले। कीर्ति लेय=कीर्ति प्राप्त करनेवाले। देयमान=देनेवाले। जेय=जीतनेवाले। भीत=डरे हुए। रक्षमान=रक्षा करनेवाले। अमेय=असीम, अपरिमाण। भर्ग=शंकर। भार्गवेश=भृगुवंश के राजा।

व्याख्या—भगवान राम परशुरामजी का परिचय दे रहे हैं।

हे भरत! यह साधारण व्यक्ति नहीं है। इन्होंने प्रबल हैहयवंशी राजा सहस्रार्जुन को दंड दिया है। ये अखंड कीर्ति लाभ करनेवाले तथा भूमिदान करनेवाले हैं। (इक्कीस बार ब्राह्मणों को भूमिदान करके कीर्ति लाभ किया है।) ये देवताओं और दैत्यों को जीतने वाले हैं। ये आर्तों की रक्षा करनेवाले हैं। ये अतुलित तेजधारी हैं। भगवान शंकर के परम भक्त हैं और भार्गव कुल भूषण हैं।

परशुराम—सुनि रामचंद्र कुमार। मन वचन कीर्ति उदार॥
राम—भृगुवंश के अवतंस। मनवृत्ति है केहि अंस॥१९१॥

शब्दार्थ—मन वचन कीर्ति उदार=उदार मन, वचनवाले और कीर्तिमान। मत वृत्ति है केहि अंश=तुम्हारी मनोवृत्ति क्या है?

व्याख्या—परशुरामजी ने भगवान राम से कुछ पूछना चाहा। उन्होंने कहा—हे कीर्तिमान और मन वचन से उदार कुमार रामचन्द्र! सुनो। (वे इतना ही कह पाये थे कि) भगवान राम बोल उठे—हे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भृगु-वंशियों में श्रेष्ठ ! आपकी मनोवृत्ति किस अंश पर है ? (अर्थात् आप क्या चाहते हैं ?)

अलंकार—गूढ़ोत्तर ।

[मदिरा छंद]

परशुराम—तोरि सरासन संकर को सुभ सीय स्वयंबर माँझ बरी ।
ताते बढ्यो अभिमान महा मन मेरीयो नेक न संक करी ॥
राम—सो अपराध परो हम सों अब क्यों सुधरै तुमहूँ धौं कहौ ।
परशु०—बाहु दै दोउ कुठारहि केशव अपने धाम को पंथ गहौ ।१९२।

शब्दार्थ—सरासन = धनुष । मेरीयो = मेरी भी । नेक = तनिक भी । बाहु दै = बाहें देकर, बाहें कटाकर ।

व्याख्या—[केशव के सम्वाद प्रसिद्ध हैं । सम्वाद, नाटकीय वातावरण उपस्थित करने के लिए अनिवार्य तत्व है । 'रामचन्द्रिका' में नाटकीय तत्वों की कमी नहीं है। 'परशुराम संवाद' रामचन्द्रिका के प्रसिद्ध सम्वादों में-से एक है । इससे केशव की वाक्-पटुता का अनुमान लगाया जा सकता है ।]

परशुरामजी, रामचन्द्रजी से कहते हैं—तुमने शंकर के धनुष को तोड़कर स्वयम्वर में सीता को वरण किया है । लगता है इससे तेरे मन में घोर अहंकार अंकुरित हो गया है इसीलिए तुमने मेरी तनिक भी शंका नहीं की । (यह सोचकर भी शंकित नहीं हुए कि परशुरामजी इस घटना से कुपित हो सकते हैं) । उनका उत्तर देते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं—वह अपराध तो मुझसे हो गया है । अब आप ही बताइये कि उसका निवारण किस प्रकार हो सकता है ? परशुरामजी की दृष्टि में इस जघन्य कृत्य का एक ही मार्जन था वे कहते हैं—अपने दोनों बाहु मेरे कुठार को अर्पित करके अपने घर का रास्ता लीजिये । (अर्थात् इस अपराध का निवारण दोनों हाथों के काट लेने से ही हो सकता है) ।

अलंकार—गूढ़ोत्तर ।

[कुंडलिया]

राम—टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोस ।
त्यों अब हर के धनुख को हम पर कीजत रोस ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम पर कीजत रोस कालगति जानि न जायी।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटायी।
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होइ तिनूका वज्र, वज्र तिनुका ह्वै टूटै ॥१९३॥

शब्दार्थ—टूटनहार = टूटनेवाला। होनहार = होनेवाली बात। तिनुका = तिनका।

व्याख्या—सरल है।

अलंकार—लोकोक्ति से पुष्ट गूढ़ोत्तर।

[विजय छंद]

परशुराम—केसव हैहयराज को मांस
हलाहल कौरन खाइ लियो रे।
तालगि मेद महीपन को
घृत घोरि दियौ न सिरानो हियो रे।
खीर खडानन कौ मद केसव
सो पल मैं करि पान लियो रे।
तौ लौं नहीं सुख जौ लहुँ तू
रघुबंस को सोन-सुधा न पियो रे ॥१९४॥

शब्दार्थ—मेद = चर्बी। सिरानो = शीतल होना। श्रोण = श्रोणित, रक्त।

व्याख्या—परशुरामजी अपने भीषण कुठार की ओर संकेत करके कहते हैं। हे मित्र कुठार! तूने हैहयराज का जो मांस काटा था वह मानो हलाहल विष के कौर निगल गया था। उस विष की शांति के लिए मैंने अनेक राजाओं का मेदा रूपी घी घोलकर पिला दिया किन्तु तुम्हारा हृदय शीतल नहीं हुआ। अब यदि तू बहुत दिनों तक जीवित रहना चाहता है तो मेरा कहना मान। मुझे तब तक सुख न प्राप्त होगा जब तक तू राम के रक्त-रूपी सुधा का पान नहीं करेगा।

अलंकार—रूपक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[तंत्री छंद]

भरत—बोलत कैसे भृगुपति सुनिए
सो कहिए तन मन बनि आवौ।
आदि बड़े हौ बड़पन राखौ
जाते तुम सब जग यश पावौ।
चंदनहूँ में अति तन घसिए
आगि उठै यह गुनि सब लीजै।
हैहय मारे, नृपति सँहारे
सो जस लै किन जुग जुग जीजै ॥१९५॥

शब्दार्थ—बनि आवौ = पूर्ण कर सको। आदि = आदि वर्णवाले, ब्राह्मण।

व्याख्या—भरतजी को परशुराम की गर्वोक्ति अनुचित लगती है। वे उन्हें सतर्क करते हुए कहते हैं—हे भृगुपति! आप कैसी बात कर रहे हैं? बात वह कही जाती है जो तन या मन से पूरी की जा सके। आप आदि वर्ण होने से (ब्राह्मण होने से) हमसे श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको बड़ों जैसा व्यवहार करना चाहिए। ताकि आपको संसार में यश-लाभ हो। अत्यन्त घिसने से चन्दन जैसे शीतल पदार्थ में भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है। इसे आप भली प्रकार सोच लें। (अर्थात् यद्यपि भगवान राम शान्त स्वभाव के हैं किन्तु विवश किये जाने पर उनकी क्रोधाग्नि भी प्रज्वलित हो सकती है) आपने सहस्रार्जुन को मारा है तथा अनेक राजाओं का संहार किया है। इससे आपको यश प्राप्त हुआ है। उस यश को अक्षुण्ण रखते हुए आप युग-युग तक जीवित रहें। (अर्थात् यदि आप हम लोगों से युद्ध करेंगे तो निश्चय ही पराजित होंगे और आपका पूर्व अर्जित यश समाप्त हो जायगा)।

[नाराच छन्द]

परशुराम—भली कही भरत्थ तैं उठाय आगि अंग तैं।
चढ़ाउ चोपि चाप आप बाण ले निखंग तैं ॥
प्रभाउ आपनो देखाउ छोड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहिं राम लै छुड़ाइ कै ॥१९६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—चोपि=उत्साहित होकर। भाइ=भाव। रिझाउ=सन्तुष्ट कर।

व्याख्या—परशुरामजी भरत का उत्तर देते हुए कहते हैं—हे भरत! तूने भली बात कही। तू अपने अंग मे अग्नि उत्पन्न कर (अपनी क्रोधाग्नि दिखा) और पूरे उत्साह मे तूणीर से बाण लेकर धनुष पर चढ़ा। बालकों का स्वभाव त्याग कर अपनी (वीरों जैसी) शक्ति प्रदर्शित कर और मुझे युद्ध में सन्तुष्ट करके राम को छुड़ाकर ले जा।

[सो०] लियो चाप जब हाथ, तीनिहु भैयन रोस करि।
बरज्यौ श्री रघुनाथ, तुम बालक जानत कहा ॥१९७॥

शब्दार्थ—बरज्यो=रोका, मना किया।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] भगवंतन सों जीतिए, कबहुँ न कीने शक्ति।
जीतिय एकै बात तें, केवल कीने भक्ति ॥१९८॥

शब्दार्थ—भगवन्तन=तेजस्वियों।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[हरिगीत छन्द]

जब हयो हैहयराज इन बिन छत्र छितिमंडल करयो।
गरि वेधि, खटमुख जीति, तारक-नंद को जब ज्यों हरयो॥
सुत मैं न जायो राम सो यह कह्यो पर्वतनंदिनी।
'वह रेणुका तिय धन्य धरणी में भयी जगबंदिनी' ॥१९९॥

शब्दार्थ—बिन क्षत्र=क्षत्र रहित, बिना राजा का। गिरि वेधि=कहते हैं कि महादेवजी से शस्त्र विद्या सीखकर लौटते समय परशुरामजी ने अपनी बाण-विद्या की परीक्षा के लिए हिमालय पर्वत की एक चोटी पर बाण मारा। बाण के प्रबल आघात से गिरि-शृंग कट गया और वहाँ घाटी बन गई। इसी घाटी को कालिदास ने 'क्रौंच रन्ध्र' कहा है। तारकनन्द=तारक नामक असुर का पुत्र। ज्यों=प्राण।

व्याख्या—रामचन्द्रजी, परशुराम के पूर्व कृत्यों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि जब इन्होंने (परशुरामजी ने) सहस्रार्जुन का संहार किया था और सम्पूर्ण पृथ्वी-मंडल को राजाओं से रहित कर दिया था, अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाण के प्रबल आघात से हिमालय के शृङ्ग को वेध कर घाटी बना दिया था, स्वामि-कार्तिकेय को जीता था और तारक असुर के पुत्र का संहार किया था, तब पार्वतीजी ने कहा था—मैं परशुराम जैसा पुत्र न उत्पन्न कर सकी; रेणुका धन्य है जिसने उन जैसा (परशुराम जैसा वीर) पुत्र उत्पन्न किया और संसार में वन्दनीय हुई।

[तोमर छंद]

परशुराम—सुनु राम सील-समुद्र। तव बंधु हैं अति छुद्र।
मम वाडवानल कोप। अँगु कियो चाहत लोप॥२००॥

शब्दार्थ—सील-समुद्र = शील के समुद्र। छुद्र = ओछी बुद्धिवाले। अँगु = शरीर।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[दोधक छंद]

शत्रुघ्न—हौं भृगुनंद बली जग माहीं।
राम विदा करिए घर जाहीं।
हौं तुमसौं फिरि युद्धहि माँड़ौं।
क्षत्रिय वंश को वैर लै छाँड़ौं॥२०१॥

शब्दार्थ—मांड़ौं = छेड़ूंगा।

व्याख्या—सरल है।

[तोटक छन्द]

यह बात सुनी भृगुनाथ जबै।
कहि, "रामहि लै घर जाहु अबै॥
इन पै जग जीवत जो बचिहौं।
रन हौं तुमसौं फिरिकै रचिहौं॥२०२॥

शब्दार्थ—इनपै = इनसे युद्ध करने के उपरान्त। रचिहौं = करूँगा।

व्याख्या—परशुरामजी ने शत्रुघ्न की बातें सुनकर भरतजी से कहा कि हे भरत तुम राम को साथ लेकर घर चले जाओ। यदि मैं इनसे (शत्रुघ्न से) युद्ध करने के बाद जीवित बच जाऊँगा तो फिर तुमसे लौटकर युद्ध करूँगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[परशुरामजी का यह कथन व्यंग्य रूप है। यहाँ शत्रुघ्न के दुस्साहस पर उन्होंने व्यंग्य किया।]

[दो०] "निज अपराधी क्यों हतौं, गुरुअपराधी छाँड़ि।
ताते कठिन कुठार अब, रामहिं सों रन माँड़ि ॥२०३॥

शब्दार्थ—रन माँड़ि = युद्ध कर।

व्याख्या—परशुरामजी अपने-आप सोचते और निश्चिय करते हैं—गुरु का अपराध करने वाला (राम) जब सम्मुख है तो उसे छोड़कर अपने अपराधी (शत्रुघ्न) को क्यों मारूँ? इसलिए हे कठिन कुठार! अब तू राम से ही युद्ध कर।

[विजय छंद]

"भूतल के सब भूपन को मद
भोजन तो बहु भाँति कियोई।
मोद सों तारक-नंद को मेद
पछ्यावरि पान सिरायो हियोई।
खीर खडानन को मद केसव
सो पल में करि पान लियोई।
राम तिहारेइ कंठ को सोनित
पान को चाहै कुठार कियोई" ॥२०४॥

शब्दार्थ—पछ्यावरि = भोजन के उपरान्त परोसा जानेवाला एक पेय जो छाँछ से बनता है। खीर = क्षीर, दूध।

व्याख्या—हे राम! यह भीषण कुठार पृथ्वी मण्डल के समस्त राजाओं के गर्व का भोजन तो अनेक प्रकार से कर चुका है। तारक असुर के पुत्र के मेदा को शिखरन की भाँति पान करके अपने हृदय को शीतल कर चुका है। स्वामि कार्तिकेय के गर्व को पलभर में ही क्षीर की भाँति पी गया है और अब यह तुम्हारे गले का रक्त-पान करना चाहता है।

[त्रोटक छंद]

लक्ष्मण—जिनकोहि अनुग्रह वृद्धि करै।
तिनको किमि निग्रह चित्त परै॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनको जग अच्छत सीस धरै।
तिनको तन सच्छत कौन करै ॥२०५॥

शब्दार्थ—निग्रह = दण्डित करना। अच्छत सीस धरै = पूज्य मानकर सिर पर अक्षत चढ़ाता है। सच्छत = क्षत सहित (सक्षत) घायल।

व्याख्या—लक्ष्मण जी परशुराम की अवध्यता की ओर संकेत करते हैं—जिनके (जिन ब्राह्मणों के) अनुग्रह से संसार की वृद्धि (उन्नति) होती है; भला उनको दण्डित करने की बात मन में कैसे आ सकती है? जिन्हें संसार पूज्य मानकर अक्षत चढ़ाकर पूजा करता है उनके शरीर को भला कौन घायल करेगा? (अर्थात् ब्राह्मण होने के कारण परशुरामजी सर्वथा अवध्य हैं)।

अलंकार—विरोधाभास।

[विशेषक छंद]

परशुराम—हाथ धरे हथियार सबै तुम सोभत हौ।
मारनहारहिं देखि कहा मन छोभत हौ।
छत्रिय के कुछ ह्वै किमि बैनन दीन रचौ।
कोटि करो उपचार न कैसेहु मीचु बचौ ॥२०६॥

शब्दार्थ—मारनहारहिं = मारनेवाले को। किमि बैन न दीन रचौ = दीन वाणी क्यों न कहो? मीचु बचौ = मृत्यु से बचना।

व्याख्या—परशुरामजी सभी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—तुम सभी लोग हाथ मे हथियार लिए हुए शोभित हो रहे हो। ऐसी स्थिति में मारनेवाले को देखकर मन में शंकित क्यों हो रहे हो? क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा दीन वचन बोलना उचित ही है (इसलिए कि ब्राह्मण जातिगत आधार पर श्रेष्ठ होता है और उसके सामने मर्यादा की रक्षा के लिए क्षत्रिय नम्रता का व्यवहार करता है। इसलिए कि मैंने क्षत्रियों को सदैव परास्त किया है अतः क्षत्रिय लोग मेरे सामने भयभीत होकर दीन वचन बोलते है।) किन्तु ध्यान रखिये, चाहे जितना प्रयत्न आप लोग करें अब तो किसी प्रकार भी मृत्यु से रक्षा नहीं हो सकती।

लक्ष्मण—छत्रिय ह्वै गुरु लोगन के प्रतिपाल करै।
भूलिहु तौ तिनके गुन औगुन जी न धरैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तौ हमको गुरुदोस नहीं अब एक रती।
जो अपनी जननी तुमहीं सुख पाइ हती ॥२०७॥

शब्दार्थ—प्रतिपाल = रक्षा। एक रती = तनिक भी। सुख पाइ हती = सुखपूर्वक मार डाला।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[विजय छंद]

परशुराम—लक्ष्मण के पुरिखान कियो।
पुरुसारथ सो न कह्यौ परई।
बेस बनाइ कियौ बनितान को
देखत केसव ह्यौ हरई।
कूर कुठार निहारि तजौ फल
ताकौ यहै जो हियो जरई
आजु तैं केवल तोको महाधिक,
छत्रिन पै जो दया करई ॥२०८॥

शब्दार्थ—लक्ष्मण के पुरिखान = क्षत्रियमात्र से तात्पर्य है। ह्यौ = हृदय। बनितान = स्त्रियों का। ताको यहै = उसका ही यह परिणाम है।

व्याख्या—परशुरामजी 'कुठार' को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—लक्ष्मण के पूर्व-पुरुषों (यहाँ सभी क्षत्रियों से तात्पर्य है) ने जो पुरुषार्थ प्रदर्शित किया है उसका क्या कहा जाय? (उन्होंने हमें आता हुआ देखकर) सुन्दरी स्त्रियों का वेश बना लिया। उनका वह रूप (स्त्री वेशधारी रूप) देखते ही हृदय मुग्ध हो जाता था। हे क्रूर कुठार! उन्हें देखकर और स्त्री समझकर तूने छोड़ दिया, आज उसका ही यह परिणाम है जो हमारा हृदय जला जा रहा है। (यदि उस समय एक भी क्षत्रिय न बचा होता तो न दशरथ होते न राम-लक्ष्मण और न यह हृदय जलानेवाली बात ही आज सुनने को मिलती।) आज से यदि तूने (कुठार से तात्पर्य है) क्षत्रियों पर दया की तो तुझको महाधिकार है।

[गीतका छन्द]

तब एकविंसति बेर मैं बिन छत्र की पृथिवी रची।
बहु कुंड सोनित सों भरे पितु तर्पनादि क्रिया सची॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उबरे जे छत्रिय छुद्र भूतल सोधि सोधि सँहारिहौं।
अब बाल वृद्ध न ज्वान छाँड़हुँ धर्म निर्दय पारिही २०९॥

शब्दार्थ—एक विसति=इक्कीस। बिन छत्र की=छत्ररहित, राज रहित। सची=की। उबरे=बच गये। सोधि-सोधि=ढूँढ़-ढूँढ़-कर। पारिहौं=पालन करूँगा।

व्याख्या—परशुरामजी संकल्प कर रहे हैं—उस समय (माता के अपमान का बदला लेने के लिए) मैंने इक्कीस बार पृथ्वी को राजाओंसे (क्षत्रिय राजाओं से) रहित करके निःक्षत्र कर दिया था। राजाओं के रक्त से अनेक कुण्ड भर दिये थे और उन्हीं से पितरों का तर्पण किया था। (अब) उस भीषण संहार से बचे हुए क्षुद्र क्षत्रियों को ढूँढ़-ढुँढ़कर मारूँगा। बाल, वृद्ध या युवा किसी भी अवस्था के क्षत्रिय को अबनहीं छोड़ूँगा और निर्दयता पूर्वक धर्म का पालन करूँगा।

राम-[दो०] भृगुकुल-कमल-दिनेस सुनि, जीत सकल संसार।
क्यों चलिहै इन सिसुन पै, डारत हौ जसभार॥२१०॥

शब्दार्थ—भृगुकुल कमल-दिनस=भृगुकुल रूपी कमल को प्रफुल्ल करने के लिए दिनेश रूप परशुरामजी। सुनि=सुनिए।

व्याख्या—भगवान राम परशुराम को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ! अपने-अपने भुज-बल से सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल को जीतकर जो यश प्राप्त किया है उसका भार इन शिशुओं पर क्यों डाल रहे हैं? भला ये उस भार का निर्वाह कर सकेंगे? [इन शिशुओं से युद्ध ठानने में आपको पराजय निश्चित है। ऐसी स्थिति में आपका पूर्व अर्जित यश नष्ट हो जायगा और ये कुमार उस समस्त यश के भागी होंगे। व्यंग्य यह कि आप इन बालकों से पराजित होकर अपना यश क्यों खोना चाहते हैं।]

अलंकार—'अप्रस्तुत प्रशंसा', पहिली पंक्ति में 'परम्परित रूपक'।

परशुराम-[सो०] राम सुबंधु सँथारि, छोड़त हों सर प्रानहर
देहु हथ्यारन डारि हाथ समेतिन बेगि दै॥२११॥

शब्दार्थ—सुबन्धु=स्वबन्धु, अपने भाइयों को। बेगिदै=शीघ्रता से।

व्याख्या—परशुरामजी क्रुद्ध होकर कहते हैं—हे राम! मैं प्राण-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घातक शर छोड़ रहा हूँ आप अपने भाइयों को सँभालें। यदि वे बचना चाहते हों तो शीघ्र ही हाथों के साथ हथियार फेंक दें।

अलंकार—सहोक्ति।

[पद्धटिका छन्द]

राम—सुनि सकल लोक गुरु जामदग्नि।
तप विशिख असेसन की जो अग्नि॥
सब विशिख छाँड़ि सहिहौं अखंड।
हर-धनुख करयौं जिन खंड खंड॥२१२॥

शब्दार्थ—जामदग्नि = जमदग्नि के पुत्र, परशुराम। तप बिशिख = तपस्या के बाण, तप बल से प्राप्त शाप-शक्ति। अखण्ड = बाणों का निरन्तर आघात।

व्याख्या—भगवान राम अपने स्वभाव और गौरव के अनुकूल वचन कह रहे हैं—हे सभी लोकों के गुरु परशुरामजी! सुनिए, आपकी शापाग्नि और शरों की अखण्ड धारा का वेग सब-कुछ मैं सहन करूँगा। जब मैंने शंकर के धनुष को खण्डित किया है तो मेरा अपराध प्रकट है। परिणाम रूप में जो कुछ भोगना होगा भोगूँगा।

[इस कथन में दो प्रकार के व्यंग हैं। एक तो यह कि आप पूज्य हैं और मैं अपराधी हूँ। अतः आप जो भी दण्ड देंगे मैं चुपचाप सहन करूँगा। दूसरा यह है कि जब मैं हर के धनुष को खण्डित कर सकता हूँ तो आपको जानना चाहिए कि मुझमें आपके सभी प्रकार के बाणों के सहन करने की शक्ति है।]

[सवैया]

परशुराम-बान हमारेन के तनत्रान विचारि विचारि विरंचि करे हैं
गोकुल ब्राह्मन नारि नपुंसक जे जग दीन सुभाव भरे हैं॥
राम कहा करिहौ तिनको तुम बालक देव अदेव धरे हैं।
गाधि के नंद तिहारे गुरु जिनते ऋषि बेख किये उबरे हैं॥२१३॥

शब्दार्थ—हमारेन = हमारे। विचारि = सोचकर। विचारि = विशेष चार (गाय, ब्राह्मण, नारि, नपुंसक) उबरे हैं—बचे हैं।

व्याख्या—परशुराम की गर्वोक्ति है—हे राम! हमारे भीषण बाणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से जिनका शरीर सुरक्षित रह सकता है ऐसे केवल चार अपवाद हैं जिन्हें ब्रह्मा ने सोच-समझकर बनाया है। वे हैं—गाय, ब्राह्मण, स्त्रीवर्ग और नपुंसक व्यक्ति। यह सभी संसार में निरीह प्राणी हैं। भला तुम उनसे किस प्रकार त्राण पा सकोगे? तुम तो बालक हो। उनसे तो देवता और राक्षस दोनों ही भयभीत रहते हैं। तुम्हारे ये गुरु (विश्वामित्र) भी ऋषि वेश धारण करने कारण बच सके हैं अन्यथा इन्हें भी मेरे बाणों से बिद्ध होना पड़ता।

[षट्पद]

राम—भगन भयो भव-धनुख साल तुमको अब सालैं।
वृथा होई विधि-सृष्टि ईश आसन ते चालैं॥
सकल लोक संहरहु सेस सिर ते धर डारैं।
सप्त सिंधु मिलि जाहिं होंहि सबही तम भारैं॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुड़ि जाहि बरु।
भृगुतंद संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त शरु॥२१४॥

शब्दार्थ—भव-धनुख = शकर का धनुष। सालना = पीड़ित करना। ईश=महादेव। धर = धरा, पृथ्वी। ज्योति नारायणी = नारायणी शक्ति (जो परशुराम को प्राप्त थी)।

व्याख्या—गुरु की निंदा सुनकर राम का पौरुष जाग उठता है। वे स्पष्ट शब्दों में परशुराम से कहते है—महादेव के धनुष को पीड़ित करक खण्डित कर दिया है और अब आपको पीड़ित करता हूँ। मैं चाहूँ तो ब्रह्मा की सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट कर दूँ। समाधिस्थ शंकर को विचलित कर दूँ। सभी लोकों का संहार कर दूँ और शेषनाग को पृथ्वी शिर से अलग करने को विवश कर दूँ। मेरे सकेत मात्र से सातों सिंधु मिलकर एकाकार हो सकते है और सर्वत्र घोर अन्धकार छा सकता है (तात्पर्य यह है कि प्रलय का दृश्य उपस्थित हो सकता है) यही नहीं, आपमें जो दिव्य नारायणी शक्ति का अंश प्राण-ज्योति के रूप विद्यमान है वह अभी बुझ जा सकता है। यदि हमारी शक्ति देखना चाहते हैं तो अपना कुठार सँभालिए। मैं धनुष पर बाण चढ़ाता हूँ।

[स्वागता-छन्द]

राम राम जब कोप कर्‌यो जू।
लोक लोक भय भूरि भर्‌यो जू॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वामदेव तव आपुन आये।
राम देव दोऊ समुझाये ॥२१५॥

शब्दार्थ—राम-राम = श्रीराम और परशुराम। वामदेव = शंकर भगवान। राम देव दोऊ = दोनों राम देवों को (अर्थात् श्रीराम और परशुराम दोनों को)।

व्याख्या—जब श्रीराम और परशुराम दोनों ही क्रुद्ध हो गये तो सारा संसार भय से व्याकुल हो उठा। भयंकर परिस्थिति देखकर स्वयं महादेवजी उपस्थित हुए। उन्होंने दोनों राम देवों को समझा-बुझाकर शान्त किया।

[दो०] महादेव को देखि कै, दोऊ राम विसेस।
कीन्हों परम प्रनाम उन, आसिस दियो असेस ॥२१६॥

शब्दार्थ—दोऊ राम विसेस = दोनों विशिष्ट रामों ने (श्रीराम और परशुराम दोनों विशिष्ट रामदेवों ने) परम प्रनाम = श्रेष्ठ प्रणाम, शास्त्र विहित प्रणाम। असेस = पूर्ण, यथोचित।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[चतुष्पदी]

महादेव-भृगुनंदन सुनिए मन महँ गुनिए रघुनंदन निर्दोषी।
निजु ये अविकारी सब सुखकारी सबही विधि संतोषी।
एकै तुम दोऊ और न कोऊ एकै नाम कहायौ।
आयुर्बल खूट्यौ धनुष जो टूट्यौ मैं तनमनसुख पायौ॥२१७॥

शब्दार्थ—निजु = निश्चय ही। खूट्यो = समाप्त हो गया। अविकारी = विकार रहित।

व्याख्या—महादेवजी परशुराम को प्रबोध देते हुए कहते हैं—

हे भृगुनन्दन आप हमारी बात सुनें और स्वयं भी विचार करके देख लें। श्रीराम सब प्रकार से निर्दोष हैं। ये विकार रहित हैं। साधारण मनुष्यों की भाँति मायाजनित विकारों से ये प्रभावित नहीं होते) ये सभी को सुख देनेवाले हैं और सब प्रकार से सन्तोषी हैं। तुम दोनों एक हो। दोनों में भेद नहीं है। तुम दोनों का नाम भी एक ही है। धनुष भी इसलिए टूट गया कि उसका आयुर्बल समाप्त हो गया था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उसमें श्रीराम का कोइ दोष नहीं है) इस घटना से (धनुष टूटने से) मैं दुःखी नहीं हूँ वरन् मुझे तो शारीरिक और मानसिक सुख ही प्राप्त हुआ है।

[पद्धटिका छन्द]

तुम अमल अनंत अनादि देव।
नहिं वेद बखानत सकल भेव॥
सबको समान नहिं वैर नेह।
सब भक्तन कारन धरत देह॥२१८॥

शब्दार्थ—अमल = निर्विकार। भेव = मर्म, रहस्य।

व्याख्या—महादेवजी परशुराम और श्रीराम दोनों के लिए कह रहे हैं। इन पंक्तियों में दोनों के ईश्वरत्व का विवेचन हुआ है। महादेवजी कहते हैं—तुम दोनों निर्विकार अनादि और अनन्त हो। वेद भी तुम्हारे सम्पूर्ण रहस्यों को नहीं जानता। आप लोग समदर्शी हैं। न तो किसी से बैर है न किसी से प्रीति। भक्तों के लिए ही आप लोगों ने शरीर धारण किया है।

अब आपनपौ पहिचानि विप्र।
सब करहु आगिलौ काज छिप्र॥
तब नारायन को धनुख जानि।
भृगुनाथ दियो रघुनाथ पानि॥२१९॥

शब्दार्थ—आपनपौ = अपनत्व स्वत्व। विप्र=परशुराम के लिए है।

व्याख्या—महादेवजी अपनी सम्मति देते हुए कहते हैं—

हे विप्र (परशुराम) आप अपनी स्थिति को भली-भाँति समझकर शीघ्र ही आगे का कार्य करें। यह सुनकर परशुराम ने अपना धनुष (नारायणीय धनुष) श्री राम को दे दिया। (सम्भवतः यह जानने के लिए कि यदि सचमुच नारायण के अवतार होंगे तो धनुष-धारण करने में समर्थ होंगे)।

[मोटनक छंद]

नारायन कौ धनुबान लियो।
ऐंच्यो हँसि देवन मोद कियो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रघुनाथ कहेउ अब काहि हनौ।
त्रैलोक्य कँप्यो भय मान घनो ॥२२०॥
दिग्देव दहे बहु वात बहे।
भूकंप भये गिरिराज ढहे।
आकास विमान अमान छये।
हा हा सबही यह शब्द रये ॥२२१॥

शब्दार्थ—दिग्देव = दिग्पाल। अमान = बे प्रमाण, असीम। रये = उच्चारित किया।

व्याख्या—श्री रामजी ने परशुरामजी से नारायणी धनुष लेकर मुसकराते हुए (सहज भाव से) उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दिया। यह देखकर देवतागण हर्ष मग्न हो गए। भगवान राम ने पूछा—अब (इस चढ़ाये हुए बाण से) किसे विद्ध करूँ? भगवान राम को बाण छोड़ने के लिए उद्यत देखकर तीनों लोक काँप उठा। (दिशायें जलने लगीं फलतः) दिग्पाल दग्ध होने लगे। वायु वेग से बहने लगी। भूकम्प होने लगा। पर्वत ढहने लगे। आकाश में देवताओं के अगणित विमान छा गये। चारों ओर हाहाकार मच गया।

नोट—भगवान राम के मुसकराते हुए नारायणी धनुष खींचने का अभिप्राय यह था कि जब तुम्हारे गुरु के धनुष को 'लीलयैव' तोड़ दिया है तब इसकी बिसात ही क्या है? दूसरा अभिप्राय यह हो सकता है कि परशुराम तुम्हें अपने गुरु पर भी (भगवान शंकर) विश्वास नहीं है? उनकी साक्षी के बाद भी तुम हमारी परीक्षा लेना चाहते हो?

[शशिवदना छंद]

परशुराम—जग, गुरु जान्यो। त्रिभुवन मान्यो॥
मम गति मारौ। हृदय विचारौ ॥२२२॥

शब्दार्थ—मान्यो = मान्य, पूज्य। गति = शक्ति।

व्याख्या—परशुराम जी ने कहा कि हे राम! अब मैं समझ गया कि आप त्रिभुवन-पूज्य जगद्गुरु हैं। परिस्थिति को देखते हुए यही उचित है कि आप मेरी ही शक्ति (शक्ति से तात्पर्य सर्वश्रेष्ठ वीर होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मिथ्या अहंकार से है। नारायणी शक्ति से भी तात्पर्य हो सकता है) नष्ट कर दें।

[दो०] विषयी की ज्यों पुष्पशर, गति को हनत अनंग।
रामदेव त्यौंही कियो, परशुराम गति भंग ॥२२३॥

शब्दार्थ—पुष्पशर = फूलों का बाण। अनंग = कामदेव। गति = शक्ति।

व्याख्या—जिस प्रकार कामदेव, विषयी व्यक्ति की शक्ति को नष्ट कर देता है उसी प्रकार श्रीराम ने परशुरामजी की शक्ति को नष्ट कर दिया।

[चतुष्पदी छंद]

सुर पुर गति भानी सासन मानी भृगुपति को सुख भारो।
आशिष रसभीने सब कुछ दीने अब दसकंठहि मारो ॥२२४॥

शब्दार्थ—सुरपुर = विष्णुपुरी। गति = शक्ति। सुरपुर-गति = विष्णुपुरी गमन करने की शक्ति, नारायणी शक्ति। मानी = नष्ट कर दिया। सुखभारो = अधिक सुख पहुँचाया।

व्याख्या—भगवान राम ने परशुरामजी की आज्ञा मानकर (धनुष पर चढ़ाये हुए बाण से) उनकी नारायणी शक्ति नष्ट कर दी। इससे परशुराम जी को अत्यधिक सुख मिला। (यह सोचकर कि अब लोक-रक्षा का मेरा दायित्व समाप्त हुआ) उन्होंने श्रीराम को सुंदर (मंगलमय) आशीर्वाद दिया और कहा कि आपने हमको सब प्रकार से सुख पहुँचाया अब आप लोक पीड़क राक्षस-राज रावण का संहार करें।

[दो०] सोवत सीतानाथ के, भृगुमुनि दीन्हीं लात।
भृगुकुलपति की गति हरी, मनो सुमिरि वह बात ॥२२५॥

शब्दार्थ—सीतानाथ = राम, विष्णु के अवतार।

व्याख्या—भृगुमुनि ने शयन करते हुए भगवान विष्णु के वक्षस्थल पर पद-प्रहार किया था। मानो उसी प्रसंग को स्मरण करके रामचंद्रजी ने (विष्णु अवतार होने के कारण उस अपमान का बदला लेने के लिए) भृगुकुलपति (परशुराम) की दिव्य-शक्ति को नष्ट कर दिया।

अलंकार—स्मरण, उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सवैया]

ताड़का तारि सुबाहु सँहारि कै गौतम नारि के पातक टारे।
चाप हत्यो हर को हँसि कै तब देव अदेव हुते सब हारे॥
सीतहि ब्याहि अभीत चल्यौ गिरि गर्व चढ़े भृगुनंद उतारे।
श्रीगरुड़ध्वज को धनु लै रघुनंदन औधपुरी पगुधारे॥२२६॥

शब्दार्थ—हत्यो=खंडित किया। गिरिगर्व चढ़े भृगुनन्द उतारे=गर्व के गिरि पर चढ़े हुए परशुराम को उससे नीचे उतार दिया। (अर्थात् परशुराम का गर्व चूर्ण कर दिया) श्री गरुड़ध्वज=विष्णु। पगु धारे=गमन किया।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

अयोध्या-आगमन

[मुमुखी छन्द]

सब नगरी बहु सोभ रये। जहँ तहँ मंगल चार ठये॥
बरनत हैं कविराज बने। तन मन बुद्धि विवेक सने॥२२७॥

शब्दार्थ—रये=रंजित हुए। ठये=आयोजित हुए। कविराज बने=कवि बनकर, कवियों की भाँति। सने=युक्त।

व्याख्या—अयोध्या नगरी भली-भाँति सजाई गई है। जहाँ-तहाँ मंगलाचार हो रहा है। सभी लोग कवि रूप में नगर की शोभा का बखान कर रहे हैं। अयोध्यावासियों का शरीर, मन और बुद्धि विवेक-युक्त है। (अर्थात् विवेकपूर्ण होने के कारण अयोध्यावासियों ने शरीर को उचित वस्त्राभूषणों से, मन को उल्लास से और बुद्धि को सद्-असद् विचार से युक्त कर रखा है।

[मोटनक छन्द]

ऊँची बहु वर्ण पताक लसैं। मानो पुर दीपति सी दरसैं॥
देवीगण व्योम विमान लसैं। शोभैं तिनके मुख अंचल सैं॥२२८॥

शब्दार्थ—बहु वर्ण=अनेक रंगों की। दीपति=दीप्ति। सैं=समान।

व्याख्या—अयोध्या के महलों के ऊपर अनेक रंगों की पताकाएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शोभित हैं। उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि नगर की दीप्ति ही उनके रूप में साकार हो उठी है। या ऐसा लगता है कि अयोध्या की शोभा देखने के लिए आकाश में जो देव-बालायें एकत्र हुई हैं, ये (पताकायें) उनके मुख पर शोभित होने वाले अंचल-पट हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[तामरस छंद]

घर घर घंटन के रव बाजैं। विच विच सख जु झालरि साजैं॥
पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि सहनाइन सौं मन मोहैं।२२९।

शब्दार्थ—झालरि=विजयघण्ट। पटह=युद्ध का नगाड़ा। पखाउज=मृदंग। आवझ=ताशा।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[हीरक छंद]

सुंदरि सब सुंदर प्रति मंदिर पर यों बनी।
मोहन गिरि शृंगन पर मानहुँ महि मोहनी॥
भूषनगन भूषित तन भूरि चितन चोरहीं।
देखति जनु रेखति तनु बान नयन कोरहीं॥२३०॥

शब्दार्थ – रेखति=रेखांकित करती हैं, चिन्हित कर देती हैं, अमिट प्रभाव डालती हैं। कोर=अनी, कटाक्ष।

व्याख्या—अयोध्यापुरी में प्रत्येक महल की अटारियों पर एकत्र सुन्दरी नारियाँ (जो सम्भवतः बारात देखने के लिए इकट्ठी हो गई हैं) इस प्रकार शोभित हो रही हैं मानो मोहनगिरि शृंगों पर महिमोहिनी देवियाँ हों। उनके अंग अनेक प्रकार के भूषणों से अलंकृत हैं और वे अपने भुवन-मोहन सौन्दर्य से देखनेवालों का चित्त चुरा लेती है। वे अपने कटाक्ष-बाणों से लोगों के शरीर पर रेखा-सी खींच देती हैं। अर्थात् उनके कटाक्ष अमिट प्रभाव डालने में समर्थ हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[सुंदरी छंद]

शंकर शैल चढ़ी मन मोहति।
सिद्धन की तनया जनु सोहति॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्मन ऊपर पद्मिनि मानहुँ।
रूपन ऊपर दीपति जानहुँ ॥२३१॥

शब्दार्थ—शंकर शैल = कैलाश।

व्याख्या—महलों की अटारियों पर शोभित स्त्रियाँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो कैलाश के शृंगों पर विचरण करती हुई सिद्ध कन्यायें हों या कमल-कोशों के ऊपर पद्मिनियाँ शोभित हो रही हैं। या (ऐसा समझिये कि) रूप के ऊपर दीप्तियाँ प्रकाशित हो रही हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, माला।

[विवेशक छंद]

एक लिये कर दर्पण चंदन चित्र करे।
मोहति है मन मानहुँ चाँदनि चंद धरे॥
नैन विशालनि अंबर लालनि ज्योति जगी।
मानहुँ रागिनी राजति है अनुराग रँगी॥२३२॥
नील निचोलन को पहिरे यक चित्त हरे।
मेघन की द्युति मानहुँ दामिनि देह धरे॥
एकन के तन सूच्छम सारि जराय जरी।
सूर-करावलि सी जनु पद्मिनि देह धरी॥२३३॥

शब्दार्थ—चन्दन-चित्र करे = चन्दन-चित्रित किये हुए। अम्बर = वस्त्र। निचोलन = वस्त्र। सूच्छम = सूक्ष्म। जराय जरी = जड़ाऊ। सूर करावलि = सूर्य किरणों की अवली।

व्याख्या—अटारी पर शोभित युवतियों का सौन्दर्यांकन करते हुए कवि अनेक प्रकार की उत्प्रेक्षायें करता है। कोई युवती अपने अंगों पर चन्दन का लेप किये है और हाथ में दर्पण लिये है, उसे देखकर लगता है कि चाँदनी चन्द्रमा को हाथ में लिए हुए दर्शकों का मन मुग्ध कर रही है (चन्दन चर्चित युवती ही चाँदनी है और उसके हाथ का दर्पण ही चन्द्रमा है। कोई विशाल नेत्रों वाली स्त्री लाल वस्त्र पहिने हुए जग-मगा रही है ऐसा लगता है कि रागिनी अनुराग (प्रेम) में रँगकर शोभित हो रही है। कोई अन्य युवती नीला परिधान धारण किये हुए शोभित है। वह दर्शकों का चित्त चुरा लेती है। ऐसा लगता है मानो दामिनि ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघ-कान्ति धारण कर लिया है। एक के शरीर पर सूक्ष्म जड़ाऊ साड़ी शोभित है ऐसा प्रतीत होता है मानो पद्मिनी ने सूर्य-किरणों का आवरण धारण कर लिया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[तोटक छंद]

बरखै कुसुमावलि एक घनी।
शुभ शोभन कोमलता सी बनी॥
बरखै फल फूलन लायक की।
जनु हैं तरुनि रतिनायक की॥२३४॥

शब्दार्थ—शुभ-शोभन = अत्यन्त पवित्र शोभा स युक्त। लायक = लाजक, लावा, धान की खील।

व्याख्या—कोई तरुणी पुष्प-वर्षा कर रही है। वह पवित्र शोभा से युक्त है। लगता है साक्षात् कोमलता ने ही शरीर धारण कर लिया है। दूसरी फल, फूल और धान के लावा की वर्षा कर रही है। लगता है कामदेव की स्त्री रति शोभित हो रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] भीर भये गज पर चढ़े, श्री रघुनाथ विचारि।
तिनहि देखि बरनत सबै, नगर नागरी नारि॥२३५॥

शब्दार्थ—नागरी = चतुरा स्त्रियां।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[तोटक छंद]

तमपुंज लियौ गहि भानु मनौ।
गिरि-अंजन ऊपर सोम भनौ॥
मनमत्थ विराजत सोभ तरे।
जनु भासत लोभहि दान करे॥२३६॥

शब्दार्थ—गिरि-अंजन = कज्जलगिरि। भनौ = कहो। मनमत्थ = कामदेव। सोभ तरे = शृंगार के नीचे।

व्याख्या—भीड़ अधिक होने पर श्री रामचन्द्रजी हाथी पर सवार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर चल रहे हैं। उनकी शोभा का वर्णन चतुर स्त्रियाँ कर रही हैं। हाथी पर सवार राम ऐसे लग रहे हैं मानो घने अन्धकार ने सूर्य को पकड लिया है। या यों कहा जा सकता है कि कज्जलगिरि पर चन्द्रमा शोभित है। (हाथी को कज्जलगिरि और रामचन्द्र को चन्द्रमा के रूप में कल्पित किया गया है) या यह समझिये कि शृंगार के नीचे कामदेव शोभित है। (रामचन्द्रजी के शृंगार और हाथी को मनमथ के रूप में कल्पित किया गया है। या यह कहा जा सकता है कि लोभ के मस्तक पर दान शोभित है। (हाथी को लोभवृत्ति के रूप में और राम को दान के रूप में कल्पित किया है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा, माला।

[मरहट्टा छंद]

आनंद प्रकासी सब पुरबासी करत ते दौरा दौरी।
आरती उतारैं सरबस वारैं अपनी अपनी पौरी॥
पढ़ि मंत्र अशेषनि करि अभिषेकनि आशिष दे सविशेषै।
कुंकुम-कर्पूरनि मृगमद-चूरनि वर्षति वर्षा वेषै॥२३७॥

शब्दार्थ—आनन्द प्रकासी = आनन्द प्रकट करनेवाले। पौरी = ड्योढ़ी, दरवाजा। अशेषनि = सम्पूर्ण। सविशेषै = विशेष प्रकार से। मृगमद = कस्तूरी। चूर = चूर्ण। वर्षा वेषै = वर्षा के रूप में, इस प्रकार से कि मानो वर्षा हो रही हो।

व्याख्या—सकुशल दूलह राम को लौट आया देखकर आयोध्यावासी अत्यधिक आनन्द प्रकट कर रहे है। वे उल्लास में (राम का स्वागत करने के लिए) इधर-उधर दौड़ रहे हैं। अपने-अपने घरों के द्वार पर वे राम की आरती उतारते हैं और अपना सब कुछ निछावर कर देते हैं। वे मंगल कामना करते हुए शुभ और सम्पूर्ण मन्त्रों का पाठ करके राम का अभिषेक करते हैं। विशेष प्रकार से (प्रेम पूर्वक) आशीर्वाद देते हैं। वे राम के ऊपर कुंकुम, कर्पूर और कस्तूरी के चूर्ण की वर्षा इस प्रकार करते हैं जैसे वास्तविक जल-वृष्टि हो रही हो।

[आभीर छन्द]

यहि विधि श्रीरघुनाथ। गहे भरत को हाथ॥
पजत लोग अपार। गये राजदरबार॥२३८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—पूजत लोग अपार = अनेक लोगों से पूजित होकर।

व्याख्या—सरल है।

गये एकही बार। चारों राजकुमार॥
सहित वधूनि सनेह। कौशल्या के गेह॥२३९॥

शब्दार्थ—सहित वधूनि = बहुओं के साथ। सनेह = प्रेम पूर्वक। गेह = गृह।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[त्रिभंगी छन्द]

बाजे बहु बाजैं तारनि साजैं सुनि सुर लाजैं दुख भाजैं।
नाचत नव नारी सुमन सिगारी गति मनुहारी सुख साजैं॥
बीनानि बजावैं गीतनि गावैं मुनिन रिझावैं मन भावैं।
भूखन पट दीजै सब रस भीजै देखत जीजै छवि छावैं॥२४०॥

शब्दार्थ—तारनि = उच्च स्वर से। सिगारी = शृंगार किये हुए। गति-मनुहारी = मन को मुग्ध करनेवाली गति। भूषण पट दीजै = भूषण और वस्त्र देते हैं। सब रस भीजै = सब पुरवासी रसमग्न हो रहे हैं। देखत जीजै = नृत्य करनेवाली नर्तकियों में रूप लावण्य को देखकर जीवन धारण करते हैं।

व्याख्या—सरल है।

[सो०] रघुपति पूरण चंद, देखि देखि सब सुख मढ़ैं।
दिन दूने आनंद, ता दिन तें तेहि पुर बढ़ैं॥२४१॥

शब्दार्थ—दिन = प्रतिदिन। सुख मढ़ैं = सुखी होते हैं।

व्याख्या—पूर्ण चन्द्रमा के समान रामचन्द्र को देख-देखकर सब अयोध्यावासी सुखी होते हैं। उस दिन से नित्य प्रति अयोध्या में दूना आनन्द व्याप्त हो गया है।

नोट—तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

सब विधि सब पुर लोग सुखारी।
रामचन्द्र मुख चंदु निहारी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अयोध्या कांड

रामवनगमन

[दो०] रामचंद्र लक्ष्मण सहित, घर राखे दशरत्थ।
विदा कियो ननसार का, सँग शत्रुघ्न भरत्थ ॥ १ ॥

शब्दार्थ—ननसार = ननिहाल।

व्याख्या—सरल है।

[तोटक छन्द]

दशरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वशिष्ठहिं मंत्र लये।
दिन एक कहो शुभ शोभ रयो। हम चाहत रामहिं राज दयो॥२॥

शब्दार्थ—मोद रये = मोदमग्न। मन्त्र लये = मन्त्रणा की। शोभ रयो = शोभा से युक्त।

व्याख्या—मोदमग्न महाराज दशरथ ने वशिष्ठजी को बुलाकर मंत्रणा की। उन्होंने कहा कि कोई एक शुभ दिन निश्चित कर दीजिये। मैं रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक करना चाहता हूँ।

यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ वन रामहिं बुद्धि गुनी॥
तेहिं मंदिर मैं नृप सों विनयो। वर देहु, हतो हमको जो दयो॥३॥

शब्दार्थ—बुद्धि गुनी = मन में निश्चय किया। हतो = था। हतो हमको जो दयो = जो हमको दिया था।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

नृप बात कही हँसि हेरि हियो।
"वर माँगि सुलोचनि मैं जो दियो"॥
"नृपता सुविशेष भरत्थ लहैं।
वरषैं वन चौदह राम रहैं"॥४॥

शब्दार्थ—हेरि हियो = हृदय में हेरकर; स्मरण करके। नृपता = राज-सत्ता। वरषैं = वर्ष पर्यन्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—सरल है।

[पद्धटिका छन्द]

यह बात लगी उर वज्र तूल।
हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल॥
उठि चले विपिन कहँ सुनत राम।
तजि तात मात तिय बंधु धाम॥५॥

शब्दार्थ—जीरन = जीर्ण। दुकूल = वस्त्र।

व्याख्या—स्पष्ट है।

कौशल्या और राम

[मौक्तिकदाम छन्द]

गये तहँ राम जहाँ निज मात।
कही यह बात कि हैं बन जात॥
कछू जनि जी दुख पावहु माइ।
सो देहु अशीष मिलौं फिरि आइ॥६॥

शब्दार्थ—निज मात = माता कौशल्या। माइ = मातु।

व्याख्या—स्पष्ट है।

कौशल्या – रहो चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु।
न देखि सकैं तिनके उर दाहु॥
लगी अब बाप तुम्हारेहि वाइ।
करैं उलटी विधि क्यों कहि जाइ॥ ७॥

शब्दार्थ—वाइ = वायु, वायु विकार से पीड़ित है। विधि = रीति, व्यवस्था।

व्याख्या—माता कौशल्या राम से कह रही हैं—हे पुत्र राम! ऐसा न कहो (चुप रहो) तुम क्यों वन को जाओगे? जो लोग तुम्हारा राज्याभिषेक नहीं देख सकते उनका हृदय दग्ध हो। तुम्हारे पिताजी (महाराज दशरथ) तो वायु-विकार से पीड़ित हैं। (इसी से उचित-अनुचित का विचार त्यागकर बकवाद कर रहे हैं) वे उलटी व्यवस्था कर रहे हैं अर्थात् इस अवसर पर जो उचित है उसके विपरीत कार्य-प्रणाली अपना रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[ब्रह्मरूपक छंद]

राम—अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बात मोल लै करै जो दीह पोषि गात॥
दास होइ पुत्र होइ शिष्य होइ कोइ माइ।
शासना न मानई तौ कोटि जन्म नर्क जाइ॥८॥

शब्दार्थ—दीह=दीर्घ। शासना=शासन, आज्ञा।

व्याख्या—रामचन्द्रजी नीति की बात कह रहे हैं—हे माता! राजा जो अन्न देता है, गुरु जो शिक्षा देता है, स्वामी जो सेवक को मोल लेकर प्राणों की रक्षा करता है और पिता जो पोषण करके पुत्र के शरीर को बड़ा और पुष्ट बनाता है; इन सबकी आज्ञा मानना सेवक, शिष्य और पुत्र सभी का कर्त्तव्य है। यदि ये लोग (दास, पुत्र और शिष्य) आज्ञा नहीं मानते हैं तो कोटि जन्मों में नरक में निवास करना पड़ता है। (तात्पर्य है कि महाराज दशरथ तो राजा और पिता दोनों ही हैं। उनकी आज्ञा मानना हमारा परम कर्त्तव्य है)

[हरनी छन्द]

कौशल्या—मोहिं चलौ वन संग लियै। पुत्र तुम्हें हम देखि जियै॥
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज भरतत्थ करै॥९॥

शब्दार्थ—गाज परै=(मुहावरा) नष्ट हो जाय; ध्वंस हो जाय।

व्याख्या—सरल है।

[तोमर छन्द]

राम—तुम क्यौं चलौं वन आजु। जिन सीस राजत राजु॥
जिय जानिए पतिदेव। करि सर्वभाँतिन सेव॥१०॥

शब्दार्थ—जिन सीस राजत राजु=जिनके स्वामी रूप में महाराज दशरथ विराजमान हैं। पतिदेव=पति को देवता समझना चाहिए।

व्याख्या—सरल है।

नोट—राम का इस प्रकार माता को पतिव्रत धर्म का उपदेश देना उचित नहीं प्रतीत होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] मनसा वाचा कर्मणा, हम सों छाँड़ो नेहु।
राजा को विपदा परी, तुम तिनकी सुधि लेहु ॥११॥

शब्दार्थ—हम सों छाँड़ो नेहु—स्नेहवश होकर हमारी चिन्ता न करो। सुधि लेहु = चिन्ता करो।

व्याख्या—स्पष्ट है।

सीता प्रति राम का उपदेश

[पद्धटिका छन्द]

उठि रामचंद्र लक्ष्मण समेत।
तब गये जनकतनया-निकेत ॥
राम—सुनु राजपुत्रिके एक बात।
हम बन पठये हैं नृपति तात ॥१२॥
तुम जननी-सेव कहँ रहहु वाम।
कै जाहु आजुही जनक-धाम ॥
सुनु चंद्रवदनि गजमनि ऐनि।
मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥१३॥

शब्दार्थ—राजपुत्रिके = राजकुमारी सीता। वाम = बामा, स्त्री, ऐनि = एणी, मृगी। जलज नैन = कमल सदृश नेत्रों वाली।

व्याख्या—सुगम है।

[नाराच छन्द]

सीता—न हौं रहौं, न जाहुँ जू विदेह-धाम को अबै।
कहा जो बात मातु पै सो आजु मैं सुनी सबै ॥
लगे छुधाहि माँ भली विपत्ति माँझ नारियै।
पियास त्रास नीर, वीर युद्ध मैं सम्हारियै ॥१४॥

शब्दार्थ—छुधाहि = भूख लगने पर। पियास त्रास = प्यास की त्रास, अत्यधिक प्यास लगने पर। वीर = भाई।

व्याख्या—सीताजी दृढ़तापूर्वक अयोध्या में न रहने की बात कहती हैं—न तो मैं यहाँ (अयोध्या में) रहूँगी और न जनकपुरी में ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाऊँगी। आज जो कुछ आपने माता कौशल्या से कहा है वह सब हमें ज्ञात हो चुका है। (वन-गमन की बात हमको पहले से ही ज्ञात हो चुकी है और मैंने अपने विषय में निर्णय भी ले लिया है।) भूख लगने पर माता अच्छी लगती है; विपत्ति पड़ने पर स्त्री की आवश्यकता का अनुभव होता है। तृषा लगने पर जल की चाह होती है और युद्ध छिड़ने पर भाई सहारा देता है। (तात्पर्य यह कि इस समय आप पर विपत्ति आई है, ऐसी स्थिति में सेवा के लिए मेरा साथ रहना आवश्यक है।)

नोट—चमत्कारवादी टीकाकारों ने "विपत्ति माझ नारियै" को "नारियै माझ विपत्ति" करके आगे की सभी विपत्तियों का कारण नारी होगी ऐसा संकेत भी ग्रहण किया है।

[सुप्रिया छन्द]

लक्ष्मण—बन महँ विकट विविध दुख सुनिए।
गिरि-गहवर मग अगमहि गुनिए॥
कहुँ अहि हरि, कहुँ निशिचर चरहीं।
कहुँ दव दहन दुसह दुख दहहीं॥१५॥

शब्दार्थ—विकट=भयंकर। सुनिए=सुने जाते हैं। अगमहि=अगम्य, न जा सकने योग्य। अहि=सर्प। दव-दहन=जंगल को दग्ध करने वाली, दावाग्नि।

व्याख्या—लक्ष्मणजी जंगल के भीषण कष्टों की बात कहकर सीताजी को विचलित करना चाहते हैं। वे कहते हैं—जंगल में अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट सुने जाते हैं। जंगल के मार्ग बड़े-बड़े गिरि-गह्वरों के कारण अगम्य होते हैं। कहीं पर सर्प, कहीं पर सिंह और कहीं राक्षस विचरण करते रहते हैं। कहीं भयंकर दावाग्नि असह्य दुःख का कारण बन जाती है।

[दंडक छन्द]

सीता—केसौदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास
दुख कौ निवास विष मुखहू गह्यौ परै।
वायु को वहन, दिन दावा को दहन, बड़ी
बाड़वा-अनल ज्वाल-जाल में रह्यो परै॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीरन जनम जात जोर जुर घोर पीर॥
पूरण प्रकट परिताप क्यौं कह्यौ परै।
सहिहौं तपन ताप, पति के प्रताप
रघुवीर को विरह वीर मोसों न सह्यौ परै॥१६॥

शब्दार्थ—उपहास=दूसरों द्वारा उड़ाई जाने वाली हँसी। बहन=झोंका। दहन=जलन। दिन=प्रतिदिन। दावा=दावाग्नि। जीरन जनमजात जुर=जन्म से ही उत्पन्न होने वाला जीर्ण ज्वर। वीर=भाई (यहाँ लक्ष्मण से तात्पर्य है) तपन-ताप=सूर्य का ताप।

व्याख्या—सीताजी राम के विरह से उत्पन्न दुःख के सामने संसार के भीषण से भीषण दुःख को सह्य मानती हैं। वे कहती हैं हे वीर! (लक्ष्मण) मैं नींद, भूख, प्यास आदि शारीरिक कष्टों का सहन कर सकती हूँ। लोगों द्वारा किया गया उपहास भी मुझे स्वीकार्य है। सभी प्रकार के दुःखों को जड़ विष भी मैं पान कर सकती हूँ। तप्त वायु के झोंकों, दावाग्नि की भीषण ज्वाल मालाओं और बाड़वाग्नि की भयंकर लपटों को भी नित्य-प्रति झेला जा सकता है। जन्मजात भयंकर जीर्ण ज्वर का अकथनीय परिताप तथा प्रखर सूर्य का विषम ताप भी मैं अपने पति के प्रताप से सह लूँगी किन्तु राम का विरह मुझसे नहीं सहा जायगा।

अलंकार—अनुप्रास, परिकर।

लक्ष्मण प्रति राम का उपदेश

[विशेषक छंद]

राम—धाम रहौ तुम लक्ष्मण राज की सेव करौ।
मातनि के सुनि तात सो दीरघ दुःख हरौ॥
आइ भरत्थ कहा धौं करै जिय भाय गुनौ।
जौ दुख देइँ तो लै उरगौ, यह बात सुनौ॥१७॥

शब्दार्थ—राज=महाराज दशरथ। भाय=भाव। गुनौ=विचार करके समझो। लै उर गौ=गौं से उसे हृदय में रख लो; चुपचाप स्वीकार कर लो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—रामचन्द्रजी लक्ष्मण को अयोध्या ही में बनें रहने के लिए शिक्षा दे रहे हैं—हे लक्ष्मण ! तुम यहीं घर पर रहो। यहाँ रह-कर महाराज दशरथ की सेवा करो। हे तात ! माताओं के असह्य कष्टों का भी निवारण करो। यहाँ लौटकर भरत न जाने किस प्रकार का व्यवहार करें ? उनके हृदय के भावों का समझदारी के साथ विचारपूर्वक अध्ययन करना। यदि वे कष्ट भी दें तो (समय की विषमता देखकर) चुपचाप स्वीकार कर लेना।

नोट—लक्ष्मण को अयोध्या में रोकने का राजनीतिक प्रयोजन भी था। केशव ने इसी ओर संकेत किया है।

लक्ष्मण—[दो०] शासन मेटो जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिए, घर सेवक, वन नाथ ॥१८॥

शब्दार्थ—शासन = आज्ञा। बूझिये = समझिये।

व्याख्या—लक्ष्मणजी बड़ा ही स्पष्ट और सुलझा हुआ उत्तर देते हैं—वे कहते हैं कि आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं हो सकता अर्थात् आपकी आज्ञा मानकर मैं अयोध्या में तो रह जाता हूँ किन्तु मेरे प्राण तो मेरे ही हाथ में हैं। अर्थात् यदि आप साथ नहीं ले जायँगे तो अपने प्राण त्याग दूँगा। भला यह कैसे हो सकता है कि सेवक तो घर पर रहकर राजमहलों का सुख भोगे और स्वामी वन-वन की खाक छानता फिरे।

वन यात्रा

[द्रुतविलंबित छंद]

विपिन-मारग राम विराजहीं।
सुखद सुंदरि सोदर भ्राजहीं ॥
विविध श्रीफल सिद्ध मनो फल्यो।
सकल साधन सिद्धिहि लै चल्यो ॥१९॥

शब्दार्थ—श्री = शोभा, कान्ति। साधन = योग के साधन (यम, नियम, संयम आदि सिद्धि = अष्ट सिद्धियाँ (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, इशित्व और वशित्व)।

व्याख्या—भगवान राम वन-मार्ग में शोभित हो रहे हैं। उनके साथ सुखदायिनी सुन्दरी सीता और सहोदर भाई लक्ष्मण भी शोभित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई तपस्वी साधक तप-जनित विविध फलों से युक्त होकर शोभा पा रहा है और अपने जीवन की समस्त साधना और सिद्धि दोनों को लेकर घर लौट रहा है। (कवि ने राम को साधक, लक्ष्मण को साधना और सीता को सिद्धि रूप में कल्पित किया है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दो०] राम चलत सब पुर चल्यो, जहँ तहँ सहित उछाह।
मनौ भगीरथ-पथ चल्यौ, भागीरथी-प्रवाह ॥२०॥

शब्दार्थ—पुर = पुरवासी। भागीरथी = गंगा।

व्याख्या—राम के वन चलते समय समस्त अयोध्यापुरी के लोग जहाँ-तहाँ उत्साह मग्न होकर उनके साथ चल पड़े। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गंगा का प्रवाह महाराज भगीरथ के पथ का अनुगमन करता हुआ प्रवाहित हो रहा है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[चंचला छन्द]

रामचन्द्र धाम ते चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै, सोह्न गये महा विहाल ॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यों मिल्यो द्युलोक जाइ।
गेह चूरि ज्यौं चकोर चन्द्र में मिलै उड़ाइ ॥२१॥

शब्दार्थ—विहाल = व्याकुल। ब्रह्मरंध्र = मस्तक के मध्य भाग का एक गुप्त छिद्र जिससे प्राणों के निकलने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। द्युलोक = सुरलोक। गेह = पिंजरा।

व्याख्या—जिस समय राजा दशरथ ने राम के गृह-त्याग का समाचार सुना, बस तुरन्त ही वे अत्यधिक व्याकुल हो गए। उन्हें कुछ कहने-सुनने का अवसर ही नहीं मिला। ब्रह्मरंध्र (मस्तक के मध्य भाग का गुप्त छिद्र) फोड़कर उनके प्राण उसी प्रकार देवलोक में चले गए जिस प्रकार चकोर पिंजड़े को तोड़कर चन्द्रमा से मिलने के हेतु उड़ जाता है।

अलंकार—उदाहरण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[चंचरी छंद]

कौन हौ कित तें चले, कित जात हौ, केहि काम जू।
कौन की दुहिता, बहू, कहि कौन की यह बाम जू॥
एक गाउँ रहौ कि साजन मित्र बंधु बखानिए।
देश के, परदेश के, किधौं पंथ की पहिचानिए॥२२॥

शब्दार्थ—दुहिता = पुत्री। बाम = स्त्री। साजन = (सं० सज्जन) परिचित सज्जन। किधौं पंथ की पहिचानए = या रास्ते का ही परिचय है।

व्याख्या—मार्ग में लोग रामजी से अनेक प्रकार के प्रश्न कर रहे हैं। वे पूछते हैं—कि आप कौन हैं? कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जा रहे हैं, किस काम से जा रहे हैं? साथ में यह किसकी पुत्री या पुत्रबधू या स्त्री है? आप तीनों एक ही गाँव के रहने वाले हैं कि सज्जनता के नाते एक साथ हो गए हैं कि मित्र हैं कि भाई? आप लोगों की जान-पहिचान एक ही स्थान के निवासी होने के कारण है (देश के) या सभी लोग परदेशी हैं इस नाते परिचय हो गया है या अभी किसी एक स्थान तक आप सबको जाना है इसलिए मार्ग में परिचय हो गया है?

अलंकार—सन्देह।

[जगमोहन दंडक]

किधौं यह राजपुत्री, वरहीं वर्‌यो है किधौं,
उपदि वर्‌यो है यहि सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसौदास,
जात तपोवन सिव वैर सुमिरत हो।
किधौं मुनि शापहत, किधौं ब्रह्मदोषरत,
किधौं सिद्धियुत, सिद्ध परम विरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हौ ठगोरी लीन्हें, किधौं तुम,
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हो।२३।

शब्दार्थ—वरहीं = बलपूर्वक। वर्‌यो है=वरण किया है। उपदि = अपनी इच्छा से (गुरुजनों की इच्छा के विरुद्ध स्वेच्छा से) जस = यश। श्री = लक्ष्मी। शिवा – पार्वती। ठगोरी = मोहनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—मार्ग में लोग राम, सीता और लक्ष्मण को देखकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं और अनेक प्रकार के प्रश्न उन्हीं कल्पनाओं के आधार पर पूछते हैं। वे कहते हैं कि या तो आपने इस राजकुमारी को बलपूर्वक वरण किया है या इसने माता-पिता की आज्ञा के विरुद्ध स्वेच्छा से आपको वरण किया है। आपका सौंदर्य सराहते ही बनता है। आप तीनों को एक साथ देखकर ऐसा लगता है कि या तो कामदेव अपनी स्त्री 'रति' और अपने विश्वजयी होने का 'यश' दोनों को साथ लेकर शिव के साथ अपना पुराना वैर स्मरण करता हुआ तपोवन में निवास करने के लिए जा रहा है; (राम, कामदेव सीता, रति और लक्ष्मण यश रूप में कल्पित किए गए है) या किसी मुनि द्वारा शापित कोई व्यक्ति है जो अपने निकट सम्बन्धियों के साथ शाप-मुक्ति तक का समय व्यतीत करने के लिए वन की ओर जा रहा है, या कोई ब्रह्मदोषी है जो इस प्रकार अपकार करने की भावना से वेश परिवर्तित करके आश्रमों की ओर जा रहा है, या कोई सिद्ध पुरुष है जो परम विरक्ति की स्थिति में अपनी अर्जित सिद्धि के साथ तपोवन में जा रहा है; या कोई ठग है जो अपनी मोहनी शक्ति (ठगोरी) के साथ छद्म रूप में मार्ग में चला जा रहा है; या साक्षात् विष्णु, लक्ष्मी और शंकर भगवान हैं जो पार्वती को ढूँढ़ते हुए भटक रहे है (राम को विष्णु, सीता को लक्ष्मी और लक्ष्मण को शंकर के रूप में कल्पित किया गया है।)

अलंकार—संदेह।

[मत्त-मातंग लीला-करन दंडक]

मेघ-मंदाकिनी चारु-सौदामिनि
रूप रूरे लसैं देहधारी मनौ।
भूरि भागीरथी भारती हंसजा
अंस के हैं मनौ भागभारे मानौ॥
देवराजा लिये देवरानी मनौ
पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।
पच्छ दू संधि संध्या सधी है मनौ
लच्छि ये स्वच्छ प्रत्यक्ष ही मोहिए॥२४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—मंदाकिनी = आकाश गंगा। सौदामिनी = बिजली। रूरे = सुन्दर। भागीरथी = गंगा। भारती = सरस्वती (नदी के अर्थ में)। हंसजा = यमुना। पक्ष द्व = दोनों पक्ष (कृष्ण और शुक्ल)। लच्छिये = लक्षित हो रही हैं। सधी हैं = एकत्र स्थित हैं।

व्याख्या—राम, लक्ष्मण और सीता एक साथ वन-गमन करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मेघ, आकाश गंगा और बिजली प्रत्यक्ष देह धारण करके शोभित हो रहे हैं। या यह कहा जा सकता है कि अनेक गंगा, सरस्वती और यमुना के अंश हैं जो देह धारण करके विराजमान हैं। (अतः) जो लोग इनका दर्शन प्राप्त कर रहे हैं उनका परम सौभाग्य है (क्योंकि गंगा, यमुना और सरस्वती के प्रत्यक्ष दर्शन से तीर्थराज के दर्शन से भी अधिक फल प्राप्त हो सकता है) या यह समझिये कि देव-राज इन्द्र अपनी पत्नी इन्द्राणी और पुत्र जयन्त के साथ भूलोक में शोभित हैं। या यह कहा जा सकता है कि कृष्ण और शुक्ल पक्ष के सन्धि काल की तीनों सन्ध्याएँ (प्रातः, दोपहर और संध्या एकत्र स्थित हो गयी हैं जिनके निर्मल रूप को प्रत्यक्ष देखकर मन मुग्ध हो रहा है।

नोट—प्रातः सन्ध्या का रंग लाल, मध्याह्न संध्या का रंग श्वेत तथा सायं संध्या का रंग श्याम माना जाता है। इस वर्ण्य साम्य के आधार पर राम को सायं संध्या, सीता को मध्याह्न संध्या और लक्ष्मण को प्रातः संध्या के रूप में कल्पित किया गया है।

विशेष—यहाँ उपमान ग्रहण करते समय केशव ने लिंग गत औचित्य का ध्यान नहीं रखा है। राम-लक्ष्मण के लिए भी प्रायः स्त्री वाची उपमान प्रयुक्त हुए हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[अनंगशेखर दंडक]

तड़ाग नीर-हीन तें सनीर होत केसौदास
पुंडरीक-झुंड भौंर-मंडलीन मंडहीं।
तमाल वल्लरी समेत सूखि सूखि के रहे
तें बाग फूलि फूलि कै समूल सूल खंडहीं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चितै चकोरनी चकोर, मोर मोरनी समेत
हंस हंसिनी समेत, सारिका सबै पढ़ैं
जहीं जहीं विराम लेत रामजू तहीं तहीं
अनेक भाँति के अनेक भोग भोग सो बढ़ैं ॥२५॥

शब्दार्थ—पुण्डरीक=श्वेत कमल। बल्लरी=लता। विराम लेत =रुकते हैं।

व्याख्या—जहाँ कहीं भगवान् राम विश्राम के लिए रुक जाते हैं वहाँ उनकी महिमा के प्रभाव से वातावरण सर्वथा नवीन हो जाता है। सूखे हुए सरोवर जलयुक्त हो जाते हैं, उनमें श्वेत कमलों के पराग से आकर्षित होकर भ्रमरों के झुण्ड मँडराने लगते हैं। वे उद्यान जिनमें लताओं के साथ तमाल वृक्ष सूख गए थे वे पुष्पित होकर लोगों के कष्टों को समूल नष्ट कर देते हैं। चकोर चकोरी को देखकर, मोर मयूरी को देखकर, हंस हंसिनी को देखकर और शुक सारिका को देखकर प्रेमवश कूजने लगते हैं। सभी लोगों का भाग्योदय हो जाता है और अनेक प्रकार की भोग-सामग्री उत्पन्न हो जाती है।

[सुन्दरी छन्द]

घाम को राम समीप महाबल।
सीतहि लागत है अति सीतल ॥
ज्यौं घन-संयुक्त दामिनी के तन।
होत हैं पूषन के कर भूषन ॥२६॥

शब्दार्थ—पूषन=सूर्य। कर=किरणें।

व्याख्या—महाबली राम के साथ वन-गमन करते हुए सूर्य की प्रचण्ड धूप भी सीताजी को शीतल प्रतीत हो रही है। ठीक वैसे ही जैसे श्याम घन के साथ रहने कारण बिजली के लिए सूर्य की किरणें अलंकरण बन जाती है।

मारग की रज तापित है अति।
केशव सीतहि सीतल लागति ॥
ज्यौं पद-पंकज ऊपर पाँयनि।
दै जो चलै तेहि ते सुखदायनि ॥२७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—तापित = तप्त, जलती हुई। मारग = मार्ग, रास्ता।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[दो०] प्रति पुर औ, प्रति ग्राम कीं, प्रति नगरन की नारि।
सिताजू को देखिकै, बरनत हैं सुखकारि ॥२८॥

शब्दार्थ—औ = और।

व्याख्या—सरल है।

[जगमोहन बंडक]

बासों मृग-अंक कहैं, तोसों मृगनैनी सब,
वह सुधाधर, तुहूँ सुधाधर मानिए।
वह द्विजराज, तेरे द्विजराजि राजैं, वह
कलानिधि, तुहूँ कला-कलित बखानिए॥
रत्नाकर के हैं दोऊ केसव प्रकास कर,
अवर विलास कुवलय हित मानिए॥
वाके अति सीत कर, तुहूँ सीता सीतकर,
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानिए॥२९॥

शब्दार्थ—मृग-अंक = मृग है अंक में जिसके, चन्द्रमा। सुधाधर = अमृत धारण करने वाला। सुधाधर = सुधा सदृश अधर हैं जिसके, सीता। द्विजराज = चन्द्रमा। द्विजराजि = दन्त पंक्ति। कलानिधि = चन्द्रमा। कलाकलित = कलाओं की पूर्ण ज्ञाता। रत्नाकर = (१) समुद्र, (२) राशि। अम्बर विलास = (१) जो आकाश में विलसित होता है। (२) जो सुन्दर वस्त्रों में विलसित होती है। कुवलय = (१) कुमुदिनी, (२) पृथ्वी-मण्डल। सीतकर = शीतल हैं किरणें जिसकी। सीतकर = शीतलता प्रदान करने वाली, सुख देने वाली।

व्याख्या—वन-मार्ग में ग्रामों और नगरों की वधुयें सीताजी के सौन्दर्य का वर्णन करती हैं। यहाँ सीता और चन्द्रमा के रूप-शील की तुलना की गई है। कोई ग्रामवधू सीताजी से कहती हैं—हे सीते! चन्द्रमा को लोग मृगांक कहते हैं तो तू भी मृगनयनी नाम से विख्यात है। यदि वह (चन्द्रमा) अमृत धारण करने वाला है तो तू भी अमृत-सदृश अधरों को धारण करने वाली है। यदि वह (चन्द्रमा) द्विज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राज है तो तेरी भी द्विजराजि (दन्तपंक्ति) शोभित है। यदि वह (चन्द्रमा) कलानिधि है (कला-कला करके वृद्धि प्राप्त करता है) तो तू भी कलाओं का पूर्ण ज्ञान रखने वाली है। तुम दोनों रत्नाकर के प्रकाशक हो। (चन्द्रमा समुद्र से उत्पन्न है और पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र उल्लसित हो उठता है इस प्रकार वह रत्नाकर को प्रसिद्धि और गौरव प्रदान करता है। सीता जिन रत्नों को धारण करती हैं वे उसके सहज सौन्दर्य से मिलकर अत्यधिक शोभा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सीता भी रत्नाकर-समूह—को प्रकाशित करने वाली हैं) तुम दोनों अम्बर में विलसित होते हो। (चन्द्रमा आकाश में विलसित होता है और सीता सुन्दर वस्त्रों से सज्जित होकर विलसित होती है) तुम दोनों ही कुवलय के हितैषी हो। (चन्द्रमा कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाला है। सीताजी पृथ्वी मण्डल को सुख देने वाली हैं)। यदि चन्द्रमा की किरणें शीतल हैं तो सीजाजी भी अपने शील-स्वभाव से सभी को शीतलता (सुख-सन्तोष) प्रदान करती हैं। इस प्रकार चन्द्रमुखी सीता सभी प्रकार चन्द्रमा के समान हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

कलित कलंक केतु, केतु-अरि, सेत गात,
भोग-योग को अयोग, रोग ही को थल सौं।
पून्यौई को पूरन पै प्रतिदिन ऊनो ऊनो,
छन छन छीन होत छीलर को जल सौं॥
चंद्र सौं जो बरनत रामचन्द्र की दुहाई,
सोई मति मंद कवि केसव मुसल सौं।
सुंदर सुवास अरु कोमल अमल अति,
सीताजू को मुख सखि केवल कमल सौं॥३०॥

शब्दार्थ—कलित कलंक केतु=कलंककेतु से कलित, कलंकी। केतुअरि=केतु है अरि जिसका (यहाँ राहु और केतु को अभिन्न माना गया है)। छीलर=उथला जलाशय। ऊनो=हीन, तुच्छ, अपूर्ण। मुसल=मूर्ख।

व्याख्या—अन्य स्त्री पहिली स्त्री की उक्ति से असहमति प्रकट करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुई चन्द्रमा को सर्वथा हीन सिद्ध करती है। वह कहती है—चन्द्रमा कलंक के केतु से युक्त है अर्थात् कलंकी है। केतु उनका शत्रु है (शत्रु-रहित नहीं है) उसका शरीर श्वेत है। (वह कुष्ठ रोगी है) वह भोग भोगने योग्य नहीं है। यह रोग का घर है। चन्द्रमा को क्षय-ग्रस्त माना जाता है) केवल पूर्णिमा को ही पूर्ण रहता है। अन्य दिनों हीन और अपूर्ण रहता है। वह जलाशय के जल की भाँति क्रमशः क्षण-क्षण क्षीण होता रहता है। (ऐसी स्थिति में) जो कवि सीता के मुख को चन्द्रमा के सदृश वर्णन करते हैं (रामचन्द्र की दुहाई देकर कहती हूँ) वे मतिमन्द और मूर्ख हैं। री सखी! सुन्दर, सुगन्धियुक्त, कोमल और स्वच्छ होने कारण सीता जी का मुख केवल कमल-पुष्प के समान है।

अलंकार—उपमा।

एके कहैं अमल कमल मुख सीताजू कौ
एक कहैं चंद्र सम आनँद को कंद री।
होइ जौ कमल तो रयनि में न सकुचै री
चंद जौ तो बासर न होइ द्युति मंद री॥
बासर ही कमल रजनि ही में चंद्र मुख
बासर हू रजनि विराजै जगबंद री।
देखे मुख भावै अनदेखेई कमल चंद
तोतैं मुख मुखै, सखी, कमलौ न चंद री॥३१॥

शब्दार्थ—आनंद को कंद=आनन्द की वर्षा करनेवाला। बासर=दिन। जगबंद=जगत वन्द्य, संसार द्वारा पूजित।

व्याख्या—तीसरी सखी उपर्युक्त दोनों सखियों के कथनों को अनुचित बताती हुई अपनी बात प्रस्तुत करती है। वह कहती है—कोई कहता है कि सीताजी का मुख स्वच्छ कमल के समान है और कोई कहता है कि वह चन्द्रमा के समान आनंद की वर्षा करनेवाला है। (यह दोनों कथन निराधार हैं) कमल तो रात्रि में संकुचित हो जाता है किन्तु यह (सीताजी का मुख) तो रात्रि में विकसित और प्रफुल्ल रहता है। चन्द्रमा की द्युति दिन में मन्द पड़ जाती है किन्तु इसकी (मुख की) कान्ति तो दिन में भी दमकती रहती है। कमल केवल दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में सुन्दर लगता है और चन्द्रमा केवल रात्रि में रमणीय लगता है, किन्तु सीताजी का मुख रात-दिन समान रूप से शोभायुक्त रहकर संसार से पूजित होता है। कमल और चन्द्रमा तो बिन देखे ही (काव्य रूढ़ि के अनुसार) सुन्दर मान लिए गए हैं किन्तु मुख तो निर्निमेष नेत्रों से सतत रूप से देखे जाने पर भी अत्यधिक सुन्दर लगता है इसलिए मेरी समझ में तो यह (सीताजी का मुख) मुख, मुख ही है, न कमल है न चन्द्रमा।

अलंकार—अनन्वयोपमा।

[दो०] सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।
रामचंद्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो है साथ ॥३२॥

शब्दार्थ—रविवंशी = सूर्यवंशी। भलो बन्यो है साथ = खूब साथ हुआ है, विचित्र संयोग है।

व्याख्या—री सखी सीता के नेत्र चकोर हैं और रामचन्द्रजी सूर्यवंशी हैं। भला चकोर और सूर्य का क्या साथ? किन्तु यहाँ विलक्षण संयोग है। सीता के नेत्र-चकोर सूर्यवंशी राम पर आसक्त हैं। (इसी प्रकार रामचन्द्र जी चन्द्रमा हैं और सीता का मुख कमल है। भला चन्द्रमा को देखकर कहीं कमल प्रफुल्ल होता है? किन्तु यहाँ विचित्र स्थिति है, रामचन्द्र के चन्द्र-मुख को देखकर सीताजी का मुख-कमल प्रफुल्ल रहता है।

अलंकार—विरोधाभास।

[विजय छंद]

बहु बाग तड़ाग तरंगनि तीर
तमाल की छाँह विलोकि भली।
घटिका इक बैठत हैं सुख पाय
बिछाय तहाँ कुस कास थली ॥
मग कौ श्रम श्रीपति दूरि करैं
सिय के सुभ वाकल अंचल सौं।
श्रम तेऊ हरैं तिनकौ कहि केशव
चंचल चारु दृगंचल सौं ॥३३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—तरंगिनी = नदी। घटिका = एक घड़ी भर। श्रीपति = राम। बाकल अंचल = वल्कल वस्त्र के अंचल से। चारु = सुन्दर।

व्याख्या—मार्ग में राम-सीता और लक्ष्मण किसी उद्यान में, किसी सरोवर या नदी के तट पर तमाल वृक्ष की घनी-शीतल छाया देखकर घड़ीभर के लिए कुश का आसान बिछाकर विश्राम करते हैं। सीताजी को श्रमित देखकर रामचन्द्रजी वल्कल वस्त्र के अंचल की हवा से उनका श्रम परिहार करते हैं और वे भी (सीताजी भी) अपने रमणीय कटाक्षों से (मधुर वातावरण की सृष्टि करके) राम की थकान दूर कर देती हैं।

अलंकार—अन्योन्य।

[सो०] श्री रघुवर के इष्ट, अश्रु-वलित सीता-नयन।
साँची करी अदृष्ट, झूठी उपमा मीन की॥३४॥

शब्दार्थ—इष्ट = अभीष्ट, चाहे हुए, प्रिय। अश्रुवलित = आनन्द के अश्रुओं से युक्त। अदृष्ट = दैव।

व्याख्या—भगवान् राम को अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सीताजी के नेत्र सदैव आनन्द के अश्रुओं से युक्त रहते हैं। इस प्रकार वे सदैव जल-मग्न रहते हैं। दैव ने, नेत्रों के लिए जो मीन की झूठी उपमा दी जाती है, उसे इस रूप में सर्वथा सत्य सिद्ध कर दिया है।

[दो०] मारग यौं रघुनाथ जू, दुख सुख सबही देत।
चित्रकूट पर्वत गये, सोदर सिया समेत॥३५॥

शब्दार्थ—दुःख सुख सबही देत = दर्शन देकर सुख देते हुए और पुनः वियोग की स्थिति उत्पन्न करके दुःख देते हुए।

व्याख्या—इस प्रकार मार्ग में श्री रामचन्द्रजी लोगों को सुख-दुःख देते हुए सीता और लक्ष्मण के साथ चित्रकूट पर्वत पर गये।

भरत प्रत्यागमन

[दोधकछन्द]

आनि भरत्त पुरी अवलोकी।
थावर जंगम जीव ससोकी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाट नहीं विरदावलि साजैं।
कुंजर गाजैं न दुन्दुभि बाजैं ॥३६॥

शब्दार्थ—भरत्त = भरतजी। थावर = स्थावर, जड़, अचल। जंगम = चेतन।

व्याख्या—स्पष्ट है।

राजसभा न बिलोकिय कोऊ।
सोक गहे तब सोदर दोऊ॥
मंदिर मातु बिलोकि अकेली।
ज्यौं बिन वृक्ष विराजति बेली ॥३७॥

शब्दार्थ—सोदर दोऊ = भरत और शत्रुघ्न।

व्याख्या—सरल है।

[तोटक छंद]

तब दीरघ देखि प्रणाम कियौ।
उठि कै उन कंठ लगाइ लियौ॥
न पियौ जल संभ्रम भूलि रहे।
तब मातु सौं बैन भरत्थ कहे॥३८॥

शब्दार्थ—दीरघ देखि = (दीरघ = दीर्घ, लम्बी) भूमि पर लम्बी लेटी हुई।

व्याख्या—सुगम और स्पष्ट है।

भरत कैकेयी का प्रश्नोत्तर

[विजय छंद]

"मातु ! कहाँ नृप ?" "तात ! गये सुर-
लोकहि," "क्यों ?" "सुत-शोक लये।"
"सुत कौन ?" "सुराम" "कहाँ हैं अबै ?"
"बन लक्ष्मण सीय समेत गये।"
"बन काज कहा कहि।" "केवल मो सुख,"
"तोकों कहा सुख यामैं भये ?"
"तुमकों प्रभुता" "धिक तोकों !
कहा, अपराध बिना सिगरेई हये ?"॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—प्रभुता = राज्याधिकार। सिगरेई = सभी को। हये = हते, नष्ट कर दिये।

व्याख्या—स्पष्ट है।

अलंकार—प्रश्नोत्तर।

विशेष—यह छन्द हनुमान्नाटक के इसी प्रसंग में आये हुए एक छन्द का अनुवाद है—

"मातस्तातः क्व यातः सुरपति भवनं हा कुतः।
पुत्र शोकान्कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णा त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य॥
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किंतथासौ बभाषे!
मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिहि तव धराधीशता हा हतोऽस्मि॥"

[दो०["भर्त्ता-सुत-विद्वेषिनी, सबही कौं दुखदाइ।"
यह कहि देखे भरत तब, कौशल्या के पाइ॥४०॥

शब्दार्थ-भर्त्ता-सुत-विद्वेषिनी = पति और पुत्र से द्वेष करनेवाली। कौशल्या के पाइ = कौशल्या के चरणों को स्पर्श किया।

व्याख्या—स्पष्ट है।

भरत-कौशल्या-वार्ता

[तोटक छन्द]

तब पायन जाइ भरत्थ परे।
उन भेंटि उठाइ कै अंक भरे॥
सिर सूँघि विलोकि बलाइ लयी।
सुत तो विन या विपरीत भयी॥४१॥

शब्दार्थ—बलाइ लई = बलइया लिया, बलिहारी गई।

व्याख्या—भरतजी ने माता कौशल्या के चरण स्पर्श किये। माता ने उन्हें अंक में भर लिया। माथा सूँघकर बलइया लिया और कहा कि हे पुत्र! तुम्हारे न रहने से ही यह विपरीत घटना घटित हुई।

[तारक छन्द]

भरत—सुनु मातु भयी यह बात अनैसी।
जु करी सुत भर्तृ-विनाशिनी जैसी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बात भयी अब जानत जाके।
द्विज दोष परैं सिगरे सिर ताके ॥४२॥

शब्दार्थ—अनैसी = अनिष्टकर, बुरी। भर्तृ = भर्ता, पति। द्विज दोष = ब्रह्महत्या का पाप।

व्याख्या—भरतजी माता कौशल्या के सम्मुख अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करते हैं। वे कहते हैं—हे माता पुत्र और पति का एक साथ विनाश करनेवाली कैकेयी ने जो कुछ किया वह बड़ा ही अनिष्टकर हुआ। जिसकी जानकारी में यह दुरभि सन्धि हुई हो उसे ब्रह्महत्या के सारे पाप भोगने पड़े (अर्थात् यदि इस घटना में मेरा किंचित भी हाथ रहा हो तो मुझे ब्रह्महत्या का पाप लगे।)

जिनके रघुनाथ-विरोध बसै जू।
मठधारिन के तिन पाप ग्रसैं जू॥
रस राम रस्यौ मन नाहिन जाकौ।
रन मैं नित होइ पराजय ताकौ ॥४३॥

शब्दार्थ—रस राम = राम के प्रति प्रेम। रस्यौ = मग्न हुआ।

व्याख्या—हे माता! जिनके हृदय में राम के अहित (विरोध) की बातें बसती हों, (अर्थात् जो हृदय से राम का विरोध चाहता हो) उन्हें मठधारियों को जो पाप लगता है वह सब पाप भोगना पड़े। जिनके मन राम के प्रेम में मग्न नहीं होते उन्हें युद्धभूमि में नित्य पराजित होना पड़े।

नोट—ऐसा प्रतीत होता है कि केशवदास के समय में मठाधीश लोग अनेक प्रकार के दुराचार करने लगे थे और सामान्य जनता की दृष्टि में वे महान् पातकी समझे जाते थे।

कौशल्या—जनि सौंह करौ तुम पुत्र सयाने।
अति साधुचरित्र तुम्हैं हम जाने॥
सबकौं सब काल सदा सुखदाई।
जिय जानति हौं सुत ज्यों रघुराई ॥४४॥

शब्दार्थ—सौंह करौ = सौगन्ध खाओ। ज्यों रघुराई = राम की ही भाँति।

व्याख्या—स्पष्ट है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशरथ-दाह

[चचरी छंद]

'हाइ' 'हाइ' जहाँ तहाँ सब ह्वै रही सिगरी पुरी।
धाम धामनि सुंदरी प्रगटीं सबै जे हुतीं दुरी॥
लै गये नृपनाथ को शव लोग श्रीसरयू तटी।
राजपत्नि समेत पुत्रन विप्रलाप गढ़ी रटी॥४५॥

शब्दार्थ—जे हुतीं दुरी = जो कभी लोगों के सामने (गुरुजनों के सामने) नहीं आई थीं। विप्रलाप = प्रलाप; दुःखातिरेक के कारण असंयमित वचन। गढ़ी = समूह। रटी = कहा; बार-बार कहने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[सोमराजी छंद]

करी अग्नि अर्चा। मिटी प्रेत चर्चा॥
सबै राजधानी। भई दीन बानी॥४६॥

शब्दार्थ—अग्नि अर्चा = दाह क्रिया। मिटी प्रेत चर्चा = प्रेत कृत्य समाप्त हुआ।

व्याख्या—भरतजी ने महाराज दशरथ की दाह-क्रिया की। प्रेतात्मा के लिए शास्त्रविहित समस्त क्रियायें भी सम्पन्न की गयीं। (महाराज के गुणों का स्मरण करके) सभी अयोध्यावासी दीन वचन कहकर रो पड़े।

[कुमारललिता छंद]

क्रिया भरत कीनी। वियोग रस भीनी।
सजी गति नवीनी। मुकुंद पद लीनी॥४७॥

शब्दार्थ—सजी गति नवीन = नवीन गति प्राप्त की। मुकुन्द पद = विष्णु।

व्याख्या—भरत जी ने प्रेतात्मा की मुक्ति के लिए सभी संस्कार विधिवत् किये। (यद्यपि) यह सारी क्रिया सम्पन्न करते हुए वे वियोग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख से दुःखी हो रहे थे। इस क्रिया के फलस्वरूप महाराज दशरथ को नवीन गति प्राप्त हुई और वे विष्णु पद में लीन हो गये।

भरत का चित्रकूट-गमन

[तोटक छंद]

पहिरे वकला सु जटा धरिकै।
निज पाँयनि पंथ चले अरिकै॥
तरि गंग गये गुह संग लिये।
चितकूट विलोकत छाँड़ि दिये॥४८॥

शब्दार्थ—बकला=वल्कल वस्त्र। अरिकै=हठ पूर्वक।

व्याख्या—भरतजी ने वनवासी तपस्वियों जैसा वेश धारण किया। (अर्थात्) वल्कल वस्त्र पहिना और जटायें धारण की। वन-मार्ग पर वे हठ पूर्वक पैदल चलते रहे। निषादराज गुह को साथ लेकर गंगा पार किया। चित्रकूट पर्वत को देखने पर उनकी राम-मिलन की आतुरता बढ़ गई और वे उस स्थान को भी शीघ्र पीछे छोड़कर आगे बढ़े।

[मदनमोदक छंद]

सब सारस हंस भये खग खेचर, वारिद ज्यौं बहुवारन गाजे।
बन के नर वानर किन्नर बालक लै मृग ज्यौं मृगनायक भाजे॥
तजि सिद्ध समाधिन केसव दीरघ, दौरि दरीन में आसन साजे।
भूतल भूधर हाले अचानक आइ भरत्थ के दुंदुभि बाजे॥४९॥

शब्दार्थ—खेचर=आकाश चारी। बारन=हाथी। मृगनायक=सिंह। दरीन=कन्दरायें। भूधर=पर्वत।

व्याख्या—जब भरत ने सदल बल चित्रकूट के निकटवर्ती जंगल में डेरा डाल दिया तब सेना के हाथी मेघों की भाँति गरजना करने लगे। सेना में दुन्दुभियाँ बजने लगीं। परिणामस्वरूप चारों ओर आतंक छा गया। सारस, हंस आदि पक्षी घबड़ाकर आकाश में उड़ चले। वन में रहनेवाले नर, बानर, किन्नर आदि अपने-अपने बच्चों को लेकर उसी प्रकार भाग खड़े हुए जिस प्रकार सिंह मृग को लेकर भाग जाता है। सिद्धों और तपस्वियों का ध्यान भंग हो गया। उन्होंने भी आतंकित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर दीर्घ कन्दराओं में छिपकर आसन लगा लिया। यहीं नहीं समस्त पृथ्वी तल और पर्वत भी काँप गये।

[दो०] रामचंद्र लछमन सहित, सोभित सीता संग।
केसवदास सहास उठि, चढ़े धरनिधर-शृंग ॥५०॥

शब्दार्थ—सहास = हँसते हुए। धरनिधर शृङ्ग = पर्वत शिखर।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[मोहन छंद]

लक्ष्मण—देखहु भरत चमू सजि आये।
जानि अबल हमको उठि धाये॥
हींसत हय, बहु बारन गाजैं।
जहँ तहँ दीरघ दुंदुभि बाजैं॥५१॥

शब्दार्थ—चमू = सेना। हींसत = हिनहिनाते हैं। हय = घोड़ा। बारन = हाथी।

व्याख्या—सरल है।

[तारक छंद]

गजराजनि ऊपर पाखर सोहैं।
अति सुंदर सीस सिरोमनि मोहैं॥
मानि घूँघुर घंटन के रव बाजैं।
तड़िता-युत मानहुँ वारिद गाजैं॥५२॥

शब्दार्थ—पाखर = झूलें। मनि घूँघुर = मणि जटित घुँघरू। रव = ध्वनि। तड़िता = बिजली।

व्याख्या—बड़े-बड़े हाथियों के ऊपर झूलें शोभा दे रही हैं। उनके मस्तक शिरोमणियों से सज्जित हैं, जो सुन्दर लग रहे हैं। मणि जटित घुँघरू-युक्त घंटों की ध्वनि हो रही है (ये घण्टे हाथियों को पहनाये गये हैं) ऐसा प्रतीत होता है कि बिजली से युक्त बादल गर्जना कर रहे हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[विजय छंद]

युद्ध को आजु भरत्थ चढ़े, धुनि दुंदुभि की दसहूँ दिसि धाई।
प्रात चली चतुरंग चमू, बरनी सो न केसव कैसेहुँ जाई॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों सबके तनत्राननि मैं झलकी अरुनोदय की अरुनाई।
अंतर ते जनु रंजन को रजपूतन की रज ऊपर आई ॥५३॥

शब्दार्थ—तनत्राननि = शरीर की रक्षा के लिए धारण किये गये कवच। अरुनोदय = सूर्योदय। अंतर = हृदयस्थल। रज = रजोगुणी वृत्ति।

व्याख्या—भरतजी के साथ आई हुई विशाल सेना को देखकर लक्ष्मण जी अनुमान कर रहे हैं—ऐसा प्रतीत होता है कि भरत ने युद्ध की इच्छा से सदलबल चढ़ाई करदी है। इसी करण चारों ओरनगाड़ों की ध्वनि हो रही है। प्रातःकाल भरतजी के साथ आई चतुरंगिणी सेना उमड़ती हुई चली आ रही है (कवि कहता है कि) उनका वर्णन नहीं किया जाता। सभी वीरों के कवचों पर प्रातःकालीन सूर्य की अरुण रश्मियाँ बिम्बित हो रही हैं; ऐसा लगता है मानो राजपूतों के हृदय-स्थल से उनकी रजोगुणी वृत्ति (क्षत्रियत्व) उन्हें रंजित करने के लिए बाहर आ गई है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

नोट —काव्य-परम्परा में क्षत्रियधर्म का रंग लाल माना गया है। केशव ने 'कविप्रिया' के पाँचवें प्रभाव में 'अरुण वर्णन' शीर्षक के अन्तर्गत 'छत्रीधर्म' की भी गणना की है—

राती चन्दन रौद्ररस छत्रीधर्म मँजीठ।
अरुण, महाउर, रुधिर, नख, गेरु, सैंध्या ईठ ॥

[तोटक छन्द]

उठिकै धरि धारि अकास चली।
बहु चंचल वाजि खुरीन दली ॥
भुव हालति जानि अकालहिं ये।
जनु थंभन ठौरनि ठौर किये ॥५४॥

शब्दार्थ—धरि = धरा, पृथ्वी। अकालहिं = असमय में, प्रलय-काल के पहले ही। थंभन = स्तम्भ।

व्याख्या—चंचल घोड़ों की खुरों से रौंदी हुई धूलि पृथ्वी से उठ-कर आकाश की ओर बढ़ रही है। ऐसा लगता है मानो पृथ्वी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असमय में ही हिलता हुआ जानकर उसे स्थिर रखने के लिए ब्रह्मा ने ये स्तम्भ गाड़ दिये हैं। (पृथ्वी से उमड़ते हुए धूलि के धौरहरों को खम्भों के रूप में कल्पित किया गया है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[तारक छन्द]

रन राजकुमार अरूझहिंगे जू।
अतिसम्मुख घायनि जूझहिंगे जू॥
जन ठौरनि ठौरनि भूमि नवीनें।
तिनके चढ़िबे कहँ मारग कीने॥५५॥

शब्दार्थ—अरुझहिंगे=युद्ध-रत होंगे।

व्याख्या—उन्हीं धूल के धौरहरों के लिए कवि दूसरी उत्प्रेक्षा करता है। वह कहता है कि ये धूलि के धौरहर क्या हैं? मानो पृथ्वी ने यह सोचकर कि राजकुमार सम्मुख युद्ध में एक-दूसरे से भिड़कर प्राणत्याग करेंगे, उनके स्वर्गारोहण के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[तोटक छन्द]

सीता—रहि पूरि विमाननि व्योमथली।
तिनको जनु टारन धूरि चली।
परिपूरि अकासहिं धूरि रही।
सु गयो मिटि सूर प्रकास सही॥५६॥

शब्दार्थ—पूरि=परिपूर्ण। व्योमथली=नभस्थली। सूर=सूर्य।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] अपने कुल को कलह क्यौं, देखिहिं रवि भगवंत।
यहै जानि अंतर कियौ, मानो मही अनंत॥५७॥

शब्दार्थ—अंतर=पर्दा, आवरण। अनन्त=आकाश।

व्याख्या—यह सोचकर कि भगवान सूर्य भला अपने ही वंशजों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृह-युद्ध कैसे देख सकेंगे ? पृथ्वी ने आकाश को ही धूलि के आवरण से ढँक दिया है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[तोटक छन्द]

बहू तामहँ दीह पताक लसैं।
जनु धूम मैं अग्नि की ज्वाल बसैं॥
रसना किधौं काल कराल घनी।
किधौं मीचु नाचै चहुँ ओर बनी॥५८॥

शब्दार्थ—दीह=दीर्घ। मीचु=मृत्यु।

व्याख्या—उन्हीं धूलि के स्तम्भों में लम्बी-लम्बी पताकायें शोभित हैं मानो धूम्रराशि में अग्नि की लपटें प्रज्ज्वलित हैं। या ऐसा समझिये कि कराल काल की जिह्वा लप-लपा रही है। या चारों ओर मृत्यु ही नृत्य कर रही है।

अलंकार—सन्देह, उत्प्रेक्षा।

[दो०] देखि भरत की चल ध्वजा, धूरिन में सुख देत।
युद्ध जुरन कौ ननहुँ प्रति-योधन बोले लेत॥५९॥

शब्दार्थ—चल=चंचल। प्रति-योधन=प्रतिपक्ष के योद्धाओं को।

व्याख्या—धूलि के गुब्बार में भरतजी के सैन्य-दल की चंचल ध्वजायें ऐसी शोभित हैं, मानो प्रतिपक्ष के (शत्रुपक्ष) योद्धाओं को युद्ध में जुट पड़ने के लिए बुलाये लेती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

लक्ष्मण का कोप

[दंडक छंद]

लक्ष्मण—मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु,
मेटि पारौं दीरघ बचन निज गुर कौ।
सीतानाथ सीता साथ बैठे देखि छत्रतर,
यहि सुख शोषौं शोक सबही के उर कौ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केसौदास, सविलास बीस बिसे बास होइ,
कैकेयी के अंग अंग शोक पुत्रजुर कौ
रघुराज जू को साज सकल छिड़ाइ लेउँ
भरतहिं आजु राज देउँ प्रेत-पुर कौ ॥६०॥

शब्दार्थ—खेत = क्षेत्र, युद्ध-भूमि। मेटि पारौं = मिटा सकता हूँ, भंग कर सकता हूँ। सविलास = विलासपूर्वक, सुखपूर्वक, भली प्रकार। बीस बिसे = निश्चय ही। पुत्र-जुर = पुत्र नाश। साज = राजकीय ऐश्वर्य और वैभव। प्रेतपुर = यमपुर।

व्याख्या—लक्ष्मण स्वभावतः उग्र हैं। भरत को ससैन्य देखकर उन्हें रोष आ जाता है। वे उबल पड़ते हैं—आज इसी युद्ध-भूमि में मैं भरत को शत्रुघ्न के साथ मार डालूंगा। अपने गुरु के अपूर्व उपदेशों को आज भंग कर दूंगा। भगवान राम को सीताजी के साथ राज-छत्र के नीचे शोभित देखकर जो सुख प्राप्त होगा उसमें सभी लोगों के हृदय का शोक सूख जायगा। (भरत और शत्रुघ्न की मृत्यु से जो शोक लोगों को होगा वह राम और सीता को राज-छत्र धारण किये हुए लखकर समाप्त हो जायगा) मैं चाहता हूँ कि कैकेयी के अंग-अंग में देनश्चय ही पुत्र शोक भली-भाँति व्याप्त हो जाय। आज मैं श्रीरामचन्द्रजी का सारा राजकीय वैभव लड़कर छुड़ा लूंगा और भरत को प्रेतपुरी का राज्य प्रदान करूंगा।

अलंकार—स्वभावोक्ति।

[दो०] एक राज मैं प्रकट जहँ द्वै प्रभु केसवदास।
तहाँ वसत है रैनदिन, मूरतिवंत विनास ॥६१॥

शब्दार्थ—द्वै प्रभु = दो स्वामी।

व्याख्या—जहाँ कहीं एक ही राज्य क्षेत्र में दो स्वामी निवास करते हैं वहाँ रात-दिन विनाश मूर्तिमान होकर निवास करता है।

विशेष—यह पंक्तियाँ केशवदासजी की राजनीतिज्ञता की परिचायक हैं।

राम भरत-मिलन

[कुसुमविचित्रा छंद]

तब सबै सेना वहि थल राखी।
मुनि जन लीन्हे सँग अभिलाखी ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रघुपति के चरनन सिर नाये।
उन हँसि कै गहि कंठ लगाये ॥६२॥

शब्दार्थ—अभिलाषी = अभिलषित, इच्छित।
व्याख्या—स्पष्ट है।

[दोधक छन्द]

मातु सबै मिलिवे कहँ आईं।
ज्यौं सुत कौं सुरभी सु लवाईं॥
लक्ष्मण स्यों उठिकै रघुराई।
पाँयन जाय परे दोउ भाई॥६३॥

शब्दार्थ—सुरभी = गाय। लवाई = हाल की ब्याई गाय। (तुलसी ने भी लिखा है—निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।) स्यों = सहित।
व्याख्या—स्पष्ट है।

मातनि कंठ उठाय लगाये।
प्रान मनो मृत देहनि पाये॥
आइ मिली तब सीय सभागी।
देवर सासुन के पग लागी॥६४॥

शब्दार्थ—मातनि = माताओं ने। मृत देहनि = मरे हुए शरीर में। सभागी = सौभाग्यवती। देवर = भरत।
व्याख्या—सरल है।

[तोमर छंद]

तब पूछियो रघुराइ। सूख है पिता तन माइ॥
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तें उठीं सब रोइ॥६५॥

शब्दार्थ—सुख है पिता तन माइ = हे माता! पिताजी शरीर से सुखी तो हैं। जोइ = देखकर।

नोट—इस छंद में केशव ने करुण-भावना का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। रामचन्द्र को पिता की मृत्यु की सूचना नहीं थी। उन्होंने सरल भाव से उनकी कुशल पूछी। मातायें भला क्या उत्तर देतीं। वे यकायक रो पड़ीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दोधक छंद]

आँसुन सौं सब पर्वत धोये। जंगम को? जड़ जीवहु रोये॥
सिद्ध बधू सिगरीं सुन आईं। राजबधू सबई समुझाईं॥६६॥

शब्दार्थ—जंगम को ?=चेतन व्यक्तियों का क्या कहना? सिद्धबधू=सिद्धों की स्त्रियां। राजबधू=राजबधुओं को, दशरथ की रानियों को।

व्याख्या—सरल है।

[मोहन छंद]

धरि चित्त धीर। गये गंग तीर।
शुचि ह्वै सरीर। पितु तर्पि नीर॥६७॥

शब्दार्थ—गंग=मन्दाकिनी गंगा। पितु तर्पि नीर=जल से पिता का तर्पण करके।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[तारक छंद]

भरत—घर को चलिए अब श्रीरघुराई।
जन हौं, तुम राज सदा सुखदाई॥
यह बात कहीं जल सौं गल भीन्यौ।
उठि सोदर पाइँ परे तब तीन्यौ॥६८॥

शब्दार्थ—जन हौं=मैं सेवक हूँ। जल सौं गल भीन्यो=करुणा के आवेग से कण्ठावरोध हो आया। सोदर=सहोदर।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[दोधक छंद[

श्रीराम—राज दियो हमको वन रूरो।
राज दियो तुमको अब पूरो॥
सो समहूँ तुमहूँ मिलि कीजै॥
बाप कौ बोलु न नेकहु छीजै॥६९॥

शब्दार्थ—रूरो=शोभायुक्त। बोलु=वचन, आज्ञा।

व्याख्या—रामचन्द्रजी भरत के निवेदन का उत्तर दे रहे हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिता ने हमको वन का राज्य दिया है और तुमको अयोध्या का धन-जन-पूर्ण राज्य प्रदान किया है। हमारे और तुम्हारे, दोनों के लिए उचित यह है कि ऐसा आचरण करें कि पिता के बचन रंचमात्र भी भंग न हों।

[दो०] राजा कौ अरु बाप कौ, बचन न मेटै कोइ।
जी न मानिए भरत तौ, मारे को फल होइ ॥७०॥

शब्दार्थ—भल = परिणाम, यहाँ पाप से तात्पर्य है।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[स्वागता छंद]

भरत—मद्यपानरत स्त्रीजित होई।
सन्निपातयुत बातुल जोई॥
देखि देखि तिनको सब भागै।
तासु बात हति ताप न लागै ॥७१॥

शब्दार्थ—स्त्रीजित = स्त्री द्वारा जीता हुआ, स्त्री के वशीभूत। बातुल = बकवादी। हति = भंग करने में।

व्याख्या—भरतजी श्रीरामचन्द्र के कथन का नीति और तर्क के साथ प्रतिवाद करते हैं। वे कहते हैं—जो व्यक्ति मद्यपान किये हुए हो; स्त्री के वशीभूत हो; सन्निपात जैसे भयंकर रोग से ग्रस्त हो तथा व्यर्थ बकवाद करनेवाला हो; उसे देखकर लोग दूर हट जाते हैं और उसकी बात भंग करने में पाप नहीं होता। (तात्पर्य यह कि महाराज दशरथ ने स्त्री के वश में होकर आपको वन-वास की आज्ञा दी थी। ऐसी आज्ञा का उल्लंघन नीति-सम्मत है।)

ईश ईश जगदीश बखान्यो।
वेदवाक्य बल तेहि पहिचान्यो॥
ताहि मेटि हठिकै रहिहौं जौ।
गंग तीर तन को तजिहौं तौ ॥७२॥

शब्दार्थ—ईश = महादेव, ईश = विष्णु। जगदीश = यहाँ ब्रह्मा के अर्थ में प्रयुक्त है। वेद-वाक्य बल = वेदों के ज्ञान के बल पर। गंग = मंदाकिनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—भरतजी अपने नीतियुक्त कथन का समर्थन करते हैं और उसके प्रति अपनी दृढ़ता प्रकट करते हुए कहते हैं—जो नीति युक्त बात मैंने कही है वह महादेव, विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा समर्थित है। मैंने वेद-ज्ञान के आधार पर उन्हें समझा है। यदि आप उसे (मेरे कथन को) हठपूर्वक-भंग कर देंगे (मेरी बात न मानेंगे) तो मैं इसी मंदाकिनी के तट पर अपना शरीर त्याग दूँगा।

[दो०] मौन गही यह बात कहि, छोड़्यौ सबै विकल्प।
भरत जाइ भागीरथ तीर कर्‌यौ संकल्प ॥७३॥

शब्दार्थ—विकल्प = ऊहा-पोह, अन्य विचार।

व्याख्या—अपनी बात दृढ़तापूर्वक कहकर भरतजी ने मौन धारण कर लिया। उन्होंने तर्क-वितर्क करना छोड़ दिया। वे भागीरथी (मंदाकिनी गंगा) के तट पर गए और शरीर त्यागने का संकल्प कर लिया।

मंदाकिनी कृत भरतोद्‌बोधन

[इंद्रवज्रा छंद]

भागीरथी रूहै अनूप कारी
चन्द्राननी लोचन-कंज-धारी ॥
वाणी बखानी मुख तत्त्व सोध्यो।
रामानुजै आनि प्रबोध बोध्यो ॥७४॥

शब्दार्थ—चंद्राननी लोचन-कंज-धारी = चंद्रमुखी और कमलनयनी स्त्री का रूप धारण करके। तत्त्व सोध्यौ = सार युक्त।

व्याख्या—मंदाकिनी गंगा (जो अनुपम रूप धारण करने में समर्थ हैं) चंद्रमुखी और कमलनयनी स्त्री का रूप धारण करके प्रकट हुई। उन्होंने सारयुक्त वाणी से रामानुज (भरत) को समझाकर सन्तुष्ट कर दिया।

[उपेंद्रवज्रा छंद]

अनेक ब्रह्मादि न अंत पायौ।
अनेकधा वेदन गीत गायौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिन्हैं न रामानुज बंधु जानौ।
सुनौ सुधी केवल-ब्रह्म मानौ ॥७५॥

शब्दार्थ—अनेकधा = अनेक प्रकार से। सुधी = पंडित, बुद्धिमान।

व्याख्या—मंदाकिनी गंगा ने भरतजी को समझाते हुए कहा—हे भरत! राम को तुम अपने सामान्य भ्राता के रूप में न देखो। (वे वस्तुतः वर्णनातीत हैं) ब्रह्मा आदि अनेक देवता उनके रहस्यात्मक स्वरूप को नहीं समझ पाते। वेदों ने अनेक रूपों में उनका यशोगान किया है। हे बुद्धिमान भरत! ऐसा महिमामय व्यक्ति केवल 'ब्रह्म' माना जा सकता है।

निजेच्छया भूतल देहधारी।
अधर्म-संहारक धर्मचारी ॥
चले दशग्रीवहि मारिबे कों।
तपी व्रती केवल पारिबे कों ॥७६॥

शब्दार्थ—निजेच्छया = अपनी इच्छा से। (तुलसी ने भी कहा है—निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गो पार) पारिबे को = पालने के लिए।

व्याख्या—हे भरत! उन्होंने अपनी इच्छा से भूतल पर मानव रूप मे अवतार लिया है। वे अधर्म नाशक और धर्म का पालन करने-वाले हैं। (उन्होंने साभिप्राय वन-गमन किया है) वे रावण का संहार करने के लिए निकले हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य तपस्वियों और व्रत-धारियों का पालन करना है।

उठो हठी होहु न काज कीजै।
कहैं कछू राम, सो मानि लीजै ॥
अदोष तेरी सुत मातु सोहैं।
सो कौन माया इनको न मोहै ॥७७॥

शब्दार्थ—हठी होहु न = हठ न करो। सो कौन माया इनको न मोहै = ऐसा कौन है जिसे इनकी माया प्रभावित नहीं करती (अर्थात् आपकी माता ने जो कुछ किया है इन्हीं की माया के प्रभाव से किया है। अतः वह निर्दोष है)।

व्याख्या—स्पष्ट है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] यह कहि कै भागीरथी, केसव भई अदृष्ट।
भरत कह्यौ तव राम सौं, देहु पादुका इष्ट ॥७८॥

शब्दार्थ—अदृष्ट=अन्तर्धान, तिरोहित। इष्ट = अभीष्ट, इच्छित।

व्याख्या—सरल है।

भरत का लौटना

[उपेंद्रवज्रा छंद]

चले बली पावन पादुका लै।
प्रदक्षिणा राम सियाहु को दै॥
गये ते नंदीपुर बास कीनौ।
सबंधु श्रीरामहि चित्त दीनौ ॥७९॥

शब्दार्थ—बली = भरत। सियाहु = सीता की भी। सबंधु = भाई (शत्रुघ्न) के साथ।

व्याख्या—स्पष्ट है।

नोट—यहाँ भरत के लिए बली शब्द का प्रयोग किया गया है। लाला भगवानदीन के अनुसार भरतजी के बली होने के दो कारण हैं। एक तो उनकी माता की निर्दोषिता प्रमाणित हो गई। इससे उनको नैतिक बल मिला। दूसरे उन्हें राम की पादुका मिल गई। इस रूप में उन्हें राम के अनुग्रह का बल मिला।

[दो०] केसव भरतहि आदि दै, सकल नगर के लोग।
वन समान घर-घर वसे, सकल विगत संभोग ॥८०॥

शब्दार्थ—वन-समान=घर में रहते हुए भी बनवासियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगे।

व्याख्या—भरत आदि के साथ सभी अयोध्यावासी घर लौटकर भी वन-वासियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने वीतरागियों (विगत संभोग) की जीवन-चर्या स्वीकार की।

(इत अयोध्या-कांड)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरण्य-कांड

राम-अत्रि-मिलन

[भरतोद्धता छंद]

चित्रकूट तब रामजू तज्यो।
जाइ यज्ञथल अत्रि को भज्यो।
राम लक्ष्मण समेत देखियो।
आपनो सफल जन्म लेखियो ॥१॥

शब्दार्थ—भज्यो = पहुँचे। लेखियो = समझा।

व्याख्या—श्री रामचंद्रजी ने चित्रकूट को त्याग दिया और उसके बाद अत्रि ऋषि के यज्ञस्थली में प्रवेश किया। ऋषि अत्रि ने राम और लक्ष्मण को देखकर अपना जन्म सफल समझा।

अलंकार—हेतु।

[चंद्रवर्त्म छंद]

स्नान दान तप जाप जो करियो।
सोधि सोधि पन जो उर धरियो।
योग योग हम जालगि गहियो।
रामचंद्र सब को फल लहियो ॥२॥

व्याख्या—महर्षि अत्रि अपने सौभाग्य की चर्चा करते हुए कहते हैं—मैंने स्नान, दान, तप, जाप आदि जितने भी धार्मिक कृत्य किये थे और अपने हृदय में शुद्धता पूर्वक जिस संकल्प को धारण किया था (राम के दर्शन अवश्य करूँगा इस प्रकार का शुद्ध संकल्प) तथा जिस चिर इच्छित फल की प्राप्ति के लिए योग और यज्ञ का अनुष्ठान किया था, (आज) भगवान राम के दर्शन के रूप में उन समस्त पुण्य-कर्मों का फल पा लिया।

[वंशस्थ छंद]

अनेकधा पूजन अत्रिजू कर्‌यो।
कृपालु ह्वै श्रीरघुनाथजू धर्‌यो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पतिव्रता देवि महर्षि की जहाँ।
सुबुद्धि सीता सुखदा गई तहाँ ॥३॥

शब्दार्थ—अनेकधा = अनेक प्रकार से। धरयो = स्वीकार किया।

व्याख्या—अत्रिजी ने भगवान राम की अनेक प्रकार से पूजा की। भगवान राम ने कृपा पूर्वक उनकी पूजा ग्रहण की। (इसके बाद) बुद्धिमती और सुख देनेवाली सीता ने महर्षि अत्रि की पतिव्रता स्त्री देवी अनसूया के समीप गमन किया।

सीता-अनसूया-मिलन

[दो०] पतिव्रतन की देवता, अनसूया सुभ गात।
सीताजू अवलोकियो, जरा-सखी के साथ ॥४॥

शब्दार्थ—सुभ गात = पवित्र शरीरवाली। (सुभग पाठ होने पर 'पवित्र गात्रावाली' अर्थ होगा। जरा-सखी के साथ = वृद्धावस्था रूपी सखी, वृद्धावस्था में।

व्याख्या—पतिव्रता स्त्रियों में देवी स्वरूपा पवित्र शरीरवाली अनुसूया को सीताजी ने वृद्धावस्था रूपी सखी के साथ देखा। तात्पर्य यह कि अनुसूयाजी पर्याप्त वृद्धा थीं।)

[चतुष्पदी छंद]

शिर श्वेत विराजै कीरति राजै जनु केशव तप-बल की।
तनु वलित पलित जनु सकल वासना निकरि गई थल थल की।
कापति शुभ ग्रीवा सब अँग सींवा देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति, 'या जग में कछु नाहीं' ॥५॥

शब्दार्थ—वलित = बल खाया हुआ, झुर्रीदार। पलित = पका हुआ, वृद्धावस्था का सूचक। सींवा = सीमा।

व्याख्या—सती अनुसूया की शारीरिक स्थिति का वर्णन है। बाल के पक जाने से शिर श्वेत हो गया है, मानो आजीवन की तपस्या की कीर्ति सिर पर शोभित है। (कीर्ति का रंग श्वेत माना गया है।) शरीर में झुर्रियां पड़ गई हैं, वृद्धावस्था के कारण वह जर्जर हो गया है; जगह-जगह झुर्रियों की सिकुड़न को देखकर ऐसा लगता है मानो स्थल-स्थल से विषय-वासनायें निकल गई हैं और उनका स्थान रिक्त हो गया है। उनकी गर्दन कांप रही है, (यही गर्दन किसी समय सभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंगों के सौन्दर्य को सीमा थी) उनकी कँपकँपी देखकर चित्त भ्रम में पड़ जाता है। उसके (ग्रीवा के) कम्प को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे स्वयं अपने मन को समझा रही हैं कि इस संसार में कुछ भी सार नहीं है। जिस प्रकार नकारात्मक उत्तर देने के लिए शिर को बायें से दायें हिलाते हैं, वृद्धावस्था में उसी ढंग से वह बराबर हिला करता है। इसी आधार पर यह उत्प्रेक्षा की गई है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[प्रमिताक्षरा छंद]

हरवाइ जाय सिय पाइँ परी।
ऋषि-नारि सूँघि सिर गोद धरी॥
बहू अंगराग अँग अंग रये।
बहू भाँति ताहि उपदेश दये॥६॥

शब्दार्थ—हरवाइ = शीघ्रतापूर्वक। अंगराग = भिन्न-भिन्न अंगों में लगाये जानेवाले लेप। (महावर, सिन्दूर, अर्गजा, केशर, कस्तूरी आदि) अंग में रमे = अंगों में लगाया।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[खग्विनी छंद]

राम आगे चले, मध्य सीता चली।
बंधु पाछे भये, सोभ सोभै भली॥
देखि देही सबै कोटिधा कै भनौ।
जीव-जीवेस के बीच माया मनौ॥७॥

शब्दार्थ—शोभ सोभै भली = शोभा भली-भाँति शोभित हो रही थी। देही = देहधारी। कोटिधा = करोड़ों प्रकार से। भनौ = कहा, वर्णन किया। जीवेस = ब्रह्म।

व्याख्या—अत्रि के आश्रम से आगे बढ़ने पर मार्ग में राम आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे सीता थीं और सबसे पीछे लक्ष्मण जी थे। इस प्रकार गमन करते हुए उन लोगों की शोभा बड़ी ही रमणीय थी। सभी लोग अनेक प्रकार से उनका वर्णन करने लगे। ऐसा लग रहा था मानो, जीव और ब्रह्म के बीच साक्षात् माया शोभित हो रही है। [तुलसी ने भी इसी अवसर पर कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[आगें राम अनुज पुनि पाछें। मुनि वर वेष बने अति काछें।
उभय बीच श्री सोहई कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥]

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

विराध-वध

[मालती छंद]

विपिन विराध बलिष्ठ देखियो।
नृप-तनया भयभीत लेखियो॥
तब रघुनाथ बाण कै हयो।
निज निर्वाण-पंथ को ठयो॥८॥

शब्दार्थ—हयो = हत्यो, मारा। निर्वाण-पंथ = मुक्ति-मार्ग।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] रघुनायक सायक धरे, सकल लोक सिरमौर।
गये कृपा करि भक्तिवश, ऋषि अगस्त्य के ठौर॥९॥

शब्दार्थ—सिर मौर = श्रेष्ठ, पूज्य। ठौर = स्थान, आश्रम।

व्याख्या—स्पष्ट है।

अगस्त्य-मिलन

[वसंततिलका छंद]

श्रीराम लक्ष्मण अगस्त्य सनारि देख्यो।
स्वाहा समेत सुभ पावक रूप लेख्यो॥
साष्टांग छिप्र अभिवंदन जाइ कीन्हो।
सानंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो॥१०॥

शब्दार्थ—सनारि = स्त्री सहित, लोपामुद्रा के साथ। स्वाहा = अग्नि की स्त्री।

व्याख्या—श्रीराम और लक्ष्मण ने अगस्तजी को आश्रम में सपत्नीक देखा। (दर्शन किया)। उन्हें ऐसा लगा मानो साक्षात् अग्निदेव अपनी प्रिया 'स्वाहा' के साथ शोभित हैं। राम और लक्ष्मण ने शीघ्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही जाकर ऋषि श्रेष्ठ अगस्त को साष्टांग दंडवत् किया। अगस्तजी ने (दोनों को) आनन्द पूर्वक आशीर्वाद दिया।

बैठारि आसन सबै अभिलाष पूजे।
सीता समेत रघुनाथ सबंधु पूजे॥
जाके निमित्त हम यज्ञ यज्यो सो पायो।
ब्रह्मांडमंडन स्वरूप जो वेद गायो॥११॥

शब्दार्थ—यज्ञ यज्यो = यज्ञों का अनुष्ठान किया। ब्रह्मांड मंडन = समस्त ब्रह्मांड को शोभित करनेवाला।

व्याख्या—सीता सहित राम और लक्ष्मण को आसन पर बैठाकर ऋषि अगस्त ने उनकी विधिवत् पूजा की और अपनी सभी अभिलाषायें (दर्शन, स्वागत और पूजा की) पूर्ण कीं। उन्होंने सोचा—जिसे वेदों ने समस्त ब्रह्माण्ड को शोभायुक्त करनेवाला कहा है और जिसके लिए मैं इतने दिनों तक यज्ञादि का अनुष्ठान करता रहा, आज उसे ही प्राप्त कर लिया।

[पद्धटिका छंद]

ब्रह्मादि देव जब विनय कीन।
तट छीरसिंधु के परम दीन॥
तुम कह्यो देव अवतरहु जाइ।
सुत हौं दशरथ को होतु आइ॥१२॥

शब्दार्थ—तट छीर सिंधु के = क्षीर सागर के तट पर। परम दीन = परम दीन होकर।

व्याख्या—सरल है।

हम तब तें मन आनंद मानि।
मन चितवत तब आगमन जानि॥
ह्याँ रहिजै करिजै देव-काजु।
मम फूलि फल्यो तप-वृक्ष आजु॥१३॥

शब्दार्थ—ह्याँ = यहाँ। रहिजै = रहिये। तप-वृक्ष = तपस्या रूपी वृक्ष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—मैं तभी से आनन्दित होकर आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। आपके वन आने का समाचार सुनने पर मेरी उत्सुकता बढ़ गई थी और मैं निरन्तर मार्ग देखता रहता था। आप यहाँ रहें। देव-कार्य सम्पन्न करें। आज आपको पाकर मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी तपस्या रूपी वृक्ष पुष्पित होकर फलयुक्त हो गया है। (मेरी युग-युग की तपस्या का फल आपका दर्शन ही है)।

अलंकार—'रूपक' अंतिम पंक्ति में।

[पृथ्वी छन्द]

श्रीराम—अगस्त्य ऋषिराज जू वचन एक मेरो सुनौ।
प्रशस्त सब भाँति भूतल सुदेश जी मैं गुनौ॥
सनीर तरु खंड मंडित समृद्ध शोभा धरैं।
तहाँ हम निवास की वमल पर्णशाला करैं॥१४॥

शब्दार्थ—प्रशस्त = प्रशंसनीय, श्रेष्ठ। सुदेश = सुन्दर। सनीर = जलयुक्त। तरु खंड मंडित = वृक्ष समूह से शोभित। समृद्ध शोभा धरैं = समृद्धि और शोभा से युक्त।

व्याख्या—भगवान राम, ऋषि अगस्त से अपने निवास के लिए उचित स्थान पूछते हैं। वे कहते हैं—हे ऋषिराज अगस्तजी! मेरी एक प्रार्थना सुनिए। आप हृदय में खूब विचार कर हमें एक ऐसा भूमि-खंड बताइए जो सब प्रकार से उत्तम और सुन्दर हो, जहाँ जल की सुविधा हो और जो वृक्ष-समूह से शोभित हो तथा जहाँ समृद्धि और रमणीयता भी हो। ऐसे ही स्थान पर हम अपने निवास के लिए एक स्वच्छ पर्ण-कुटी बनाना चाहते हैं।

अगस्त्य— [पद्मावती छंद]

यद्यपि जग-कर्ता-पालक-हर्ता परिपूरण वेदन गाये।
अति तदपि कृपा करि मानुष वपु धरि थल पूछन हमसौं आये॥
सुनि सुर-वर-नायक राक्षस-घायक रक्षहू मुनिजन यज्ञ कीजै।
शुभ गोदावरि-तट विशद पंचवट पर्णकुटी तहँ प्रभु कीजै॥१५॥

शब्दार्थ—परिपूरण = सर्वतोभावेन पूर्ण। सुर-वर-नायक = देवताओं के श्रेष्ठ नेता। राक्षस-घायक = राक्षसों का वध करनेवाले। विशद = विस्तृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या—अगस्तजी राम के उपर्युक्त प्रश्न से अपने को गौरवान्वित समझते हुए उत्तर देते हैं—यद्यपि आप संसार के स्रष्टा, पोषक और नष्ट करनेवाले हैं; वेदों ने आपको सर्वथा पूर्ण माना है; फिर भी आपने कृपा-पूर्वक मानव शरीर धारण किया है और इससे अपने निवास के योग्य स्थल पूछ रहे हैं, तो हे देवताओं के श्रेष्ठ नायक तथा राक्षसों को नष्ट करने वाले भगवान ! पवित्र गोदावरी के तट पर 'पंचवटी' नामक विस्तृत स्थल है, वहीं आप अपनी पर्णकुटी बनायें और मुनियों की रक्षा करके यश प्राप्त करें।

[दो०] केशव कहे अगस्त्य के पंचवटी के तीर।
पर्णकुटी पावन करी, रामचंद्र रणधीर ॥१६॥

शब्दार्थ—कहे=बताये हुए। पंचवटी के तीर=पंचवटी नामक वनस्थली के एक भाग में।

व्याख्या—सरल है।

पंचवटी-वन-वर्णन

[त्रिभंगी छन्द]

फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे, कोकिल-कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी पियरस पूरी, वन वन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित, गुणगण-मंडित, भावनि मैं अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मदन सरति मधु सब जानैं॥१७॥

शब्दार्थ—पूरे=पूर्ण। रूरे=शोभित। पियरस=प्रियतम के प्रेम में। भावनि मैं=प्रेम भाव गर्भित। सहायक=लक्ष्मण। मधु=बसंत।

व्याख्या—भगवान राम के पंचवटी पहुँचने पर उसके सौन्दर्य में वृद्धि हो गई। वृक्ष फल-फूलों से युक्त होकर शोभित होने लगे। कोकिल कूजने लगे। प्रियतम के प्रेम में पगी हुई मयूरी वन-वन से नृत्य करती हुई डोलने लगी। तोता और मैना गुणज्ञ पण्डितों की भाँति कोकिल के गान और मयूरी के नृत्य में गर्भित भावना की व्याख्या करने लगे। श्रीराम को सीता और लक्ष्मण के साथ देखकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोगों ने उन्हें रति और वसन्त के साथ शोभित साक्षात् कामदेव समझा।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

लक्ष्मण—

[सवैया]

सब जाति फटी दुख की दुपटी, कपटी न रहै जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीच घटीहूँ घटी, जग जीव यतीन की छूटी तटी॥
अघ-ओंघ की बेरी कटी विकटी, निकटी प्रकटी गुरुज्ञान गटी।
चहुँओरन नाचति मुक्तिनटी, गुण धूरजटी वनपंचवटी॥१८॥

शब्दार्थ—दुपटी = चादर। घटी = घड़ी। निघटी = निश्चयपूर्वक घट गई। घटी हूँ घटी = प्रति घड़ी। तटी = समाधि। अघ-ओघ = पाप-समूह। निकटी = समीप। गुरु = गम्भीर। गटी = गठरी। धूरजटी = धूर्जटी (शंकर भगवान)। मुक्ति नटी = मुक्ति रूपी नर्तकी। [घड़ी = २४ मिनट के समय को 'घड़ी' के रूप में समझा जाता है।]

व्याख्या—लक्ष्मण जी पंचवटी की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—यह पंचवटी नामक वनस्थली तो भगवान शंकर के गुणों को धारण करने वाली है। (जो गुण शंकर भगवान में हैं वे सभी इस वनस्थली में भी हैं) यहाँ आते ही सभी प्रकार के दुखों की चादर फट जाती है। (शंकर भगवान भी आशुतोष हैं अतः उनके समीप जाने पर भी दुःख नष्ट हो जाते हैं) यहाँ कपटी मनुष्य एक घड़ी भी नहीं टिक सकता। यहाँ के वातावरण से उसके आचरण में परिवर्तन हो जायगा। (भगवान शंकर के सम्मुख भी कपटी व्यक्ति नहीं टिक सकता) यहाँ आने पर मृत्यु की कामना प्रति घडी निश्चय ही कम होने लगती है क्योंकि संसार के कष्टों से पीड़ित व्यक्ति को यहाँ शान्ति मिलती है। (यही स्थिति भगवान शंकर के सम्मुख जाने पर भी होती है) यहाँ तपस्वियों की समाधि भंग हो जाती है क्योंकि समाधिजनित आनन्द से यहाँ के वातावरण का आनन्द अधिक मोहक है। (भगवान शंकर की कृपा हो जाने पर समाधि लगाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसलिए उनके समीप जाने पर भी समाधि भंग हो जाती है) यहाँ आने से हर पापों की विकट शृंखला टूट जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है; गम्भीर ज्ञान की गठरी प्रकट हो जाती है; यहाँ तो मुक्ति रूपी नर्तकी सर्वत्र नृत्य करती हुई प्रतीत होती है। (यह सभी भगवान शंकर में भी है। उनके समीप जाने पर भी पाप नष्ट हो जाता है; शुद्ध ज्ञान का उदय होता है और उनके सामीप्य लाभ से भी मुक्ति प्राप्त करना सहज हो जाता है) इस प्रकार पंचवटी की वनस्थली भगवान शंकर की विशेषताओं से युक्त है।

अलंकार—अनुप्रास, यमक और ललितोपमा।

विशेष—इस छन्द में 'टी' के अनुप्रास की प्रेरणा केशव को सम्भवतः हनुमन्नाटक से प्राप्त हुई है। हनुमन्नाटक मे पचवटी का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

एषा पंचवटी रघूत्तम कुटी यत्रास्ति पंचावटी।
पान्थस्येकघटी पुरस्कृत तटी संश्लेषभित्तौ बटी॥
गोदा यत्र नटी तरंगित तटी कल्लोल चंचत पुटी।
दिव्यामोद कुटी भवाब्धि शकटी भूतक्रिया दुष्कटी॥

[हाकलिका छंद]

शोभत दंडक की रुचि बनी। भाँतिन भाँतिन सदर घनी।
सेव बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भान जहँ बसै॥१९॥

शब्दार्थ—दंडक बन = बन विशेष (कहते हैं कि दंडक नामक राजा ने अपने गुरु शुक्राचार्य की पुत्री पर कुदृष्ट डाली थी। परिणाम स्वरूप गुरु शुक्राचार्य ने उस शाप दिया और उसके राज्य मे सात दिनों तक बराबर तप्त बालू का वृष्ट होती रही। राज्य उजड़ गया। उसी राजा के नाम पर उस वन का नाम दडक पड़ गया। 'पचवटी दंडक वन का ही एक भाग था।)

रुचि=शोभा। सेव = सेवा। श्री फल = (१) बेल, (२) वैभव का सौन्दर्य।

व्याख्या—दण्डक वन का सौन्दर्य पुनः निखर आया। वह भाँति-भाँति के सौन्दर्य के उपकरणो से युक्त हो गया। वन का सौन्दर्य देखकर लगता था कि किसी बड़े राजा की सेवा का फल साकार हो गया है क्योंकि जिस प्रकार किसी बड़े राजा की सेवा करने से लक्ष्मी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैभव प्रत्यक्ष हो उठता है उसी प्रकार उस वन में श्री फल (बेल के फल) शोभित हो रहे थे।

बेर भयानक सी अति लगै। अर्क-समूह जहाँ जगमगै॥
नैनन को बहुरूपन ग्रसै। श्रीहरि को जनु मूरति लसै॥२०॥

शब्दार्थ—बेर = बेला, समय। अर्क समूह = (१) द्वादश आदित्य, (२) मंदार के वृक्ष। ग्रसै = आकर्षित कर लेती है।

व्याख्या—दंडक वन में प्रलयकाल का समय आया हुआ ज्ञात होता है क्योंकि जैसे प्रलयकाल में अर्क-समूह (द्वादश सूर्य) का प्रखर तेज जगमगा उठता है वैसे ही यहाँ (इस समय) अर्क-समूह (मंदार वृक्षों का समूह) शोभित है। इस वन की श्री साक्षात् भगवान विष्णु की मूर्ति प्रतीत होती हैं क्योंकि जिस प्रकार भगवान की मूर्ति नेत्रों को सहसा आकर्षित कर लेती है वैसे ही दण्डक वन की रमणीयता भी देखने वालों के नेत्रों को सहसा अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उत्प्रेक्षा।

[दोधक छंद]

राम—पांडव की प्रतिमा सम लेखौ।
अर्जुन भीम महामति देखौ॥
है सुभगा सम दीपति पूरी।
सिंदुर की तिलकावलि रूरी॥२१॥

शब्दार्थ—पांडव = महाराज पांडु के पुत्र। अर्जुन = (१) तृतीय पाण्डव; (२) अर्जुन नामक वृक्ष, ककुभ। भीम = (१) द्वितीय पाण्डव (२) अम्लवेत का वृक्ष। सुभगा = सौभाग्यवती स्त्री। दीपति = दीप्ति, शोभा। सिंदुर = (१) सिंदूर (२) सिंदूर नामक वृक्ष। तिलक = (१) मुख पर की गई पत्र-रचना। (२) तिलक नामक वृक्ष।

व्याख्या—रामचन्द्रजी दण्डक वन के विषय में कुछ अद्भुत कल्पनायें करते हैं—वे कहते हैं—हे बुद्धिमान लक्ष्मण! यह वन तो पाण्डवों की प्रतिमा के समान प्रतीत होता है क्योंकि जैसे पांडवों में अर्जुन और भीम है वैसे ही यहाँ भी अर्जुन (ककुभ) और भीम (अम्लवेत) के वृक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इस वन की रमणीयता किसी सौभाग्यवती स्त्री की कान्ति के समान है क्योंकि जिस प्रकार सौभाग्यवती स्त्री सिंदूर धारण करती है और उसके मस्तक पर तिलकावलि शोभित रहती है उसी प्रकार इस बन मे सिंदूर (वृक्ष विशेष) वृक्ष हैं और तिलक (वृक्ष विशेष) वृक्ष की पंक्ति भी शोभित हो रही हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा।

विशेष—राम द्वारा अर्जुन और भीम (महाभारत कालीन पात्रों) की चर्चा कराने से इस छन्द में 'काल विरुद्ध दोष' आ गया है।

राजति है यह ज्यौं कुलकन्या।
धाइ विराजति है संग धन्या॥
केलि-थली जनु श्री गिरिजा की।
शोभ धरे शितकंठ प्रभा की॥ २२॥

शब्दार्थ—कुलकन्या = कुलीन घर की कन्या। धाइ = (१) धात्री, दाई; (२) धवा नामक झाड़। केलि थली = क्रीड़ा भूमि। शितकंठ = (१) महादेव, (२) मयूर।

व्याख्या—सीताजी भी अपनी भावनाओं के अनुकूल दण्डक वन की श्री का वर्णन करती हैं—दण्डक बन की शोभा किसी कुलीन कन्या के सौन्दर्य के सामान है क्योंकि जिस प्रकार कुलीन कन्या क साथ उसकी धाय (धात्री, पोषण करनेवाली दाई) सदैव बनी रहती है उसी प्रकार इस वनस्थली मे भी 'धाइ' (धवा की झाड़) सदैव विराजमान हैं। यह वनस्थली तो पार्वतीजी की क्रीड़ा-भूमि जान पड़ती है क्योंकि जिस प्रकार पार्वतीजी की क्रीड़ा-स्थली मे शितकंठ (महादेवजी) शोभा वृद्धि करते हैं उसी प्रकार इस वनस्थली में भी शितकंठ (मयूर) शोभा-वृद्धि कर रहे हैं।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट उपमा और उत्प्रेक्षा।

विशेष—उपर्युक्त उत्प्रेक्षाये पात्रों की भावनाओं के अनुकूल हैं। लक्ष्मणजी उग्र और प्रचण्ड हैं इसलिए वे प्रलयकाल के भीषण दृश्य की कल्पना करते हैं। भगवान राम सीता के साथ हैं अतः उनमें शृङ्गारिक वृत्ति प्रधान है इसलिए वे वनस्थली की श्री मे सौभाग्यवती स्त्री की कल्पना करते है। सीताजी कुलीन-कन्या और कुलीन वधू हैं इसलिए उन्हें वन वनस्थली कुलीन कन्या के सदृश ज्ञात होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोदावरी वर्णन

[मनहरन छंद]

अति निकट गोदावरी पाप-संहारिणी।
चल तरंग तुंगावली चारु संचारिणी।
अलि कमल सौगंध लीला मनोहारिणी।
वहु नयन देवेश शोभा मनोधारिणी ॥२३॥

शब्दार्थ—चल = चचल। तुंग = ऊँचा। सौगन्ध = सुगन्धिपूर्ण। बहु नयन देवेश = सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र।

व्याख्या—रामचन्द्र जी गोदावरी नदी का अलंकृत वर्णन करते हैं—वे कहते हैं—हमारी कुटी के समीप ही पापों को नष्ट करनेवाली गोदावरी प्रवहमान है। यह नदी अपनी चचल और उत्तुंग तरंगों से सौन्दर्य का संचार करती है। इसमें कमल पुष्पित हैं और उनकी सुगन्धि से आकर्षित भँवरे मँडरा रहे हैं। इस प्रकार भ्रमरावली युक्त सुगन्धित कमल पुष्पों की लीला से यह सबका मन मुग्ध करती है। ऐसा जान पड़ता है कि इसने अनेक नेत्रोंवाले इन्द्र की शोभा धारण कर ली है। (नेत्रों की तुलना कमलों से दी जाती है। इन्द्र के अनेक नेत्र हैं। गोदावरी में अनेक कमल-पुष्प हैं। इस प्रकार अनेक कमल-पुष्पों से युक्त गोदावरी अनेक नेत्रों से युक्त देवेश इन्द्र का सौन्दर्य धारण किये हुए है।)

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[दोधक छंद]

रीति मनो अविवेक की थापी।
साधुन की गति पावत पापी ॥
कंजज की मति सी वड़भागी।
श्री हरिमंदिर सौं अनुरागी ॥२४॥

शब्दार्थ—कंजज = कमल से जायमान, ब्रह्मा। हरि मंदिर = विष्णु का निवास स्थल, समुद्र।

व्याख्या—इस गोदावरी ने अविवेकी व्यक्ति के समान रीति-नीति स्थापित की है। यह इसका अविवेक ही है कि इसमें स्नान करके पापी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोग भी साधुओं की गति प्राप्त कर लेते हैं (स्वर्ग चले जाते हैं)। यह सौभाग्यशालिनी गोदावरी ब्रह्मा की-सी बुद्धि रखनेवाली है क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्मा की मति सदैव विष्णुधाम में रमी रहती है वैसे ही यह भी सदैव विष्णुधाम (समुद्र) की ओर ही जाने में प्रवृत्त रहती है।

अलंकार—व्याज स्तुति।

[अमृतगति छंद]

निपट पतिव्रत धरणी। जग जन के दुख हरणी।
निगम सदा गति सुनिए। अगति महापति गुनिए ॥२५॥

शब्दार्थ—धरती = धारण करनेवाली। अगति = गति रहित; एक-सी स्थिति में। महापति = समुद्र।

व्याख्या—यह गोदावरी पूर्ण रूप से पातिव्रत धर्म का पालन करती है क्योंकि एक भाव से अपने पति समुद्र की ओर प्रवृत्त रहती है। यह संसार के लोगों का भी कष्ट दूर करती है। (इस प्रकार इसके आचरण में विरोध जान पड़ता है, जो संसार के सभी लोगों का कष्ट दूर करता है उसमें पति के प्रति एकनिष्ठता कहाँ रही? किन्तु वस्तुतः यह विरोध है नहीं। नदी सदैव अपने पति समुद्र की ओर ही प्रवाहित होती है। साथ ही वह संसार के लोगों का भी कल्याण करती है।) यह पापियों को सदैव मुक्ति (गति प्रदान करती है और अपने पति (समुद्र) को अगति (गतिरहितताः समावस्था, एकरसता) प्रदान करती है। (यहाँ भी विरोध जान पड़ता है। जो पापी है उन्हें गति दी जाय और जो अपना पति है उसे अगति दी जाय; यह विरुद्धाचरण है। किन्तु यहाँ भी वस्तुतः विरोध नहीं है। पुण्य तोया नदी में स्नान करके पापी अवश्य ही मुक्त हो जायँगे और समुद्र तो सदैव एक रस रहकर अपनी मर्यादा की रक्षा करेगा ही। यह दोनों क्रियायें स्वाभाविक हैं।)

अलंकार—विरोधाभास।

[दो०] विषमय यह गोदावरी, अमृतन को फल देति।
केशव जीवनहार को, दुख अशेष हरि लेति ॥२६॥

शब्दार्थ—विषमय = जल से पूर्ण। जीवनहार = पानी हरनेवाला; जल पीनेवाला।

व्याख्या—यह विष (जल) पूर्ण गोदावरी स्नानादि करनेवालों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताओं के पाने योग्य फल (स्वर्ग) प्रदान करती है। (विष का अर्थ जल करने से विरोध का परिहार हो जाता है) यह अपना जीवन (जल) हरनेवाले के सभी दुःखों को दूर कर देती है। (जीवन का अर्थ 'जल' करने से विरोध का परिहार हो जाता है)।

अलंकार—श्लेष से पुष्ट विरोधाभास।

बन-विलास-वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

जब जब धरि वीना प्रकट प्रवीना,
बहु गुण लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै, दुखनि भजावै,
विविध बजावै गुण गीता।
तजि मति संसारी विपिन विहारी,
दुख सुखकारी घिरि आवैं॥
तव तव जग भूषण रिपुकुल-दूषण,
सबको भूषण पहिरावैं॥२७॥

शब्दार्थ—प्रवीना=चतुरा। वह गुण लीना=बहुत से गुणों से युक्त। सुख=सहज भाव से। भजावै=दूर करती हैं। गुन-गीता=गुणों को गानेवाले गीत। मति संसारी=संसारी बुद्धि, भेद-भाव, या भय। दुःखकारी=सिंह, साँप आदि। सुखकारी=मोर, कोकिलादि।

व्याख्या—वन में सीताजी सदैव संगीतादि से राम को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती हैं। कवि ने उनके द्वारा प्रस्तुत संगीत के प्रभाव का वर्णन किया है। प्रवीण और गुरुज्ञ सीताजी जब-जब हाथ में वीणा लेकर उसे विविध प्रकार से बजाती हैं, राम के गुणों का वर्णन करनेवाले गीतों को गाती हैं और इस प्रकार प्रियतम राम के वनवास-जनित दुखों को दूर करतीं और उनके मन का रंजन करती हैं, तब-तब उनके वीणावादन और मधुर गायन के प्रभाव से वन में विहार करनेवाले सुखकारी (मोर-कोकिला आदि) और दुखकारी (सिंह-सर्प आदि) जीव सांसारिक बुद्धि (परस्पर भेद, भय और ईर्ष्यादि) त्यागकर एकत्र हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जातें हैं और शत्रु-हन्ता तथा जगत् श्रेष्ठ भगवान् राम उन पशुओं को प्रेमपूर्वक पुष्पादि के भूषण पहिना देते है।

अलंकार—अनुप्रास।

[तारक छंद]

कवरी कुसुमालि सिखीन दयी।
गज-कुंभनि हारनि शोभमयी॥
मुकुता शुक सारिक नाक रचे।
कटि केहरि किंकिणि सोभ सचे॥२८॥

शब्दार्थ—कवरी = चोटी। सिखीन = मोर। गज कुम्भनि = हाथी के सिर के दोनों ओर वाले उभड़े भाग।

व्याख्या—भगवान् राम ने मोरों को फूलों की चोटी दी। हाथियों के कुम्भ-स्थलों को हारों से सज्जित कर दिया। तोता और मैना की नासिका में मोती पहिना दिया और शेर को कटि को किंकिणी से शोभित कर दिया।

दुलरी कल कोकिल कंठ बनी।
मृग खंजन अंजन भाँति ठनी॥
नृप हंसनि नूपुर शोभ भरी।
कल हंसनि कंठनि कंठसिरी॥२९॥

शब्दार्थ—कल = सुन्दर। नृपहंस = राजहंस। कलहंस = मधुर रव करनेवाले हंस। कंठसिरी = कंठी।

व्याख्या—कोकिल के सुन्दर कंठ में दुलरी (दो लड़ियों की माला) पहिना दी। मृग और खंजन (पक्षी विशेष, जिसको नेत्रों का उपमान मानते हैं) के नेत्रों को आँज दिया। राजहंसों को नुपूर पहिना दिया और कलहंसों के गलों में कंठी सौन्दर्यवृद्धि करने लगी।

सुख-वासनि वासित कीन तबै।
तृण गुल्म लता तरु शैल सबै॥
जलहू थलहू यहि रीति रमैं।
घन जीव जहाँ तहँ संग भ्रमैं॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—सुख-वासनि = सहज सुगन्धि से। घन जीव = घनेरे जीव, बहुत से जीव।

व्याख्या—भगवान राम ने अपनी सहज सुगन्धि से तृण, गुल्म (ऐसा पौधा जो जमीन से ही अनेक शाखाओं में फूटकर विकसित हो) लता, वृक्ष और पर्वत, सभी को भर दिया। वे जल-थल में सर्वत्र इसी रूप में रमण करते हैं और जहाँ कहीं वे जाते हैं, वन के बहुत से जीव उनके सौन्दर्य से प्रभावित होकर साथ-साथ घूमते रहते हैं।

अलंकार—अत्युक्ति।

[दो०] सहज सुगंधि शरीर की, दिशि-विदिशन अवगाहि।
दूती ज्यों आई लिये, केशव शूपर्नखाहि ॥३१॥

शब्दार्थ—अवगाहि = अवगाहन करके, प्रवेश करके, ढूंढ़कर के।

व्याख्या—भगवान राम के शरीर की नैसर्गिक सुगन्धि सभी दिशाओं में ढूंढ़कर शूपर्णखा को लिए उसी प्रकार लौट आई जिस प्रकार दूती किसी नायिका को ढूंढ़कर ले आती है। (तात्पर्य यह कि राम की नैसर्गिक सुगन्धि से आकृष्ट होकर शूपर्णखा उनके समीप आई)।

अलंकार—उदाहरण।

शूपर्णखा-राम-संवाद

[मरहट्टा छंद]

इक दिन रघुनायक सीय सहायक रतिनायक अनुहारी।
शुभ गोदावरि तट विमल पंचवट बैठे हुते मुरारी।
छबि देखत ही मन मदन मथ्यो तनु शूपर्णखा तेहि काल।
अति सुंदर तनु करि कछु धीरज धरि बोली वचन रसाल ॥३२॥

शब्दार्थ—सीय सहायक = सीता के साथ। रतिनायक = कामदेव। अनुहारी = अनुरूप। मुरारी = भगवान राम।

व्याख्या—एक दिन भगवान राम सीताजी के साथ साक्षात् कामदेव की तरह पवित्र गोदावरी के तट पर विमल पंच-वट की छाया में बैठे हुए थे। उस समय उन्हें देखकर शूपर्णखा के तन-मन में काम पीड़ा उत्पन्न हुई। वह अत्यन्त रूपवती रमणी का वेश बनाकर धैर्य पूर्वक राम के समीप आई और उनसे मधुर वचन बोली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शूपर्णखा [सवैया]

किन्नर हौ नर रूप विचच्छन, यच्छ कि स्वच्छ सरीरनि सोहौ।
चित्त-चकोर के चंद किधौं, मृग-लोचन चारु विमाननि रोहौ॥
अंग धरे कि अनंग हौ केसव अंगी अनेकन के मन मोहौ।
वीर जटानि धरे-जनु-बान, लिये वनिता वन में तुम को हौ॥

शब्दार्थ—विचच्छन = विचक्षण, प्रवीण। रोहौ = आरोहण करते हो, सवार हो जाते हो। अनंग = कामदेव। अंगी = शरीर धारी।

व्याख्या—शूपर्णखा ने राम से उनका परिचय पूछा—हे वीर! जटा धारण किए हुए, धनुष बाण लिए हुए, स्त्री के साथ वन में विचरण करनेवाले आप कौन हैं? क्या आप नर रूप धारण करने में विचक्षण कोई किन्नर हैं या विमल शरीर धारी कोई यक्ष हैं? या चित्र रूपी चकोर के लिए साक्षात् चन्द्रमा हैं? जो लोगों के मृगनेत्र रूपी विमानों पर सवार हो जाते हैं? (आपको जो भी देखता है उसी के नेत्रों में आप बस जाते हैं?) या आप शरीर धारी कामदेव हैं जो शरीर धारियों के मन को (मनुष्यों के मन को) मुग्ध कर रहे हैं?

अलंकार—सन्देह।

[मनोरमा छंद]

राम—हम हैं दशरत्थ महीपति के सुत।
शुभ राम सुलक्ष्मण नामन संयुत॥
यह शासन दै पठये नृप कानन।
मुनि पालहु मारहु राक्षस के गन॥३४॥

शब्दार्थ—शासन = आज्ञा।

व्याख्या—स्पष्ट है।

शूपर्णखा—नृप रावण की भगिनी गनि मोकहँ।
जिनकी ठकुराइति तीनहु लोकहँ॥
मुनिजै दुखमोचन पंकजलोचन।
अब मोहिं करो पतिनी मन रोचन॥३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—गनि = समझो। ठकुराइति = स्वामित्व। सुनिजै = सुनिये। मन रोचन = मन को रुचनेवाले।

व्याख्या—सरल है।

[तोमर छंद]

तब यों कह्यो हँसि राम। रव मोहि जानि सबाम।
तिय जाय लक्ष्मण देखि। सम रूप यौवन लेखि ॥३६॥

शब्दार्थ—सबाम = सपत्नीक, स्त्री सहित।

व्याख्या—राम ने शूर्पणखा के प्रस्ताव पर हँसकर—हे सुन्दरी! मैं तो सपत्नीक हूँ। (विवाहित हूँ। अतः तुम्हें स्वीकार करने में असमर्थ हूँ) तू लक्ष्मण के समीप जा। वह तुम्हारे समान ही यौवन और रूपवाले हैं। (कदाचित् वह तुम्हें स्वीकार कर लें)।

[दोधक छंद]

शूपर्णखा—राम सहोदर मो तन देखौ।
रावण की भगिनी जिय लेखौ ॥
राजकुमार रमौ सँग मेरे।
होहिं सबै सुख संपति तेरे ॥३७॥

शब्दार्थ—राम सहोदर = लक्ष्मण। रमौ = रमण करो।

व्याख्या—सरल है।

लक्ष्मण—वै प्रभु हौं जन जानि सदाई।
दासि भये महँ कौनि बड़ाई ॥
जौ भजिए प्रभु तौ प्रभुताई।
दासि भये उपहास सदाई ॥३८॥

शब्दार्थ—जन = सेवक। भेजिए = सेवा कीजिए। तौ प्रभुताई = तो प्रभुता प्राप्त होती है।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

[मल्लिका छंद]

हास के विलास जानि। दीह मानखंड मानि ॥
भक्षिबे को चित्त चाहि। सामुहे भई सियाहि ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—विलास = खेल। दीह = दीर्घ। मान खंड = अपमान। सामुहे = सम्मुख।

व्याख्या—शूर्पणखा ने दोनों भाइयों को अपने साथ खिलवाड़ करते हुए समझा। इसमें उसने अपनी महती मान-हानि समझी। उसने सीताजी को ही भक्षण करने का निश्चय किया और सीता के सामने गई।

[तोमर छन्द]

तब रामचन्द्र प्रबीन। हँसि बंधु त्यों दृग दीन॥
गुनि दुष्टता सह लीन। श्रुति नासिका बिनु कीन॥४०॥

शब्दार्थ—त्यों = ओर। दृग दीन = नेत्रों से संकेत किया। गुनि = समझकर। दुष्टता सहलीन = दुष्टता में लीन समझकर। श्रुति = कान।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[दो०] सोन छिछि छूटत वदन, भीम भयी तेहि काल।
मानो कृत्या कुटिल युत, पावक-ज्वाल कराल॥४१॥

शब्दार्थ—सोन = श्रोणित, रक्त। भीम = भयंकर। कृत्या = राक्षसी।

व्याख्या—नाक और कान के कटते ही शूर्पणखा के शरीर से रक्त की पिचकारी-सी छूट पड़ी। उसने भयंकर रूप धारण किया। वह ऐसी प्रतीत हुई मानो भीषण अग्नि ज्वाला के साथ कृत्या राक्षसी प्रकट हो गई हो।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

खरदूषण-वध

[तोटक छंद]

गइ शूर्पणखा खरदूषण पै। सजि ल्यायी तिन्हें जगभूषण पै॥
शर एक अनेक ते दूरि किये। रवि के कर ज्यों तमपुंज पिये॥४२॥

शब्दार्थ—जगभूषण = राम। कर = किरणें।

व्याख्या—शूर्पणखा खर-दूषण के पास गई। उन्हें अपनी दुर्गति दिखाकर राम के साथ युद्ध करने के लिए सज्जित कर लाई। भगवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम ने उन्हें एक ही बाण से उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे सूर्य की किरण अंधकार-समूह को नष्ट कर देती है।

अलंकार—उपमा।

[मनोरमा छंद]

वृष के खरदूषण ज्यौं खरदूषण।
तब दूरि किये रवि के कुल-भूषण॥
गदशत्रु त्रिदोष ज्यौं दूरि करै वर।
त्रिशिरा शिर त्यौं रघुनंदन से शर॥४३॥

शब्दार्थ—वृष के=वृष राशि के। खर दूषण=तृणों को नष्ट करनेवाले (सूर्य) गद=वैद्य। त्रिदोष=सन्निपात।

व्याख्या—जिस प्रकार वृष राशि का प्रखर सूर्य तृणादि को तप्त करके जला डालता है उसी प्रकार रवि कुल में श्रेष्ठ राम ने खर-दूषण (राक्षसों) को अपने प्रखर बाणों से जला डाला। जिस प्रकार वैद्य सन्निपात को (अपनी औषधि के गुण से) दूर कर देता है वैसे ही राम के बाणों ने त्रिशिरा (राक्षस) के सिरों को धड़ से अलग कर दिया।

अलंकार—देहरी दीपक से पुष्ट उपमा। (दूर किए, क्रिया पद देहरी दीपक का कार्य कर रहा है)।

भजि शूर्पणखा गइ रावण पै तब।
त्रिशिरा खरदूषण नाश कहे सब॥
तब शूर्पणखा मुख बात सबै सुनि।
उठि रावण गो सु-मरीच जहाँ मुनि॥४४॥

शब्दार्थ—सु-मरीच जहाँ मुनि=जहाँ मारीच मुनि रूप में निवास करता था।

व्याख्या—सरल है।

रावण-मारीच संवाद

[मनोरमा छंद]

रावण बात कही सिगरी त्यौं।
शूर्पणखाहिं विरूप करी ज्यौं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रावण—एकहि राम अनेक सँहारे।
दूषण स्यों त्रिशिरा खर मारे ॥४५॥

शब्दार्थ—स्यों = सहित। विरूप = कुरूप।

व्याख्या—स्पष्ट है।

अलंकार—विभावना (दूसरी)।

तू अब होहि सहायक मेरौ।
हौं बहुते गुण मानिहौं तेरौ॥
जो हरि सीतहि ल्यावन पैहैं।
वै भ्रमि शोकन ही मरि जैहैं॥४६॥

शब्दार्थ—गुण मानिहौं = आभारी हूँगा। कृतज्ञ हूँगा। हरि = हरण करके। वे = राम। भ्रमित होकर।

व्याख्या—सरल है।

मारीच—रामहि मानुप कै जनि जानौ।
पूरण चौदह लोक बखानौ॥
जाहु जहाँ तिय लै सु न देखौं।
हौं हरि को जलहूँ थल लेखौं॥४७॥

शब्दार्थ—कै = करके। सु = सो। हौं = मैं।

व्याख्या—मारीच राम की शक्ति जानता था। वह कहता है—राम को निरा मनुष्य न समझो। उन्हें चौदहो लोकों में व्याप्त (भगवान्) समझो। तुम सीता को लेकर कहाँ जाओगे? मैं तो ऐसा कोई स्थान नहीं देखता जहाँ तुम उन्हें छिपाकर रख सको। (भगवद् सर्वव्यापक हैं) मैं तो हरि को जल-थल में सर्वत्र व्याप्त मानता हूँ।

[सुन्दरी छंद]

रावण—तू अब मोहि सिखावत है शठ।
मैं वश जक्त कियो हठ ही हठ॥
वेगि चलै अब देहि न ऊतरु।
देव सबै जन एक नहीं हरु॥४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—जक्त = जगत् को। ऊतरु = उत्तर। हरु = हर, शंकर भगवान। जन = सेवक, दास।

व्याख्या—रावण क्रुद्ध होकर कहता है—रे शठ! तू मुझे शिक्षा दे रहा है? मैंने सारे संसार को (शठ वश) अपने वश में कर लिया है। मेरी बातों का उत्तर न दे। (मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं तेरी बातें सुन सकूँ) शीघ्र ही मेरे साथ चल। (यदि राम मानव नहीं देवता हैं तो भी तू समझ ले कि) सभी देवता मेरे सेवक हैं केवल एक भगवान शंकर अपवाद हैं। (अतः देवता होने पर भी वे हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते)।

[दो०] जाँचि चल्यो मारीच मन, मरण दुहुँ विधि आसु।
रावण के कर नरक है; हरि कर हरिपुर वासु ॥४९॥

शब्दार्थ—आसु = आशु, शीघ्र।

व्याख्या—मारीच ने अपने मन में भली-भाँति समझ लिया कि दोनों परिस्थियों में (यदि मैं रावण की आज्ञा मानता हूँ तो भी नहीं मानता हूँ तो भी) मेरी मृत्यु निकट है। यदि मैं रावण के हाथ से मारा जाता हूँ तो नरक वास प्राप्त होगा और यदि भगवान राम के हाथों मारा जाता हूँ तो बैकुण्ठलोक प्राप्त होगा। (अतः राम के हाथों मरना ही अधिक उचित है।)

हनुमन्नाटक में भी इसी भाव का श्लोक है—

रामादपि च मर्तव्य मर्तव्यं रावणादपि।
उभयोर्यदि मर्तव्यं वरं रामो न रावणः॥

सीता-राम-मंत्रणा

[सुन्दरी छंद]

राम—राजसुता इक मंत्र सुनौ अब।
चाहत हौं भुव-भार हर्‌यो सब॥
पावक मैं निज़ देहहिं राखहु।
छाय शरीर मृगै अभिलाषहु॥५०॥

शब्दार्थ—राज सुता = सीता। मंत्र = मन्त्रणा। भुव-भार = संसार में व्याप्त पापाचार जनित भार। छाय सरीर = छाया शरीर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवास्तविक या माया मय शरीर धारण करके। मृगै अभिलाषहु = मृगा प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट करो।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[चामर छंद]

आइयौ कुरंग एक चारु हेम-हीर कौ।
जानकी समेत चित्त मोहि राम वीर कौ॥
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखिकै।
हाथ चाप-वाण लै गये गिरीश नाँखिकै॥५१॥

शब्दार्थ—हेम हीर = सोना और हीरा। साधु = साधु आचरण-वाले। नाँखिकै = लाँघकर।

व्याख्या—सोने और हीरे का बना हुआ एक सुन्दर मृग दिखाई पड़ा। श्री राम और सीता दोनों का मन उसे देखकर मुग्ध हो गया। राम ने सीता के समीप साधु आचरणवाले भाई लक्ष्मण को छोड़कर उस मृग को प्राप्त करने के लिए धनुष बाण लेकर प्रस्थान किया और (समीपवर्ती) पर्वत श्रेणी को लाँघकर चले गये।

मारीच-वध

[दो०] रघुनायक जब हीं हन्यो, सायक शठ मारीच।
'हा लक्ष्मण' यह कहि गिरेउ, श्रीपति के स्वर नीच॥५२॥

शब्दार्थ—सायक = बाण। श्रीपति के स्वर = भगवान राम के स्वर जैसे स्वर बनाकर (राम की बोली का नकल करता हुआ)।

व्याख्या—दुष्ट मारीच को भगवान् राम ने ज्योहीं बाण मारा, उसने भगवान् राम के स्वर में 'हा लक्ष्मण' कहकर शरीर त्याग दिया।

[निशिपालिका छंद]

सीता—राजतनया तबहि बोल मुनि यों कह्यो।
जाहु चलि देवर न जात हमपै रह्यो॥
हेममृग होहि नहिं रैनिचर जानिए।
दीन स्वर राम केहि भाँति मुख आनिए॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—राज तनया = सीता। न जात हम पै रह्यो = हमसे रहा नहीं जाता। हेम मृग = स्वर्ण मृग। रैनिचर = राक्षस।

व्याख्या—स्पष्ट है।

लक्ष्मण—शोच अति पोच उर मोच दुख दानिए।
मातु यह बात अवदात मम मानिए॥
रैनिचर छद्म बहु भाँति अभिलाषहीं।
दीन स्वर राम कबहुँ न मुख भाषहीं॥५४॥

शब्दार्थ—पोच = तुच्छ। मोच = निकाल देना, दूर कर देना। दुखदानिये = दुखदायी। अवदात = सत्य।

व्याख्या—लक्ष्मणजी सीता को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि—हे माता! इस तुच्छ और दुखदायी चिन्ता को हृदय से निकाल दीजिये। आप मेरी बात सत्य माने। राम कभी भी अपने मुख से आर्त्त स्वर (दीनतापूर्ण वाणी) नहीं उच्चारण कर सकते। राक्षस तरह-तरह का कपटाचरण किया करते हैं। (यह भी किसी राक्षस की कपट-लीला होगी।)

[चंचला छंद]

पक्षिराज यक्षराज प्रेतराज यातुधान।
देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान॥
पर्वतारि अर्ब सर्व सर्वथा बखानि।
कोटि कोटि सूर चंद्र रामचन्द्र दास मानि॥५५॥

शब्दार्थ—पक्षिराज = गरुड़। यक्षराज = कुबेर। प्रेतराज = यम। यातुधान = राक्षस। अदेवता = दैत्य। नृदेवता = राजा। पर्वतारि = इन्द्र। अर्ब = एक अरब। खर्ब = एक खरब। सर्व = शिव।

व्याख्या—लक्ष्मणजी भगवान् राम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं—संसार में गरुड़, कुबेर, यम, राक्षस, देवता, दैत्य और राजा आदि जितने भी शक्तिशाली व्यक्ति हैं वे सब तथा अरबों इन्द्र, खरबों शिव और करोड़ों सूर्य-चन्द्रमा आदि सभी को श्री रामचन्द्रजी का दास समझना चाहिए।

अलंकार—उदात्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[चामर छंद]

राजपुत्रिका कह्यो, सो और को कहै, सुनै ।
कान मूंदि बार बार, शीख बीसधा धुनै ।।
चापकीय रेख खाँचि, देव-साखि दै चले ।
नाँघिहैं, ते भस्म होहिं, जीव जे बुरे भले ।।५६।।

शब्दार्थ—बीसधा=बीसों प्रकार से । चापकीय=चाप द्वारा, धनुष की नोक से । देव साखि दै=देवताओं को साक्षी बनाकर (अर्थात् देवतागण आप साक्षी हैं मैं सीताजी के द्वारा बलात् भेजा जा रहा हूँ) ।

व्याख्या—लक्ष्मण की बातें सुनकर सीताजी ने उनके प्रति जो कटु वचन कहे वह (इतने अशोभन थे) भला और कौन कह सकता है ? यही नहीं उन्होंने (सीता के) लक्ष्मण की बातें न सुनाई पड़ें इसलिए बार-बार अपना कान मूंदकर बीसों प्रकार से सिर पीटना शुरू किया । (विवश होकर) लक्ष्मणजी ने उनके चारों ओर धनुष की नोक से रेखा खींच दी और देवताओं को अपनी निर्दोषिता तथा विवशता का साक्षी बनाकर यह कहते हुए प्रस्थान किया कि कोई भी जीव, चाहे वह भला हो या बुरा, जो इस रेखा को लाँघेगा वह भस्म हो जायगा ।

अलंकार—तुल्ययोगिता ।

सीता-हरण

छिद्र ताकि छुद्रराज लंकनाथ आइयो ।
भिच्छु जानि जानकी सो भीख को बोलाइयो ।।
सोच पोच मोचिकै सकोच भीम भेख को ।
अंतरिच्छही करी ज्यों राहु चंद्ररेख को ।।५७।।

शब्दार्थ—छिद्र=खाली स्थान, अवसर, मौका देखकर । सोच पोच मोचिकै सकोच भीम भेख को=अपने भयंकर वेश के तुच्छ संकोच को दूर करके (अर्थात् पुनः भयंकर वेश धारण करके) । अन्तरिच्छही=आकाश में ही ।

व्याख्या—अवसर देखकर लंका का राजा क्षुद्र बुद्धि वाला रावण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम के आश्रम में आया। सीताजी ने उसे भिक्षुक समझकर भीख देने के लिए समीप बुलाया। रावण ने अपने भयंकर वेश की तुच्छ चिन्ता को दूर करके (अर्थात् पुनः भयंकर वेश धारण करके) सीता का उसी प्रकार हरण कर लिया जिस प्रकार राहु आकाश में चन्द्रमा की रेखा को ग्रस लेता है।

अलंकार—(लाला भगवानदीन ने 'ज्यों' का अर्थ 'मानो' लिया है और इस प्रकार उत्प्रेक्षा अलंकार मानना उचित समझा है।)

[दंडक दंड]

धूमपुर के निकेत मानो धूमकेतु की,
शिखा की धूमयोनि मध्य रेखा सुधाधाम की।
चित्र की सी पुत्रिका को रूरे बगरूरे माहिं,
संबर छोड़ाइ लई कामिनि की काम की।
पाखँड की श्रद्धा की मठेश बस एकादसी,
लीन्ही कै स्वपचराज साखा सुद्ध साम की।
केशव अदृष्ट साथ जीवजोति जैसी, तैसी,
लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की ॥५८॥

शब्दार्थ—धूमपुर = धूम समूह। धूमकेतु = अग्नि। धूमयोनि = बादल। सुधाधाम = चन्द्रमा। बगरूरे = बवण्डर। संबर = दैत्य विशेष। मठेश = मठधारी साधु। स्वपच राज = चाण्डाल राज। साम = सामवेद। अदृष्ट = दैव, भाग्य। जीव ज्योति = जीवन का चेतन रूप।

व्याख्या—रावण के वश में पड़ी हुई सीता की स्थिति कैसी है? इसे लेकर कवि ने अनेक प्रकार की कल्पनायें की है। वह कहता है कि रावण के वश में पड़ी हुई सीता को देखकर लगता है कि धूम्र राशि में अग्नि की शिखा है; या बादलों के बीच में चन्द्रमा की रेखा है; या विशाल बवण्डर के बीच में कोई सुन्दर चित्र है; या संबरासुर द्वारा हरण की जाती हुई काम की स्त्री रति है; या पाखंडी व्यक्ति के हृदय में स्थित श्रद्धा है; या मठाधीश (जो वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करता है) के वश में पड़ी हुई एकादशी है; या चाण्डाल राज द्वारा ग्रहण की गई शुद्ध सामवेद की शाखा है; या प्रारब्ध (संचित कर्म) के वश में पड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ ईश्वर का अंश (जीव) है। (तात्पर्य यह कि सीता विवश होकर अनुचित रूप से रावण क हाथ पड़ गई हैं और वह भी उनका वास्तविक रूप नहीं है। माया मय रूप है। राम की मन्त्रणा से उन्होंने 'छाया शरीर से ही' मृगा की अभिलाषा की थी)।

अलंकार—सन्देह।

सीता-विलाप

[हरिलीला छंद]

सीता—हा राम हा रमन हा रघुनाथ धीर।
लंकाधिनाथ वस जानहु मोहि वीर॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु वेगि मोहिं।
मार्तंडवंश-यज्ञ की सब लाज तोहिं॥५९॥

शब्दार्थ—मार्तंड वंश = सूर्य वंश।

व्याख्या—सरल है।

पक्षी जटायु यह बात सुन त धाइ।
रोक्यो तुरंत बल रावण दुष्ट जाइ॥
कीन्हौ प्रचंड रथ छत्र ध्वजा विहीन।
छोड़्यो विपक्षि तब भो जब पक्षहीन॥६०॥

शब्दार्थ—सुनत = सुनते ही। बल = बलपूर्वक। विपक्षी = शत्रु। पक्ष हीन = पंख हीन हो जाने पर।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[संयुता छंद]

दशकंठ सीतहि लै चल्यो। अति वृद्ध गीधहि यों दल्यो।
चित जानकी अधकों कियो। हरि तीनिद्वै अवलोकियो॥६१॥

शब्दार्थ—अधकों = नीचे को। हरि = बन्दर। तीन द्वै = (तीन + दो) पाँच।

व्याख्या—रावण सीता को लेकर लंका की ओर चला। मार्ग में उसने वृद्ध गृद्धराज को इस प्रकार (पंख काटकर) दलित कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीचे चित्त किये हुए (नीचे देखती हुई) सीता ने पाँच बन्दरों को देखा।

पद-पद्म की शुभ घूँघरी। मणिनील-हाटक सों जरी।
जुत उत्तरीय विचारि कै। शुभ डारि दीन गँठारि कै ॥६२॥

शब्दार्थ—घूंघरी = नूपुर। मणिनील = नीलम। हाटक = सोना। उत्तरीय = ओढ़ने का वस्त्र, दुपट्टा। गँठारि कै = गँठरी बनाकर।

व्याख्या—बन्दरों को देखकर सीता ने नीलम जटित सोने के नुपूरों को अपने पद-पद्म से उतार कर दुपट्टे में लपेट कर नीचे गिरा दिया।

[दो०] सीता के पद-पद्म कौ, नूपुर तट जनि जानु।
मनहुँ कर्‌यो सुग्रीव घर, राजश्री-प्रस्थानु ॥६३॥

शब्दार्थ—राज श्री = राज-लक्ष्मी।

व्याख्या—सीता के उत्तरीय और चरण कमलों के इन नूपरों को (जो कपड़े में लिपटे हुए हैं) नुपुर और कपड़ा ही न समझना चाहिए, उनके रूप में मानो राजलक्ष्मी ने सुग्रीव के घर प्रस्थान किया।

राम-विलाप

[सवैया]

निज देखौं नहीं शुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहौ अबहीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं ॥
कटु बात कछू तुमसौं कहि आई किधौं तेहि त्रास डेराइ रहीं।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ॥६४॥

शब्दार्थ—शुभ गीतहि = पवित्र कीर्तिवाली। मोहित = मेरे लिए। सुर-मारग = ध्वनि मार्ग से; शब्द का अनुकरण करती हुई।

व्याख्या—माया मृग को मारकर लौटने पर राम, सीता को न पाकर विलाप कर रहे हैं। वे लक्ष्मणजी से कहते हैं—हे लक्ष्मण ! मैं अपनी यशस्विनी सीता को नहीं देख रहा हूँ। क्या कारण है ? क्या ऐसा तो नहीं हुआ कि मेरे प्रति अतिशय प्रेम के कारण वह अपने को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न रोक सकी और माया मृग के शब्दों का अनुकरण करती हुई वन के भीतर चली गई जहाँ मैंने मृग का संहार किया है ? या तुम्हें उसने कुछ कटु वचन कहे थे जिनके कारण लज्जित होकर अब भय वश कहीं छिप गई है। यह पर्णकुटी ही तो कहीं दूसरी नहीं है ? तुम वही मेरे सहोदर लक्ष्मण हो या नहीं।

अलंकार—संदेह।

राम-जटायु-संवाद

[दोधक छंद]

धीरज सौं अपनो मन रोक्यो।
गीध जटायु पर्‌यो अवलोक्यो॥
छत्र ध्वजा रथ देखि कै बूझेउ।
गीध कहौ रण कौन सों जूझेउ ? ॥६५॥

शब्दार्थ—परयो अवलोक्यो=पड़ा हुआ देखा। बूझेउ=पूछा।

व्याख्या—सरल और स्पष्ट है।

जटायु—रावण लै गयो राघव सीता।
हा रघुनाथ रटै शुभ गीता॥
मैं बिन छत्र ध्वजा रथ कीन्हौ।
ह्वै गयो हौं बल-पक्ष-विहीनौ॥६६॥

शब्दार्थ—बल-पक्ष-बिहीनौ=बलविहीन और पक्ष (पंख) विहीन।

व्याख्या—स्पष्ट है।

राम—साधु जटायु सदा बड़भागी।
तो मन मो बपु सों अनुरागी॥
छूट्यो शरीर सुन यह बानी।
रामहि मैं तब ज्योति समानी॥६७॥

शब्दार्थ—बपु=शरीर, रूप।

व्याख्या—राम ने जटायु को साधुवाद देते हुए कहा—हे जटायु ! (तुमने हमारे लिए जो कुछ किया उसके लिए) मैं तुम्हें साधुवाद देता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हूँ। तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। जो तुम्हारा मन मुझमें अनुरक्त है। राम की बात सुनते ही जटायु के प्राण निकल गए और उसकी शुद्ध चेतन-ज्योति राम में ही लीन हो गई। (अर्थात् उसे सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई)।

[तोटक छंद]

दिशि दक्षिण को करि दाह चले।
सरिता गिरि देखत वृक्ष भले॥
वन अंध कबंध विलोकतहीं।
दोउ सोदर खच लिये तवहीं॥६८॥

शब्दार्थ—करि दाह = गृद्धराज का दाह-संस्कार करके। दोऊ सोदर = दोनों सगे भाइयों (राम लक्ष्मण) को।

व्याख्या—जटायु का दाह संस्कार करके भगवान राम दक्षिण दिशा की ओर चले। वे मार्ग में नदी, पर्वत और वृक्षों को भली प्रकार देखते हुए जा रहे थे। आगे बढ़ने पर घोर जंगल में कबन्ध राक्षस मिला। उसने दोनों भाइयों को हाथों से पकड़कर (उसकी भुजायें दो-दो कोस की थी) खींच लिया।

कबंध-बध

जब खैबेहि कौ जिय बुद्धि गुनी।
दुहुँ बाणनि लै दोउ बाहिं हनी॥
वहँ छाड़ि कै देह चल्यो जबहीं।
यह व्योम में बात कह्यो तवहीं॥६९॥

शब्दार्थ—बुद्धि गुनी = विचार किया। दुहुँ = दोनों भाइयों ने। दोऊ बाहिं = कबंध की दोनों विशाल भुजाएँ। चल्यो जबहीं = जब शरीर त्याग कर देवपुरी की ओर चला।

व्याख्या—स्पष्ट है।

पीछे मघवा मोहिं शाप दयी।
गंधर्व ते राक्षस देह भयी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिरि कै मघवा सह युद्ध भयो।
उन क्रोध कै शीश में वज्र ह्यो ॥७०॥

शब्दार्थ—पीछे = प्राचीन काल में, पहले। मघवा = इन्द्र। ह्यो = हन्यो, मारा।

व्याख्या—स्पष्ट है।

[दो०] गयो शीश गड़ि पेट मैं, पर्‌यौ धरणि पर आय।
कछु करुणा जिय मों भई, दीन्हीं बाहुँ बढ़ाय ॥७१॥

शब्दार्थ—गयो शीश गड़ि पेट मैं = इन्द्र के वज्र के प्रहार से मेरा सिर पेट में घुस गया।

व्याख्या—सरल है।

बाहु दयी द्वै कोस की, "आवै तेहि गहि खाउ।
राम रूप सीता-हरण, उधरहु गहन उपाउ" ॥७२॥

शब्दार्थ—राम रूप = भगवान के रामरूप में अवतार लेने पर। गहन उपाय = राम को पकड़ने से।

व्याख्या—इन्द्र ने दया पूर्वक मेरी भुजायें दो-दो कोस की कर दीं और यह कहा कि जो कोई तुम्हारे समीप आवे उसे पकड़कर खा लेना। भगवान के रामावतार लेने पर जब सीताहरण होगा (और सीता को ढूँढ़ते हुए भगवान तुम्हारे समीप आवेंगे) तो राम को पकड़ने से तुम्हारा उद्धार होगा।

सुरसरि ते आगे चले, मिलिहैं कपि सुग्रीव।
देहैं सीता की खबरि, बाढ़ै सुख अति जीव ॥७३॥

शब्दार्थ—सुरसरि = गोदावरी। बाढ़ै सुख अति जीव = हृदय में अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

व्याख्या—सरल है।

विरहजन्य प्रलाप

[तोटक छन्द]

सरिता एक केशव सोभ रई।
अवलोक तहाँ चकवा चकई ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उर में सिय प्रीति समाइ रही।
तिन सों रघुनायक बात कही। ७४॥

शब्दार्थ—सोभरई = शोभा युक्त।

व्याख्या—स्पष्ट है।

अवलोकत हौं जबहीं तबहीं।
दुख होत तुम्हैं तबहीं तबहीं॥
वह बैर न चित्त कछू धरिए।
सिय देहु बताइ कृपा करिए॥७५॥

शब्दार्थ—हौं = ये।

व्याख्या—भगवान राम चकवा-चकवी से सीताजी का पता पूछते हुए कहते हैं—जब-जब तुम लोग सीताजी को (हमारे साथ) देखते थे तब-तब तुम्हें दुःख होता था। (दुःख का कारण यह था कि सीताजी के कुचों के सौंदर्य के सम्मुख तुम अपने को हीन समझ कर लज्जित होते थे या हम लोगों को सदैव एक साथ देखकर और रात्रि में अपना वियुक्त होना निश्चित जानकर तुम्हें ईर्ष्या होती थी) अब उस पुराने बैर को भूलकर सीता का पता बता दो।

शशि के अवलोकन दूरि किये।
जिनके मुख की छबि देखि जिये॥
कृत चित्त चकोर कछूक धरौ।
सिय देहु बताय सहाय करौ॥७६॥

शब्दार्थ—कृत = कृतज्ञता।

व्याख्या—हे चक्रवाक युग्म! जिसके चन्द्रमुख को देखकर (तात्पर्य सीता से है) तुम चन्द्रमा को देखना भूल जाते थे (अर्थात् जिसका मुख सौंदर्य तुम्हारे जीवन का आधार था) उसी सीता का पता पूछ रहा हूँ। उस कृतज्ञता को स्मरण करके सीता का पता बता दो और इस प्रकार मेरी सहायता करो।

अलंकार—अन्योन्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सवैया]

कहि केशव याचक के अरि चंपक शोक अशोक लिये हरि कै।
लखि केतक केतकि जाति गुलाव ते तीक्षण जानि तजे डरिकै॥
सुनि साधु तुम्हैं हम बूझन आये रहे मन मौन कहा धरिकै।
सिय को कछु सोध कहौ करुणामय सो करुणा करुणा करिकै॥७७॥

शब्दार्थ—याचक के अरि = याचना करनेवालों का शत्रु। केतक = केवड़ा। केतकि = केतकी। जाति = जायफल। तीक्षण = तीक्ष्ण, काँटेदार। करुणा = एक पुष्प-वृक्ष।

व्याख्या—भगवान राम करुना नामक पुष्प-वृक्ष से सीताजी का पता पूछते हैं—हे दयालु करुणा! मुझपर द्रवीभूत होकर सीता का कुछ पता बता दो। मैंने तुम्हारी साधुता की प्रशंसा सुनी है और तुम्हें सज्जन (पर दुःख कातर) जानकर ही पूछने आया हूँ। तुमने चुप्पी क्यों साध ली है? मैंने अन्य पुष्प-वृक्षों को सकारण छोड़ दिया है। चंपक तो याचकों का शत्रु है (भौंरे मकरन्द की याचना करने जाते हैं और अपना-सा मुँह लेकर लौट आते हैं) उससे क्या पूछता? अशोक, स्वयं शोक रहित है। भला वह मेरे शोक को क्या समझेगा! अतः उससे भी कुछ पूछना व्यर्थ है। केवड़ा, केतकी, जायफल और गुलाब इन सभी में तीक्ष्ण काँटे होते हैं अतः उनके समीप तो मारे भय के मैं गया ही नहीं। जो तीक्ष्ण है उससे सहानुभूति की आशा कैसे करता? (तुम्हें सर्वथा उपयुक्त और दयालु जानकर आया हूँ। तुम्हारा नाम ही करुणा है। अतः तुम अवश्य करुणा पूर्वक कुछ सूचना दोगे)।

अलंकार—निरुक्ति (इसमें शब्दों या वाक्यों की व्युत्पत्ति बोधक व्याख्या होती है। शब्दों की साभिप्राय व्याख्या (व्युत्पत्ति मूलक) है कथन की उपयुक्तता सिद्ध की जाती है)।

[नाराच छंद]

हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सो वहै।
दिशा लगे कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै॥
विशेषि कालराति सो कराल राति मानिए।
वियोग सीय को न काल लोकहार जानिए॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—हिमांक = चन्द्रमा। सूर = सूर्य। बात = वायु। जगैं + जलती हैं। विलेप = विशेष प्रकार के लेप। काल राति = प्रलय या मृत्यु की रात्रि। लोक-धर = लोक-संहारक।

व्याख्या—भगवान राम लक्ष्मण से अपनी विरह जनित स्थिति बताते हुए कहते हैं—हे लक्ष्मण! सीता के वियोग में हमें चन्द्रमा, सूर्य के समान तप्त करता है। वायु, वज्र-सदृश प्रतीत होती है। चारों दिशायें अग्नि के समान प्रज्ज्वलित प्रतीत होती हैं। शरीर पर किये जानेवाले विशेष लेप अंग-प्रत्यंगो को दग्ध करते हैं। रात्रि, काल रात्रि के समान भयंकर प्रतीत होती है। यह सीता का वियोग नहीं है, इसे संसार को नष्ट करनेवाला काल ही समझो।

अलंकार—शुद्धापन्हुति।

राम-शबरी-मिलन

[पद्धटिका छंद]

यहि भाँति विलोके सकल ठौर।
गये शवरी पै दोउ देव-मौर॥
लियो पादोदक तेहि पद पखारि।
पुनि अर्घ्यादिक दीन्हें सुधारि॥७९॥

शब्दार्थ—देव मौर = देव शिरोमणि। पादोदक = चरणामृत। अर्घ्यादिक = जल, पुष्प, फल आदि से अर्घ्य देना।

व्याख्या—इस प्रकार सभी स्थानों पर सीता को ढूंढ़ते हुए दोनों देव श्रेष्ठ (राम-लक्ष्मण) शबरी के आश्रम में पहुँचे। उसने पद प्रक्षालन करके चरणोदक लिया और फल-फूल-जल आदि के उनका आतिथ्य किया।

हर देत मंत्र जिनको विशाल।
शुभ काशी मैं पुनि मरन काल॥
ते आये मेरे धाम आज।
सब सफल करन जप तप समाज॥८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—जिनको=जिनके नाम का। हर देत मंत्र=भगवान शंकर जिसके नाम का मंत्र देते हैं।

व्याख्या—सरल है।

फल भोजन को तेहि धरे आनि।
भये यज्ञपुरुष अति प्रीति मानि॥
तिन रामचंद्र लक्ष्मण स्वरूप।
तब धरे चित्त जग जोति-रूप॥८१॥

शब्दार्थ—यज्ञ पुरुष=नारायण रूप।

व्याख्या—तब शबरी ने राम-लक्ष्मण के सम्मुख भोजन के लिए फल लाकर रख दिया। यज्ञपुरुष (नारायण रूप) राम ने प्रीति पूर्वक उन्हें ग्रहण किया। शबरी ने राम-लक्ष्मण के स्वरूप को संसार में प्रकाशित ब्रह्म-ज्योति मानकर हृदय में धारण किया।

[दो०] शबरी पावक पंथ तब, हरखि गई हरिलोक।
वनन विलोकत हरि गये, पंपा तीर सशोक॥८२॥

शब्दार्थ—पावक पंथ=योगाग्नि के मार्ग से।

व्याख्या—शबरी ने योगाग्नि से अपना शरीर जलाकर बैकुण्ठ में प्रवेश किया और भगवान राम जंगलों को ढूंढ़ते हुए शोकमग्न हृदय से पंपासर के तट पर आए।

पंपासर-वर्णन

[तोटक छंद]

अति सुन्दर सीतल सोभ बसै।
जहँ रूप अनेकनि लोभ लसै॥
बहु पंकज पंछि विराजत हैं।
रघुनाथ विलोकत लाजत हैं॥८३॥

शब्दार्थ—सोभ=शोभा। लोभ लसै=लोभ निवास करता है।

व्याख्या—पंपासर अत्यन्त सुन्दर और शोभा-युक्त है। उसके प्रभाव से चारों ओर शीतलता व्याप्त है। पंपासर की रमणीयता अनेक प्रकार के प्रलोभन उत्पन्न करती है। सरोवर में अनेक कमल हैं और वहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रकार के पक्षी भी हैं। किन्तु वे सभी भगवान राम को देखकर लज्जित होते हैं।

अलंकार—ललितोपमा।

सिगरी ऋतु शोभित सुभ्र जहीं।
लहै ग्रीषम पै न प्रवेश सही॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसैं।
सिय के सुभ लोचन से दरसैं॥८४॥

व्याख्या—उस पम्पासर के समीप सभी ऋतुयें शोभित होती हैं। (सभी ऋतुओं में उसकी शोभा बनी रहती है) केवल ग्रीष्म का प्रवेश नहीं हो पाता। सरोवर में नवीन कमल खिले रहते हैं। वे सीता के सुंदर नेत्रों के समान प्रतीत होते हैं।

अलंकार—उपमा।

[विजय छंद]

सुंदर सेत सरोरुह मैं करहाटक हाटक की द्युति को है?
तापर भौंर भले मन रोचन लोक-विलोचन की रुचि रोहैं।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥८५॥

शब्दार्थ—करहाटक = कमल पुष्प के मध्य की छतरी। हाटक = सोना। मन रोचन = मन को रुचनेवाला। रोहैं = आसीन हो जाते हैं। जल देविन = जल देवियाँ। केशवराय = विष्णु। कमलासन = ब्रह्मा।

व्याख्या—सुन्दर श्वेत कमल पुष्प के मध्य स्वर्णवर्ण की छतरी है। उसके सौन्दर्य के सामने स्वर्ण-द्युति कुछ नहीं है। उस छतरी पर मन-मोहक भला भौंरा बैठा है जो दर्शकों की रुचि पर आरूढ़ हो जाता है। (अर्थात् वह दर्शकों को रुचिकर प्रतीत होता है।) यह दृश्य देखकर जल-देवियों ने बड़े बड़े देवताओं को मुग्ध करनेवाली उपमा दी। उन्होंने यह कह कि मानो ब्रह्मा के शिर पर विष्णु शोभित हो रहे हैं। ब्रह्मा कमलासन है। अतः यहाँ कमल पुष्प के मध्य स्थित स्वर्ण वर्ण की छतरी को ब्रह्मा के रूप में और श्याम वर्ण भौंरे को विष्णु के रूप में कल्पित किया गया है)।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्मण— [सवैया]

मिलि चक्रिन चंदन वात वहै अति मोहत न्यायन ही मति को।
मृगमित्र विलोकत चित्त जरै लिये चंद निशाचर पद्धति को॥
प्रतिकूल सुकादिक होहिं सबै जिय जानैं लहीं इनकी गति को।
दुख देत तड़ाग तुम्हैं न बने कमलाकर ह्वै कमलापति को॥८६॥

शब्दार्थ—चक्रिन = सर्प। चन्दन वात = मलय वायु। न्यायन = न्यायतः। मृगमित्र = चन्द्रमा। निशाचर-पद्धति = राक्षसों की रीति। कमलाकर = कमल को उत्पन्न करनेवाला; कमलों का आकर (पम्पासर) कमलापति = विष्णु, राम।

व्याख्या—लक्ष्मणजी पम्पासर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे पम्पासर! मलय पर्वत से आनेवाली वायु सर्पों को स्पर्श करती हुई आती है अतः यदि वह राम का मन मुग्ध करती है तो उचित ही है (विष का गुण ही है विमोहित करना, वायु विषैले सर्पों को स्पर्श करती हुई आती है अतः उसमें विष का गुण होना स्वाभाविक है)। चन्द्रमा को देखकर इनका (राम का) जी जलता है तो वह ठीक ही है क्योंकि चन्द्रमा निशाचरी वृत्तिवाला है (रात्रि में गमन करता है)। शुक-पिक आदि पक्षी जो इन्हें प्रतिकूल लगते हैं वह भी ठीक ही हैं क्योंकि वे जड़-जीव हैं। इनकी विरह-व्याकुलता वे नहीं समझ पाते। किन्तु तुम इन्हें क्यों दुःख देते हो? तनिक सोचो तो, तुम कमलाकर हो (कमलों की खानि; संकेत से लक्ष्मी को उत्पन्न करनेवाले) और ये कमला पति हैं। (अर्थात् तुम्हारा इनका सम्बन्ध श्वसुर दामाद का है। तुम्हें यह शोभा नहीं देता कि अपने जामाता को ही सन्तप्त करो)।

अलंकार—वक्रोक्ति।

(इति अरण्य कांड)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किष्किन्धा काण्ड

[दोहा] ऋष्यमूक पर्वत गये केशव श्री रघुनाथ।
देखे वानर पंच विभु मेनो दक्षिण हाथ ॥१॥

शब्दार्थ—वानरपंच = पाँच बन्दर (सुग्रीव, हनुमान, नल, नील, सुखेन)। विभु = तेजस्वी, शक्तिशाली। दक्षिण हाथ = दक्षिण दिशा के रक्षक; अथवा राम ने उन बन्दरों को अपना दाहिना हाथ समझा।

व्याख्या—सरल है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

[कुसुम विचित्रा छंद]

तव कपि राजा रघुपति देखे। मन नर नारायण सम लेखे ॥
द्विज वपु धरि तहँ हनुमत आये। बहु विधि आशिष दै मन भाये ॥२॥

शब्दार्थ—कपि = सुग्रीव। वपु = शरीर। द्विज वपु = ब्राह्मण का शरीर।

व्याख्या—तब सुग्रीव ने महाराज रामचन्द्र को देखा। उन्होंने उन्हें नर-नारायण के समान अनुभव किया। (लक्ष्मण के साथ राम को देखकर सुग्रीव ने समझा कि नर के साथ नारायण प्रकट हो गए हैं।) श्री हनुमान जी ब्राह्मण का शरीर धारण करके राम के समीप आए और उन्हें अनेक प्रकार के मनोनुकूल आशीर्वाद दिये।

राम-हनुमान-संवाद

हनुमान—सब विधि रूरे वन महँ को हौ।
तन मन सूरे मनमथ मोहौ ॥
सिरसि जटा वाकल वपु धारी।
हरि हर मानौ विपिन बिहारी ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम वियोगी सम रस भीने।
तन मन एकै युग तन कीने॥
तुम को हौ का लगि बन आये।
केहि कुल हौ कौनहि पुनि जाये॥४॥

शब्दार्थ—रूरे = शोभित। मनमथ = कामदेव। वाकल = वल्कल। वृक्ष की छाल। रस भीने = विरह-रस से सिक्त, विरह = विह्वल। युग तन = दो शरीर। जाये = उत्पन्न।

व्याख्या—सरल है।

[चंचरी छंद]

राम—पुत्र श्री-दशरत्थ के बन राज सासन आइयो।
सीय सुन्दरि संग ही विछुरी सो सोधु न पाइयो॥
राम लक्ष्मण नाम संयुत सूरवंश बखानिये।
रावरे वन कौन हौ केहि काज क्यों पहिचानिये॥५॥

शब्दार्थ—सासन (शासन) = आज्ञा। संग ही = साथ में थी। सोधु = (शोध), खोज। संयुत = सम्मिलित। सूर वंश = सूर्यवंश। क्यों पहिचानिये = किस प्रकार पहिचाने।

व्याख्या—सरल है।

[दोहा] हनुमान—या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता संग मंत्री चारि।
वानर लयी लड़ाय तिय, दीन्हों बालि निकारि॥६॥

शब्दार्थ—वानर = बन्दर। (यहाँ बालि से तात्पर्य है।) लयी छड़ाइ = छीन लिया है। तिय = स्त्री (सुग्रीव की स्त्री)। दीन्हों बालि निकारि = बालि ने निकाल दिया है।

व्याख्या—सरल है।

[दोधक छंद]

वा कहँ जौ अपनो करि जानौ। मारहु बालि बिनै यह मानौ॥
राज देउ दै बाकि तिया कौ। तो हम देहिं बताय सिया कौ॥७॥

शब्दार्थ—वा कहँ = उस सुग्रीव को। वाकि = उसकी। तिया =

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री। बताय = बताना, खबर देना। तो हम देहि बताय सिया को = तो हम सीता का पता बता दें।

व्याख्या—सरल है।

राम-सुग्रीव-मिताई

[दोहा] उठे राज सुग्रीव तब, तन मन अति सुख पाइ।
सीता जू के पट सहित, नूपुर दीन्हें आइ ॥८॥

शब्दार्थ—अति सुख पाइ = अत्यन्त प्रसन्न होकर।

व्याख्या—सरल है।

[दंडक छंद]

राम—पंजर कै खुंजरीट नैनन को केसोदास,
कैधों मीन मानस का जालु है कि जाख है।
अंग को कि अंगराग गेडुआ कि गलसुई,
किधौं कोट जीव ही को उर को कि हारु है।
बंधन हमारो काम केलि को कि ताड़िवे को,
ताजनौ विचार कौ कि चमर विचारू है।
मान की जमनिका की, कंज मुख मूँदिवे कौ,
सीता जू कौ उत्तरीय सब सुखसारू है ॥९॥

शब्दार्थ—पंजर = पिंजड़ा। खंजरीट = खंजन पक्षी। मीन-मानस = मन रूपी मीन। जारू = जाल। गेडुआ = तकिया (बुन्देलखण्डी शब्द है।) गल सुई = गाल के नीचे लगाई जाने वाली गोल मुलायम तकिया। कोट = दुर्ग। कोट जीव ही कौ = प्राणों की रक्षा के लिए दुर्ग। ताजनो (ताजियाना, फा०) कोड़ा। व्यंजन = पंखा। विचारू = भावना। जमनिका = (यमनिका) पर्दा। उत्तरीय = ऊपर धारण किया जाने वाला वस्त्र, ओढ़नी।

व्याख्या—श्री रामचन्द्र जी सीता जी के उत्तरीय (ओढ़नी) को देखकर अनेक प्रकार की कल्पनायें करते हैं। कभी वे सोचते हैं कि यह उत्तरीय मेरे नेत्र रूपी खंजन पक्षी को आबद्ध करने के लिए पिंजड़ा के समान है और कभी उन्हें यह प्रतीत होता है कि उनके मन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपी मीन के लिए वह प्राणाधार जल है या कि उसे फँसाने के लिए जाल है। कभी उन्हें लगता है कि वह उनके अंग को आनन्द प्रदान करने वाला अंगराग (शीतल लेप) है या कि उनके लिए तकिया है या कि लगाने के लिए अत्यन्त कोमल गलसुई (छोटी तकिया) है, या कि उनके प्राणों की रक्षा करने वाला कोट (दुर्ग) है, या कि उनके हृदय का प्रिय हार है। इसी प्रकार कभी उन्हें लगता है कि वह काम-केलि के समय उनके हाथों का बन्धन है या कि उनकी काम-भावना को उत्तेजित करने के लिए कोड़ा है (कोड़ा मारकर किसी को प्रेरित या उत्तेजित किया जाता है। इसी से कोड़े की कल्पना कवि ने की है) या कि प्रेमाग्नि को धधकाने के लिए पंखा है या कि रति-क्रीड़ा के समय कमल मुख पर आवरण डालने के लिए यमनिका (पर्दा) है। (रति-काल में क्रीड़ा-वश या मान के अवसर पर प्रिय से उदासीनता प्रकट करने के लिए कमल मुख को ढँकने की आवश्यकता पड़ती है।) इस तरह अनेक प्रकार की उद्भावनायें करते हुए अन्त में उन्हें लगता है कि सीता जी का वह उत्तरीय सभी प्रकार के सुखों का मूलाधार है।)

नोट—केशवदास का उपर्युक्त छन्द हनुमन्नाटक के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर रचित प्रतीत होता है—

धूते पणः प्रणय केलिषु कंठपाशः।
क्रीड़ा परिश्रम हरं व्यजनं रतान्ते॥
शय्या निशीथ समये जनकात्मजायाः।
प्राप्तं मया विधि वशादिह चोत्तरीयम्॥

[स्वागता छंद]

बानरेन्द्र तब यौं हँसि बोल्यो। भीति भेद जिय कौ सब खोल्यो।
आग बारि परतच्छ करी जू। रामचन्द्र हँसि बाँह धरीजू॥१०॥

शब्दार्थ—बानरेन्द्र = सुग्रीव। भीति-भेद = भय का रहस्य (बालि से भय का कारण) बाँह धरीजू = बाँह पकड़ लिया। रक्षा करने का आश्वासन दिया।

व्याख्या—सरल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूर-पुत्र तब जीवन जान्यो। बालि जोर बहु भाँति बखान्यो॥
नारि छीनि जेहि भाँति लई जू। सो अशेष विनतौ बिनई जू॥११॥

शब्दार्थ—सूर-पुत्र = सुग्रीव। जोर = बल। अशेष = पूर्ण, पूरा-पूरा। बिनई = विनय किया।

व्याख्या—सरल है।

एक बार शर एक हतौ जो। ताल बेधि बलवंत गनौं तो॥
रामचन्द्र हँसि बाण चलायो। ताल वेधि फिरि कै कर आयो॥१२॥

शब्दार्थ—ताल = ताड़ वृक्ष। ताल बेधि = सातो ताड़ वृक्षों को भेदकर।

व्याख्या—सरल है।

[तारक छंद]

सुग्रीव—यह अद्‌भुत कर्म न और पै होई।
सुर सिद्ध प्रसिद्धन मैं तुम कोई॥
निकरी मन तौं सिगरी दुचिताई।
तुम सौं प्रभु पाय सदा सुखदाई॥१३॥

शब्दार्थ—दुचिताई = दुविधा, आशंका = (बालि-बध के सम्बन्ध में जो सन्देह था वह दूर हो गया)।

व्याख्या—सरल है।

[विजय छंद]

बावन कौ पद लोकन मापि ज्यो बावन के वपु माहि सिधायो।
केशव सूर सुता जल सिंधुहिं पूरि कै सूरहि कौ पद पायो॥
काम के बाण त्वचा सब बेधि कै काम पै आवत ज्यों जग गायो।
राम कौ सायक सातहु तालनि बेधिकै रामहिं के कर आयो॥१४॥

शब्दार्थ—सूर सुता = यमुना। सूरहि को पद पायो = फिर सूर्य में ही जाकर समा जाता है। त्वचा सब बेधि कै = शरीर को उत्तेजित करके।

व्याख्या—सरल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[सो०] जिनके नाम विलास अखिल लोक वेधत पतित।
तिनको केशवदास, सात ताल वेधन कहा ॥१५॥

शब्दार्थ—नाम-विलास = नाम का स्मरण।

व्याख्या—सरल है।

बालि-बध

[पद्धटिका छंद]

रवि-पुत्र बालि सौं होत युद्ध।
रघुनाथ भये मन माहं क्रुद्ध॥
शर एक हन्यौ उर मित्र काम।
तब भूमि गिर्‌यो कहि "राम राम" ॥१६॥
कुछ चेत भये तेहि बल निधान।
रघुनाथ विलोके हाथ बान॥
शुभ चीर जटा सिर श्याम गात।
बनमाल हिये उर विप्र लात ॥१७॥

शब्दार्थ—रविपुत्र = सुग्रीव। मित्र काम = मित्र के हित को ध्यान में रखकर। वनमाल = जंगली फूलों की लम्बी माला। विप्रलात = भृगु के चरण-प्रहार से अंकित चिह्न।

व्याख्या—सरल है।

बालि—तुम आदि मध्य अवसान एक।
जग मोहत हो वपु धरि अनेक॥
तुम सदा शुद्ध सबको समान।
केहि हेतु हत्यौ कुरनागिधान॥१८॥

शब्दार्थ—आदि = आरम्भ। मध्य = बीच का। अवसान = अन्त। तुम एक = तुम सभी स्थितियों में अपरिवर्तित और एक रस रहने वाले हो। वपु = शरीर। शुद्ध = निर्विकार।

व्याख्या—सरल है।

Ganesh Varhi Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम—सुनि वासव-सुत बुधि-बल-निधान।
मैं शरणागत हित हते प्रान॥
यह साँटो लै कृष्णावतार।
तब हवै हौ तुम संसार पार॥१९॥

शब्दार्थ—वासव = इन्द्र। वासव-सुत = बालि। साँटो = बदला।

नोट—कृष्णावतार में बालि ने ही जरा नामक व्याध के रूप में अवतार लेकर कृष्ण के तलवे में बाण मारा था।

व्याख्या—सरल है।

रघुबीर रंक ते राव कीन। युवराज विरद अंगदहि दीन।
तब किष्किधा तारा समेत। सुग्रीव गये अपने निकेत॥२०॥

शब्दार्थ—युवराज विरद = युवराज का पद। तारा = बालि की पत्नी। बालि = वध के बाद सुग्रीव ने तारा को अपनी पत्नी बनाकर रख लिया था। निकेतन = घर।

व्याख्या—सरल है।

[दो०] किया नृपति सुग्रीव हति बालि बली रणधीर।
गये प्रवर्षण अद्रि को लक्ष्मण श्री रघुबीर॥२१॥

शब्दार्थ—प्रवर्षण = जन स्थान के मध्य में स्थित एक पर्वत (वाल्मीकि रामायण में इसका नाम "पस्रवण गिरि" दिया गया है।) अद्रि = पर्वत।

व्याख्या—सरल है।

प्रवर्षण गिरि वर्णन

[त्रिभंगी छंद]

देख्यो सुभ गिरिवर, सकल सोभधर।
फूल बरन बहु फलनि फरे॥
संग सरभ वृक्ष जन केसरि के गण।
मनहुँ धरणि सुग्रीव धरे॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संग सिवा विराजे गज मुख गाजै।
परभूत बोले चित्त हरे॥
सिर सुभ चंद्रक धर परम दिगंबर।
मानौ हर अहिराज धरे॥२२॥

शब्दार्थ—सोभधर = शोभायुक्त। बरन = वर्ण, रंग। सरभ = (१) पशु, (२) बानरों की एक जाति। ऋक्ष = (१) रीछ, (२) जामवंत। केसरि = (१) सिंह, (२) वानरों की जाति-विशेष (हनुमान जी के पिता इसी जाति के थे)। सिवा = शृङ्गाली, (२) पार्वती। गजमुख = (१) गणेश, (२) मुख्य-मुख्य जाति के हाथी। परभृत = (१) कोयल, (२) नन्दी भृंगी आदि सेवक। चन्द्रक = (१) जल, (२) चन्द्रमा। दिगम्बर = (१) विस्तृत, (२) वस्त्र-रहित। हर = भगवान शंकर। अहिराज = (१) सर्पों के राजा, (२) बड़े-बड़े साँप।

व्याख्या—भगवान् राम ने देखा पवित्र प्रवर्षण पर्वत सभी प्रकार की शोभा से युक्त था। वहाँ अनेक रंगों के फूल फूले थे और तरह-तरह के फल फले हुए थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अनेक प्रकार के वन-पशुओं, रीछों और सिंह-समूहों से युक्त वह पर्वत शरभ जाति के बानरों, हामवंत तथा केशरी नामक बानर के साथ शोभित वानर-राज सुग्रीव जी है जो श्री राम के चरणों में सदैव नत रहता है। इसके बाद के दो चरणों में कवि ने श्लेष द्वारा पर्वत और शिव में एकरूपता दिखाई है। वह कल्पना करता है कि प्रवर्षण पर्वत शिव रूप है। जिस प्रकार शिव के साथ शिवा (पार्वती) शोभित रहती हैं उसी प्रकार पर्वत के साथ शिवा (शृङ्गाली) है। जिस प्रकार शिव के साथ गणेश गाजते रहते हैं उसी प्रकार पर्वत पर बड़े-बड़े हाथी चिंघाड़ते रहते हैं। जिस प्रकार शिव के साथ नन्दी, भृंगी आदि परभृत (सेवक) सेवा में लीन रहते हैं उसी प्रकार पर्वत पर परभृत (दूसरों द्वारा पोषित, अर्थात् कोयल) कूकती रहती है। जिस प्रकार शिव जी अपने मस्तक पर चन्द्रमा धारण किये हुए हैं उसी प्रकार वह पर्वत भी अपने मस्तक पर जलाशय धारण किये हुए है। जिस प्रकार शिव जी परम दिगम्बर हैं उसी प्रकार वह पर्वत भी परम दिगम्बर अर्थात् अति विस्तृत है और जिस प्रकार शिव जी अहिराज (शेष, वासुकि) को गले में लपेटे रहते हैं उसी प्रकार पर्वत पर भी बड़े-बड़े सर्प विचरण करते रहते हैं। अतः इन अनेक प्रकार की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समताओं के कारण प्रवर्षण पर्वत साक्षात् शिव रूप प्रतीत हो रहा है।

अलंकार—श्लेष, उत्प्रेक्षा, उल्लेख।

[तोमर छंद]

सिसु सो लगै संग धाइ, वनमाल ज्यो सुरराइ।
अहिराज सों यहिकाल, बहु सीस सोभनि माल ॥२३॥

शब्दार्थ—धाइ = (१) दूध पिलाने वाली दासी, (२) धवई नामक वृक्ष। वनमाल = (१) विष्णु की जंगली फूलों की माला, (२) वन-समूह। बहुसीस = (१) अनेक सिर, (२) अनेक शृंग या शिखर।

व्याख्या—प्रवर्षण गिरि को देखकर कवि केशव के मन में अन्य अनेक उद्भावनायें होती हैं। वे सोचते हैं कि यह पर्वत शिशु के समान है क्योंकि जैसे शिशु के साथ उसकी धाई (दूध पिलाने वाली दासी) रहती है वैसे ही इस पर्वत पर धवई नामक वृक्ष है। वे पुन कल्पना करते हैं कि यह पर्वत विष्णु के समान है क्योंकि जैसे विष्णु वन माला धारण करके शोभित होते हैं वैसे ही यह पर्वत वन-समूह से शोभित हैं। वे फिर सोचते हैं कि यह पर्वत शेष नाग के समान है क्योंकि जैसे शेष नाग के अनेक मणि युक्त शिर हैं वैसे ही इस पर्वत के भी अनेक सुशोभित शृङ्ग हैं।

अलंकार—उपमा, श्लेष, उल्लेख।

वर्षा-काल वर्णन

[स्वागता छंद]

राम—चंद मंद दुति वासर देखौ।
भूमिहीन भुवपाल विशेषौ ॥
मित्र देखिये सोभत है यौं।
राज-साज बिनु सीतहिं हौं ज्यौं ॥२४॥

शब्दार्थ—दुति = द्युति, कान्ति। वासर = दिन। मित्र = सूर्य।

व्याख्या—राम वर्षा-काल के परिवर्तन को लक्षित करते हुए कहते हैं—रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति मंद हो गई है। दिन भी ठीक से प्रकाशित नहीं है। ये दोनों ही राज्य-हीन राजा की तरह तेज-रहित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र हैं। सूर्य भी मन्द-द्युति हो गया है, ठीक वैसे ही जैसे राज्य और सीता से रहित होकर मैं तेजहीन हो गया हूँ।

अलंकार—दृष्टान्त, उपमा।

[दो०] पतिनी पति बिनु अति, पति पतिनी-बिनु मंद।
चंद बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिनु जामिनी चंद ॥२५॥

शब्दार्थ—मन्द = शोभा रहित। जामिनी = यामिनि, रात्रि।

व्याख्या—सरल है।

अलंकार—अन्योन्य।

वर्षा-वर्णन

[स्वागता छंद]

देखि राम बरषा ऋतु आई।
रोम-रोम बहुधा दुख दाई॥
आस पास तम की छवि छाई।
राति दिवस कछु जानि न जाई॥२६॥
मंद-मंद धुनि सों घन गाजैं।
तूर तार जनु आवझ बाजैं॥
ठौर-ठौर चपला चमकैं यों।
इन्द्र लोक तिय नाचति हैं ज्यों॥२७॥

शब्दार्थ—आस-पास = चारों ओर। तम की छवि छाई = बादलों के घिरने से उत्पन्न अन्धकार व्याप्त हो गया। राति दिवस कछु जानि न जाई = रात और दिन का अन्तर मिट गया। तूर = तुरही। तार = मंजीरा। आवझ = ताशा। इन्द्र लोक तिय = इन्द्र लोक की अप्सरायें।

व्याख्या—सरल है।

अलंकार—तद्गुण, उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तूपमा।

[मोटनक छंद]

सोहैं घन स्यामल घोर घनै।
मोहैं तिनमैं वक पाँति मनैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संखावलि पी वहुधा जल स्यों।
मानौ तिनकौ उगिलै बलस्यों ॥२८॥
शोभा अति शक्र शरासन मैं।
नाना दुति दीसति है घन मैं॥
रत्नावलि सी दिविद्वार मनौ।
वर्षा गम वाँधिय देव मनौ ॥२९॥

शब्दार्थ—स्यों = सहित। बक = बगुला। शक्र = इन्द्र। शरासन = धनुष। रत्नावली = रत्नों की झालर। दिविद्वार = देवलोक के द्वार पर।

व्याख्या—वर्षा ऋतु में घने काले बादल शोभित हो रहे हैं। बादलों में उड़ते हुए बगुलों की पंक्ति मन को मुग्ध कर रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि बादलों ने समुद्र से जल ग्रहण करते समय बहुत से शंख पी लिए थे और अब वे उन्हें उगल रहे हैं। आकाश में इन्द्रधनुष अत्यधिक शोभित हो रहा है। बादलों में अनेक प्रकार रंगीन आभा दिखाई पड़ रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि देवताओं ने वर्षा के आगमन के अवसर पर उसके स्वागत में देवपुरी के द्वार पर रत्नों की झालर (बंदनवार) सजा दी है।

[तारक छंद]

घन घोर घने दसहू दिस छाये।
मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥
अपराध बिना छिति के तन ताये।
तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये ॥३०॥

शब्दार्थ—मघवा = इन्द्र। तन ताये = शरीर को तप्त किया था।

व्याख्या—वर्षा काल में दशों दिशाओं में घने बादल छाये हुए हैं। ऐसा लगता है कि इन्द्र ने सूर्य पर चढ़ाई कर दी है। चढ़ाई के कारण की कल्पना करते हुए कवि कहता है कि सूर्य ने बिना किसी अपराध के पृथ्वी के शरीर को तपाया था, उसी की पीड़ा से पीड़ित होकर इंद्र ने (बदला लेने के लिए) सूर्य पर चढ़ाई कर दी है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अति गाजत बाजत दुन्दुभि मानौ।
निरघात सबै पविपात बखानौ॥
धनु है यह गौरमदाइनि नाहीं।
सरजाल बहै जलधार वृथाही॥३१॥

शब्दार्थ—निरघात = (निर्घात) बिजली की कड़क। पविपात = वज्रपात। गौरमदाइनि = इन्द्रधनुष (बुन्देलखण्डी प्रयोग) वहै = बरती है।

व्याख्या—कवि ने वर्षा-वर्णन के क्रम में यह कल्पना की है कि इन्द्र ने सूर्य पर आक्रमण किया है। अब युद्ध की संगति बैठाने के लिए वह कहता है कि वर्षा काल में जो बादल गर्ज रहे हैं वही मानो युद्ध के बाजे (दुन्दुभी) बज रहे हैं, जो बिजली कड़क रही है वही मानो इन्द्र के द्वारा वज्रपात किया जा रहा है। आकाश में जो इन्द्रधनुष दिखाई पड़ रहा है वही मानो युद्ध-रत इन्द्र का धनुष है और जो जल की बूंदें गिर रही हैं वही बाण-वर्षा हो रही है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा, अपह्नुति।

भट चातक दादुर मोरन बोले।
चपला चमकै न फिरै खँग खोले॥
दुति वन्तन कौ विपदा बहु कीन्ही।
धरनी कहँ चन्द्रवधू धरि दीन्ही॥३२॥

शब्दार्थ—भट = योद्धा। खंग (खड्ग) = तलवार। दुतिवन्त = ज्योतियुक्त ग्रह। चन्द्रवधू = वीरवधूटी।

व्याख्या—कवि कल्पना को आगे बढ़ाते हुए कहता है कि ये चातक, दादुर और मोर नहीं बोल रहे हैं वरन् इन्द्र के योद्धा हैं जो सूर्य को चुनौती दे रहे हैं। यह बिजली नहीं चमक रही है वरन् स्वयं इन्द्र अपनी नंगी तलवार लेकर सूर्य को ढूंढ़ रहा है। सूर्य पर क्रुद्ध होने के कारण इन्द्र ने जितने ज्योतिमान ग्रह हैं सभी के लिए संकट उत्पन्न कर दिया है। यहाँ तक कि वीर वधूटियों को पकड़ कर पृथ्वी को सौंप दिया है कि वह स्वयं अपना बदला चुका ले। (वीर वधूटियाँ चमकीली होती हैं। सूर्य पर क्रुद्ध इन्द्र सभी चमकीले जीवों और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रहों पर अपना रोष प्रकट कर रहा है। इसी क्रम में उसने वीर टियों को पकड़ कर पृथ्वी को सौंप दिया है।)

अलंकार—अपह्नुति, प्रत्यनीक।

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर मैं हम चन्द्र प्रभा सम दी सी॥
वरषा न सुनौ किलकें कलकाली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥३३॥

शब्दार्थ—तरुनी = स्त्री। (यहाँ अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के लिए प्रयुक्त) चन्द्र = (१) चन्द्रमा, (२) सोम नामक अनुसूया का पुत्र। कल = सुन्दर। अहिमाली = (१) महादेव, (२) सर्प समूह।

व्याख्या—भगवान राम वर्षा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं—यह वर्षा अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के समान है क्योंकि जैसे अनुसूया के गर्भ से "सोम" (अनुसूया का पुत्र) के आने से अनुसूया के तन में मन्द प्रभा झलकने लगी थी वैसे ही इसके भीतर (बादलों के भीतर) "सोम" (चन्द्रमा) के होने से इसकी भी मन्द-मन्द शोभा हो रही है। वे पुनः कहते हैं—यह वर्षा काल के शब्द नहीं है, वरन् काली स्वयं किलकारी मारकर हँस रही है। क्योंकि जैसे काली (भगवती) की महिमा अहिमाली (सर्पगण) जानते हैं। (वर्षा में सर्पों को अनेक प्रकार के जन्तु भक्षण करने को मिल जाते हैं, इसलिए वर्षा उनके लिए विशेष महिमामय है।)

अलंकार—उपमा, अपह्नुति, श्लेष।

1985

[घनाक्षरी]

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूखन जराय ज्योति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन,
अमल कमल दल दलित निकाई है।
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुट सु हँसक सबद सुखदाई है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अम्बर—वलित मति मोहै नील कंठ जू के,
कालिका कि बरखा हरखि हिय आई है ।।३४।।

नोट—लाला भगवानदीन ने इस छन्द के दो अर्थ अलग-अलग लेए हैं। एक कालिका पक्ष में और दूसरा वर्षा पक्ष में। वस्तुतः कवि ने वर्षा और कालिका को अलग-अलग नहीं देखा है, उसने वर्षा में कालिका की भावना या कल्पना की है। वर्षा ऋतु के उपादानों में ही कालिका का स्वरूप दृष्टिगत हुआ है। इसलिए दोनों पक्षों का अर्थ अलग-अलग करना समग्र काव्य-सौंदर्य को खण्ड-खण्ड करके देखना होगा, जिसे समीचीन नहीं कहा जा सकता। हो सकता है, केशव के मन में खण्ड श्लेष के चमत्कार के आधार पर दोनों पक्षों के विधान की आकांक्षा रही हो।

शब्दार्थ—(कालिका पक्ष के अनुसार)—सुरचाप = इन्द्र धनुष। चारु = सुन्दर। प्रमुदित = मोद देने वाले (उन्नत) पयोधर = कुच, (बादल)। भूखन, (भूषण) = आभूषण, गहना। रलाई है = मिली हुई है। सुख = सहज रूप से। सुखमा (सुषमा) = शोभा। अमल = निर्मल मलरहति। निकाई = शोभा। करेनुका = हथिनी। गमनहर = गति को छीन लेने वाली। मुकुत (मुक्त) = स्वछन्द। हँसक = विछुवा। अम्बर = वस्त्र। वलित = लिपटा हुआ। नीलकण्ठ = महादेव।

व्याख्या—(कालिका पक्ष की दृष्टि से) इन्द्र-धनुष ही जिसकी सुन्दर भौंहें हैं, उमड़े हुए बादल ही जिसके उन्नत कुच हैं, बिजली की चमक ही जिसके रत्न जटित आभूषणों की चमक है, जिसने अपने मुख-सौंदर्य से सहज ही चन्द्रमा की शोभा को मन्द कर दिया है (वर्षा काल में चन्द्रमा बादलों में छिपने के कारण मन्द-ज्योति हो जाता है।) जिसके नेत्रों के सौंदर्य ने कमल की पंखुरियों की शोभा को मलीन कर दिया है, (वर्षा में कमलों का सौंदर्य मलीन पड़ जाता है।) जिसने अपने आगमन से मतवाली हथिनियों की गति के सौंदर्य को छीन लिया है, (वर्षा में हाथियों की यात्रा प्रायः बन्द हो जाती है।) जिसके नूपुरों की स्वछन्द झनकार (झिल्ली की झनकार) सुखद लग रही है, जिसने अपने को नीले वस्त्र से सज्जित कर लिया है, (वर्षा में मेघाच्छन्न आकाश नील वर्ण रहता है।) जो नीलकंठ महादेव (नीलकंठ मयूर) की मति को मोहित कर लिया है, यह वही कालिका है या वर्षा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्दार्थ—(वर्षा पक्ष के अनुसार)—भाँ = भय। भाँहैं = भय व है। सुरचाप = इन्द्रधनुष। प्रमुदित पयोधर = उमड़ते हुए बादल। भू = पृथ्वी। ख = आकाश। नजराय = देख पड़ती है। भू + ख = नजराय = पृथ्वी से आकाश तक दिखलाई पड़ती है।) तडित = बिजली। तरलाई = चंचलता। सुख = सहज ही। मुख-सुखमा ससी की = चन्द्रमा का सौंदर्य। नैन अमल = (नै + न + अमल) + नदियाँ निर्मल नहीं कमल-दल-दलित = कमल के पुष्प-दल दलित हो गये हैं। निक (नि + काई) = काई-रहित। प्रबलक (प्रबल + क) = जल की प्रब धारा। रेनुका हर = धूल को बहा ले जाने वाली। गमन-हर = आवा-गमन बन्द कर देने वाली। सुहँसक सब्द-मुकुत = हँसी के शब्द से रहित। अम्बर = आकाश। बलित = बादलों से युक्त। नीलकंठ = मयूर।

व्याख्या—(वर्षा पक्ष के अनुसार) उल्लसित होकर वर्षा ऋतु आ गई है। (इस ऋतु में) अनेक प्रकार के भय व्याप्त हो गये हैं। इन्द्र धनुष शोभित है। बादलों की घटा उमड़ आई है। पृथ्वी से आकाश तक बिजली कौंध रही है। चन्द्रमा का सौंदर्य मलीन पड़ गया है। नदियाँ स्वच्छ नहीं हैं। कमलों के पुष्प-वन नष्ट हो गये हैं। जलाशय काई-रहित हो गये हैं। जल की प्रबल धारा ने धूल को बहा दिया है। आवागमन रुक गया है। हँसी का शब्द सुनाई नहीं पड़ रहा है। आकाश बादलों से आछन्न है। बादलों को देखकर मयूर मस्त हो रहे हैं। ऐसी यह वर्षा ऋतु है, या कालिका है।

अलंकार—सन्देह, सभंग पद श्लेष।

[दो०] वर्णत केशव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, संतत मिथ्या दृष्टि ॥३५॥

शब्दार्थ—विषम गाढ़ = अति सघन। तम = अन्धकार। संतत = सदैव। दृष्टि = (१) विवेक, (२) आशा।

व्याख्या—केशवदास कहते हैं कि वर्षा में ऐसा सघन अन्धकार छा जाता है कि दृष्टि सदैव मिथ्या प्रमाणित होती है। (घने अन्धकार के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ता, अतः दृष्टि व्यर्थ हो जाती है।) यह ऐसे ही होता है जैसे बुरे मनुष्य की सेवा करने से विवेक नष्ट हो जाता है और एक भी आशा फलवती नहीं होती।

अलंकार—उदाहरण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दुर्मिल सवैया]

कलहंस, कला निधि, खंजन, कंज ।
कछू दिन केशव देखि जिये ।।
गति आनन, लोचन, पायक के ।
अनुरूपक से मन मानि लिये ।।
यहि काल कराल तें शोधि सबै ।
हटिकै वरषा मिस दूरि किये ।।
अवधौं बिन प्रान प्रिया रहि हैं ।
कहि कौन हितू अवलंबि हिये ।।३६।।

शब्दार्थ—कलहंस = राजहंस, मधुर ध्वनि करने वाले हंस । कलानिधि = चन्द्रमा । अनुरूपक = उसी के रूप के अनुसार । शोधि = खोजकर । हठि के = हठपूर्वक । हितू = हितैषी ।

व्याख्या—भगवान राम सीता के वियोग में व्याकुल होकर कहते हैं—सीता के वियोग में मैं कुछ दिनों तक राजहंस, चन्द्रमा, खंजन-पक्षी और कमल को देखकर अपने मन को सान्त्वना देता रहा क्योंकि इनमें क्रमशः मैं सीता की गति, मुख, नेत्र और चरणों की कल्पना कर लेता था । किन्तु कराल काल ने वर्षा ऋतु के बहाने प्रकृति के इन आधारों को भी ढूंढ-ढूंढ कर अलग कर दिया अब सीता के अभाव में मेरे प्राण भला किसका अवलम्ब लेकर जीवित रहेंगे ।

अलंकार—क्रम ।

शरद-वर्णन

[दो०] बीते वर्षा काल यौं, आई सरद सुजाति ।
गये अँधयारी होत ज्यों, चारु चाँदनी राति ।।३७।।

शब्दार्थ—सुजाति = अच्छे कुल वाली । चारु = सुन्दर ।

व्याख्या—वर्षा ऋतु व्यतीत होने के बाद सुन्दरी शरद (किसी कुलीन जाति की स्त्री की तरह) इस प्रकार आ गई है जैसे अँधेरी रात बीत जाने पर सुन्दर चाँदनी रात आ जाती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[मोटनक छन्द]

दंतावलि कुंद समान गनौ।
चंद्रानन कुंतल भौंर घनौ॥
भौहैं धनु खंजन नैंन मनौ।
राजीवनि ज्यों पद पानि भनौ॥३८॥
हारावलि नीरज हीय रमै।
हैं लीन पयोधर अंबर मैं॥
पाटीर जोन्हाइहि अंग धरे।
हँसी गति केशव चित्त हरै॥३९॥
श्री नारद की दरसै मति सी।
लोपै तम ताप अकीरति सी॥
मानौ पति देवन की रति सी।
सत मारग की समुझै गति सी॥४०॥

शब्दार्थ—दन्तावलि = दाँतों की पंक्ति। कुन्तल = बाल। धनु = धनुष। राजीवनि = लाल कमल। नीरज = कुमुद या मोती (मोती भी जल में उत्पन्न होता है।) पयोधर = (१) बादल, (२) कुच। अम्बर = (१) आकाश, (२) वस्त्र। पाटीर = चन्दन। जुन्हाइहि = चाँदनी। हँसी गति = हंसों की चाल। तम = (१) अन्धकार, (२) अज्ञान। ताप = (१) दैहिक, दैविक, भौतिक ताप, (२) गर्मी। अकीरति = (१) अपयश, (२) अकर्तव्यता। पति देवन = पतिव्रता स्त्री। सनमारग = (१) धर्म मार्ग, (२) अच्छा रास्ता। गति = (१) सुगति, (२) यात्रा।

व्याख्या—कवि शरद ऋतु की कल्पना कुलीन सुन्दरी स्त्री के रूप में करता है। वह शरद के आगमन के साथ प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों को लक्षित करता है और उनमें ही कुलीन सुन्दर स्त्री की कल्पना करते हुए कहता है—कुन्द पुष्पों की श्वेत पंक्ति ही उसकी दन्तावलि (दाँतों की पंक्ति) हैं, चन्द्रमा ही उसका आनन है, काले भौंरे ही उसके केश हैं, राजाओं के धनुष (जो अब युद्ध की तैयारी के क्रम में निकाल लिये गये हैं) ही उसकी भौंहें हैं, खंजन पक्षी ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रद ऋतु में खंजन पक्षी आ जाते हैं) उसके नेत्र हैं, लाल कमल उसके हाथ-पाँव हैं, कुमुद के पुष्प या मोती ही उसके हृदय पर शोभित हार हैं, उसके पयोधर (कुच) अम्बर (वस्त्र) के भीतर (शालीनता के कारण) छिपे हुए हैं, (शरद् में बादल भी आकाश (अम्बर) में विलीन हो जाते हैं ।) ज्योत्स्ना ही उसके अंगों में चित चंदन है और हंसों की गति ही उसकी गति है । इस प्रकार ने वधू तरह सज्जित होकर शरद आ गई है । रूप-कल्पना के बाद शरद सुन्दरी के स्वभाव का अंकन करते हुए कहता है—वह रद मुनि की मति के समान प्रतीत होती है । (क्योंकि नारद की मति अज्ञान, त्रिविध ताप और अपयश को दूर करने वाली है वैसे ही शरद भी अन्धकार, गर्मी और अकर्मण्यता को दूर करने वाली है) वह पतिव्रता स्त्रियों की रीति के समान है क्योंकि जैसे पतिव्रता स्त्रियों की प्रीति सन्मार्ग में प्रवृत्त करती है वैसे ही शरद भी अच्छे रास्ते पर चलने की प्रेरणा देती है । (वर्षा काल में अवरुद्ध मार्ग शरद में गमन योग्य हो जाते हैं ।)

[दो०] लक्ष्मण दासी वृद्ध सी, आई शरद सुजाति ।
मनहु जगावन कौ हमहि, बीते वर्षा राति ।।४१।।

व्याख्या—भगवान राम लक्ष्मण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे लक्ष्मण ! वर्षा रूपी रात्रि के व्यतीत हो जाने पर शरद् ऋतु कुलीन वृद्धा दासी के समान हमें जगाने के लिए आई है । तात्पर्य यह कि अब हमें सीता की खोज में तत्पर हो जाना चाहिये ।

[सुग्रीव पर क्रोध]

[दो०] लक्ष्मण किष्किधा गये, वचन कहे करि क्रोध ।
तारा तब समुझाइयो, कीन्हों बहुत प्रबोध ।।४२।।

[दोधक छंद]

बोलि लए हनुमान तबै जू ।
ल्यावहु वानर बोलि सबै जू ।।
बार लगै न कहूँ बिरमाहीं ।
एक न कोउ रहै घर माहीं ।।४३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[दो०] बुधि विक्रम व्यवसाय युत, साधु समुझि रघुनाथ।
बल अनंत हनुमंत के, मुंदरी दीन्ही हाथ ॥४४॥

नोट—छन्द ४२, ४३, ४४ की व्याख्या सरल है।

[दंडक छंद]

हरि कैसो वाहन की विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक कौं।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधौं,
लच्छन को बाण छुट्यो रावण निशंक कौं।
गिरि गज गंड तैं उडान्यो सुवरन अलि,
सीता पद-पंकज सदा कलंक रंक कौं।
हवाई सी छूटी केसोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को ॥४५॥

शब्दार्थ—हरि कैसो वाहन = विष्णु-वाहन, गरुड़। हेम हँस = सोने के रंग का हंस। लीक = रेखा। पाहन = पत्थर (यहाँ कसौटी जिस पर रेखा खींचकर सोने की पहचान की जाती है। लच्छन = लक्ष्मण। गन्ड = गाल। सुवरन अलि = पीले रंग का भौंरा। कलंक रंक = कलंक रहित। हवाई = आतशबाजी का बाण। कमान = यहाँ तोप।

व्याख्या—कवि हनुमान के सुन्दर नामक पर्वत से उछलकर सुवेल नामक पर्वत पर पहुँचने का आलकारिक वर्णन करते हुए कहता है—तेजस्वी हनुमान विष्णु भगवान के वाहन गारुड़ के समान, या कि ब्रह्मा के पीले हंस के समान, रामचन्द्र जी की मुद्रिका को ही विमान बनाकर आकाश रूपी नीली कसौटी पर सोने की रेखा खींचते हुए से अत्यन्त तीव्र वेग से सुवेल पर्वत पर पहुँच गये। उनकी गति को देखकर ऐसा लगा कि रावण को मारने के लिए लक्ष्मण का बाण छूटा है या कि सुंदर नामक पर्वत रूपी हाथी के गंड-स्थल से पीला भौंरा उड़कर सीता जी के निष्कलंक चरण कमल की ओर उड़ गया है या कि आकाश में आतशबाजी का बाण सन्न से निकल गया है या कि तोप का गोला दगा है जो तोप से छूटकर प्रबल वेग से लक्ष्य पर गिरा है।

अलंकार—उपमा, रूपक, संदेह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि केशव और उनकी 'रामचन्द्रिका'

- महाकवि केशव की काव्य-कला पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
- "केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए।" आचार्य शुक्ल के इस कथन की समीक्षा कीजिए।
- "केशव की 'रामचंद्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह-सी जान पड़ती है।" प्रबन्ध काव्य-रचना की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त कथन के औचित्य पर विचार कीजिए।
- "जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त।
  भूषन बिनु न बिराजई कविता मित्त।"
  आचार्य केशव के उपर्युक्त कथन पर विचार करते हुए उनके काव्यादर्श पर प्रकाश डालिए।
- 'चारों ओर फैली हुई प्रकृति के नाना रूपों के साथ केशव के हृदय का सामंजस्य न था।' इस कथन की उचित आलोचना कीजिए।
- केशवदास को एक भक्त कवि मानना कहाँ तक समीचीन होगा? 'रामचंद्रिका' के आधार पर उनकी भक्ति-भावना पर प्रकाश डालिए।
- "रामचंद्रिका" में केशव का ध्यान शीलनिरूपण (चरित्र-चित्रण) की अपेक्षा वस्तु-वर्णन में अधिक लगा रहा है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?"
- आतंक, युद्ध और वैभव-विलास का वर्णन करनेमें केशव को अधिक सफलता मिली है। उचित उद्धरणों से इस कथन की पुष्टि कीजिए।
- 'रामचंद्रिका' में केशव को सबसे अधिक सफलता संवादोंको प्रस्तुत करने में मिली है। प्रमुख संवादों को दृष्टि में रखकर इस कथन पर विचार कीजिए।
- "केशव का काव्य मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति का सफल प्रतिनिधित्व करता है। इस कथन के औचित्य पर विचार कीजिए।
- आचार्यत्व की दृष्टि से केशव का मूल्यांकन कीजिए।

सहायक-सामग्री

केशव-कौमुदी – लाला भगवानदीन।
केशव की काव्य-कला—पं० कृष्ण शंकर शुक्ल।
संक्षिप्त रामचन्द्रिका—(भूमिका भाग) डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल।
हिन्दी-साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल।
आचार्य केशवदास—डॉ० हीरालाल दीक्षित।
केशवदास—पं० चन्द्रवली पाण्डेय।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र०८१ रामचन्द्रिका में केशव की काव्यकला पूर्ण लक्षित होता है इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं अथवा
रामचन्द्रिका के आधार पर 'केशव के राम' का स्पष्ट कीजिये।

प्र०८२ — प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका दोषों की विवेचना कीजिए

प्र०८३ — केशवदास कवि की अपेक्षा आचार्य के रूप में उनका यही आचार्यत्व उनके कवि रूप पर हो गया है रामचन्द्रिका के आधार पर इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

प्र०८४ केशवदास के विचारों में पुष्टता है, कल्पना की उड़ान है किन्तु संवेदनशीलता जन्य रागात्मिकता का अभाव है इस उक्ति के संदर्भ में केशवदास के काव्यगत विशेषताओं का उद्घाटन कीजिये।

प्र०८५ — केशव के काव्य विभिन्न दृष्टिकोण पर एक निबन्ध लिखिये।

प्र०८६ - प्र०८३ का प्रश्न आया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के प्राचीन प्रतिनिधि कवि —

डा. द्वारिका प्रसाद सक्सेना

ने वर्ष
कालि
ाक - विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल रोड, आगरा -३

~~कौमुदी — लाला भगवानदीन~~

केशव का आचार्यत्व

केशव हृदयहीन कवि थे तर्क सहित विवेचना कीजिये

केशव की संवाद योजना

(४) प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका का मूल्यांकन

(५) केशव की काव्यकला

(६) "कठिनकाव्य का प्रेत"

(७) केशव के काव्यविषयक दृष्टिकोण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi